कहे कलापूर्णसूरि-४

- पं. मुक्तिचन्द्रविजय गणि
- पं. मुनिचन्द्रविजय गणि

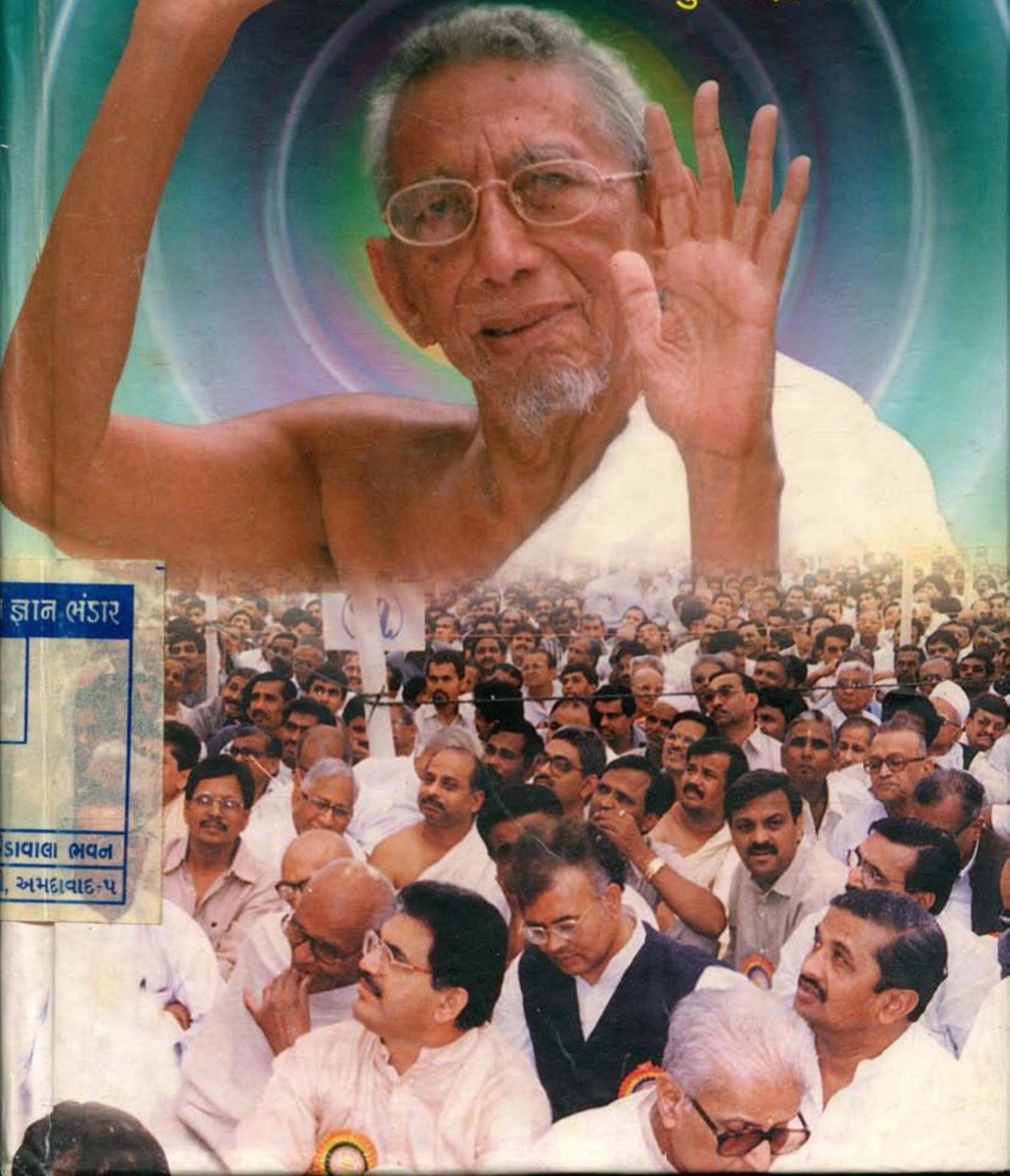

ज्ञान ભંડાર
ડાવાલા ભવન
, અમદાવાદ-૫

वि. सं. २०५८, माघ

केशवणा (स
बने हुए पूज्य

तीर्थंकर की याद क
पुण्य-वैभव अब क
देखने मिलेगा ?

स्वर्गगमन से १५ दिन पूर्व की तस्व
वि.सं. २०५८, जालोर (राज.)

ु.४, शनिवार १६-२-२००२ को

ज.) में स्वर्गवासी
श्री की चिरविदाय की झलक

नेवाला
हां

ार

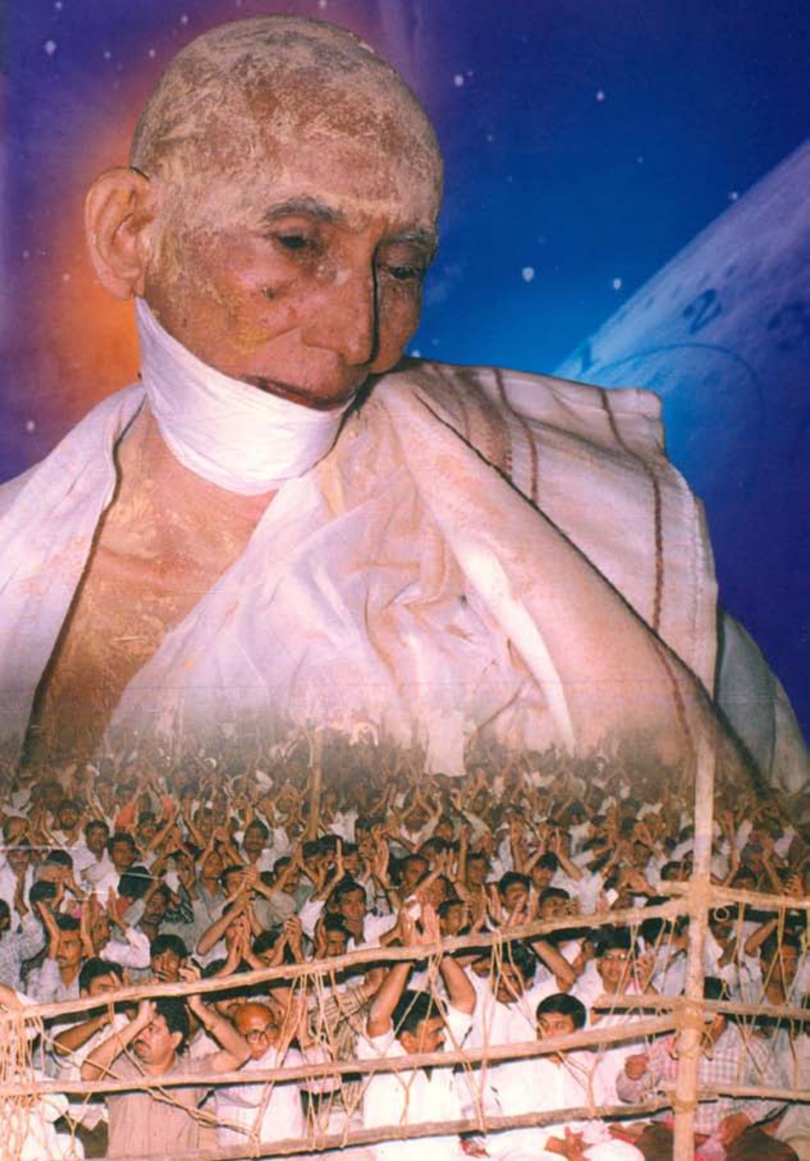

कहे कलापूर्णसूरि - ४

(अध्यात्मयोगी पू. आचार्यश्री की साधनापूत वाणी)

(दि. : १७-०९-२०००, रविवार से दि. ०१-१२-२०००, शुक्रवार)

* वाचना *

पूज्य आचार्यश्री विजयकलापूर्णसूरीश्वरजी म.

* प्रेरणा *

पूज्य आचार्यश्री विजयकलाप्रभसूरीश्वरजी म.

पू.पं.श्री कल्पतरुविजयजी गणिवर

* आलंबन *

पूज्यश्री के गुरुमंदिर की प्रतिष्ठा

वि.सं. २०६२, फाल्गुन वद ६,

दि. १९-०२-२००६, रविवार, शंखेश्वर महातीर्थ

* अवतरण - सम्पादन *

पंन्यास मुक्तिचन्द्रविजय गणि

पंन्यास मुनिचन्द्रविजय गणि

* अनुवादक *

मुनि मुक्तिश्रमणविजय

* प्रकाशक *

श्री कलापूर्णसूरि साधना स्मारक ट्रस्ट

आगम मंदिर के पीछे, पो. शंखेश्वर, जि. पाटण (उ.गु.), पीन : ३८४ २४६.

श्री शान्ति जिन आराधक मंडल

P.O. मनफरा (शान्तिनिकेतन), ता. भचाऊ, जी. कच्छ, Pin : 370 140.

पुस्तक :

कहे कलापूर्णसूरि-४

(पू. आचार्यश्री की साधना-पूत वाणी)

हिन्दी प्रथम आवृत्ति : वि.सं. २०६२, ई.स. २००६

अवतरण-संपादन :

पंन्यास मुक्तिचन्द्रविजय गणि

पंन्यास मुनिचन्द्रविजय गणि

मूल्य : रु. १२०/-

प्रत : १०००

संपर्क सूत्र :

कवरलाल एन्ड कां.
२७, रघुनायकुलु स्ट्रीट, चेन्नइ - ३.

टीकु आर. सावला
POPULAR PLASTIC HOUSE
39, D. N. Road, Sitaram Building, 'B' Block, Near Crowford Market,
MUMBAI - 400 001. • **Ph. : (022) 23436369, 23436807, 23441141**
Mobile : 9821406972

SHANTILAL / CHAMPAK B. DEDHIA
20, Pankaj 'A', Plot No. 171, L.B.S. Marg, Ghatkopar (W),
MUMBAI - 400 086. • **Ph. : (022) 25101990**

B. F. JASRAJ LUNKED
N. 3, Balkrishna Nagar, P.O. **MANNARGUDI** - 614 001 (T.N.)
Ph. (04367) 252479

मुद्रक :

Tejas Printers
403, Vimal Vihar Apartment, 22, Saraswati Society, Nr. Jain Merchant
Society, Paldi, **AHMEDABAD** - 380 007. • **Ph. : (079) 26601045**

पुनः प्रकाशन के प्रसंग पर

सुविद्यांजन-स्पर्शथी आंख ज्यारे,
अविद्यानुं अंधारुं भारे विदारे;
जुए ते क्षणे योगीओ ध्यान-तेजे,
निजात्मा विषे श्रीपरात्मा सहेजे ।

- ज्ञानसार १४/८ (गुर्जर पद्यानुवाद)

ज्ञानसार में इस प्रकार आते वर्णन के मुताबिक ही पूज्यश्री का जीवन था, यह सब लोग अच्छी तरह से जानते हैं । ये महायोगी अपने हृदय में भगवान को देखते थे, जब कि लोग उनमें भगवान को देखते थे ।

ऐसे सिद्धयोगी की वाणी सुनने-पढने के लिए लोग लालायित हों - यह स्वाभाविक है ।

पूज्यश्री की उपस्थिति में ही 'कहे कलापूर्णसूरि' गुजराती पुस्तक के चारों भाग प्रकाशित हो चुके थे, जिज्ञासु आराधक लोग द्वारा अप्रतिम प्रशंसा भी पाये हुए थे । विगत बहुत समय से आराधकों की ओर से इन पुस्तकों की बहुत डीमांड थी, किन्तु प्रतियां खतम हो जाने पर हम उस डीमांड को सन्तुष्ट नहीं कर सकते थे । हिन्दी प्रथम भाग प्रकाशित होने पर हिन्दीभाषी लोगों की डीमांड आगे के भागों के लिए भी बहुत ही थी ।

शंखेश्वर तीर्थ में वि.सं. २०६२, फा.व. ६, दि. १९-०२-२००६ को पूज्यश्री के गुरुमंदिर की प्रतिष्ठा के पावन प्रसंग के उपलक्ष में प्रस्तुत पुस्तक के चारों भाग हिन्दी और गुजराती में एकसाथ प्रकाशित हो रहे है, यह बहुत ही आनंदप्रद घटना है । इस ग्रंथ के पुनः प्रकाशन के मुख्य प्रेरक परम शासन प्रभावक वर्तमान समुदाय-नायक पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयकलाप्रभसूरीश्वरजी म.सा., विद्वद्वर्य पू. पंन्यासप्रवरश्री कल्पतरुविजयजी गणिवर एवं प्रवक्ता पू. पंन्यासप्रवरश्री कीर्तिचन्द्रविजयजी गणिवर - आदि को हम वंदन करते है ।

इन ग्रंथों का बहुत ही प्रयत्नपूर्वक अवतरण-संपादन व पुनः

संपादन करनेवाले पू. पंन्यासजी श्री मुक्तिचन्द्रविजयजी गणिवर एवं पू. पंन्यासजी श्री मुनिचन्द्रविजयजी गणिवर का हम बहुत-बहुत आभार मानते हैं ।

१ से ३ भाग तक हिन्दी-अनुवाद करनेवाले श्रीयुत नैनमलजी सुराणा और चौथे भाग का हिन्दी अनुवाद करनेवाले पू. मुनिश्री मुक्तिश्रमणविजयजी म. के हम बहुत-बहुत आभारी हैं ।

दिवंगत पू. मुनिवर्यश्री मुक्तानंदविजयजी का भी इसमें अपूर्व सहयोग रहा है, जिसे याद करते हम गद्गद् बन रहे हैं ।

इसके प्रूफ-रीडिंग में २६९ वर्धमान तप की ओली के तपस्वी पू.सा. हंसकीर्तिश्रीजी के शिष्या पू.सा. हंसबोधिश्रीजी का तथा हमारे मनफरा गांव के ही रत्न पू.सा. सुवर्णरेखाश्रीजी के शिष्या पू.सा. सम्यग्दर्शनाश्रीजी के शिष्या पू.सा. स्मितदर्शनाश्रीजी का सहयोग मिला है । हम उनके चरणों में वंदन करते है।

आज तक मनफरा में से ऐसे अनेक व्यक्ति दीक्षित बने हैं, जिनके पुण्य से ही मानो भूकंप के बाद हमारा पूरा गांव शान्तिनिकेतन के रूप में अद्वितीय रूप से बना है । एक ही संकुल में एक समान ६०० जैन बंगले हो - ऐसा शायद पूरे विश्व में यही एक उदाहरण होगा । लोकार्पण विधि के बाद उसी वर्ष वागड समुदाय नायक पूज्य आचार्यश्री का चातुर्मास होना भी सौभाग्य की निशानी है ।

हिन्दी प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देनेवाले फलोदी चातुर्मास-समिति एवं फलोदी निवासी (अभी चेन्नइ) कवरलाल चेरीटेबल ट्रस्ट व चेन्नइ के अन्य दाताओं को विशेषतः अभिनंदन देते हैं ।

श्रीयुत धनजीभाइ गेलाभाइ गाला परिवार (लाकडीया) द्वारा निर्मित गुरु-मंदिर की प्रतिष्ठा के पावन प्रसंग के उपलक्ष में प्रकाशित होते इन ग्रंथरत्नों को पाठकों के कर-कमल में रखते हम अत्यंत हर्ष का अनुभव करते हैं ।

अत्यंत सावधानीपूर्वक चारों भागों को हिन्दी-गुजराती में मुद्रित कर देनेवाले तेजस प्रिन्टर्स वाले तेजस हसमुखभाइ शाह (अमदावाद) को भी कैसे भूल सकते हैं ?

- **प्रकाशक**

प्रकाशकीय... (गुजराती आवृत्ति में से)

अनन्तानन्त सिद्धों की पुन्य धरा पालीताना में कच्छ-वागड़ देशोद्धारक, परम श्रद्धेय अध्यात्मयोगी पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय कलापूर्णसूरीश्वरजी म.सा., मधुर भाषी नूतन आचार्य श्रीमद् कलाप्रभसूरीश्वरजी म.सा., विद्वद्वर्य पूज्य पंन्यासश्री कल्पतरुविजयजी, प्रवक्ता पू.पं.श्री कीर्त्तिचन्द्रविजयजी, पू. गणिवर्यश्री (हाल पंन्यासश्री) मुक्तिचन्द्रविजयजी, पू. गणिवर्यश्री पूर्णचन्द्रविजयजी, पू. गणिवर्यश्री मुनिचन्द्रविजयजी, पू. मुनिश्री कुमुदचन्द्रविजयजी, पू. मुनिश्री कीर्त्तिरत्नविजयजी, पू. मुनिश्री तीर्थभद्रविजयजी, पू. मुनिश्री हेमचन्द्रविजयजी, पू. मुनिश्री विमलप्रभविजयजी आदि लगभग ३० साधु भगवंत तथा ४२९ साध्वीजी भगवंतों का बीस वर्ष के पश्चात् वागड़ वीसा ओसवाल जैन संघ तथा सात चौबीसी जैन समाज दोनों की ओर से अविस्मरणीय चातुर्मास हुआ ।

चातुर्मासान्तर्गत १८ पूज्य साधु भगवंत तथा ९८ पूज्य साध्वीजी भगवंतों के बृहद् योगोद्वहन, मासक्षमण आदि तपस्याओं, जीवदया आदि के फण्ड, परमात्म-भक्ति-प्रेरक वाचना-प्रवचनों, रविवारीय सामूहिक प्रवचनों, जिन-भक्ति महोत्सवों, उपधान आदि अनेक विध सुकृतों की श्रेणि का सृजन हुआ । चातुर्मास के बाद में ९९ यात्रा, पन्द्रह दीक्षाओं (बाबूभाई, हीरेन, पृथ्वीराज, चिराग, मणिबेन, कल्पना, कंचन, चारुमति, शान्ता, विलास, चन्द्रिका, लता, शान्ता, मंजुला, भारती) तथा तीन पदवी (पूज्य गणिश्री मुक्तिचन्द्रविजयजी को पंन्यास पद, पू. तीर्थभद्रविजयजी एवं विमलप्रभविजयजी को गणि पद) आदि प्रसंग अत्यन्त शालीनतापूर्वक मनाये गये ।

इन सबमें समस्त जिज्ञासु आराधकों को सर्वाधिक आकर्षण था अध्यात्मयोगी पूज्य आचार्यश्री की वाचनाओं का ।

पूज्यश्री का प्रिय विषय है - भक्ति । इस चातुर्मास में 'नमुत्थुणं' सूत्र की पूज्य श्रीहरिभद्रसूरि कृत 'ललित विस्तरा' नामक टीका पर वाचनाओं का आयोजन हुआ । 'ललित विस्तरा' अर्थात् जैन-दर्शन का भक्ति शास्त्र ही समझ लें ।

'ललित विस्तरा' जैसा भक्ति-प्रधान ग्रन्थ हो, पूज्यश्री के समान वाचनादाता हों, पालीताना जैसा क्षेत्र हो, प्रभु-प्रेमी साधु-साध्वीजी

के समान श्रोतागण हों, फिर बाकी क्या रहे ?

इन वाचनाओं में पूज्यश्री का हृदय पूर्णतः खुला था ।

वाचनाओं की इस वृष्टि में सराबोर होकर अनेक आत्माओं ने परम प्रसन्नता का अनुभव किया थां ।

अधिक आनन्द की बात तो यह है कि यह वृष्टि तात्कालिक अवतरण के द्वारा नोट के रूप में डेम में संगृहीत होती रही ।

हमारे ही गांव के रत्न पूज्य पंन्यासश्री मुक्तिचन्द्रविजयजी गणिवर तथा पूज्य गणिवर्यश्री मुनिचन्द्रविजयजी के द्वारा इन वाचनाओं का अवतरण हुआ है, जो अत्यन्त ही हर्ष की बात है ।

इस पुस्तक की त्वरित गति से प्रेस कोपी कर देने वाले पू. साध्वीजी कुमुदश्रीजी की शिष्या पू.सा. कल्पज्ञाश्रीजी के शिष्या पू.सा. कल्पनंदिताश्रीजी का हम कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करते हैं ।

पुस्तक के इस कार्य में आर्थिक सहयोग प्रदान करनेवाले भी अभिनन्दन के पात्र हैं ।

पूज्य बन्धु-युगल के द्वारा अवतरण किये गये दो पुस्तकों (कहे कलापूर्णसूरि-१, कहा कलापूर्णसूरिने-२) की तरह यह पुस्तक भी जिज्ञासुगण अवश्य पसन्द करेंगे ऐसी हम श्रद्धा रखते हैं ।

ये पुस्तक पढ़कर प्रभावित हो चुके पाठकों के पत्रों से हमारे उत्साह में निरन्तर वृद्धि होती रहती है । कितनेक जिज्ञासु गृहस्थ तो ये पुस्तक पढ़कर नवीन पुस्तक हेतु अपनी ओर से अनुदान देने के लिए तत्पर रहते हैं, जो इस पुस्तक की लोकप्रियता एवं हृदयस्पर्शिता कहती है ।

❊ ❊ ❊

भूकम्प-पीड़ित हमारा गांव (गुजराती आवृत्ति में से)

वि. संवत् २०५७, माघ शुक्ला-२, शुक्रवार, दि. २६-१-२००१ के प्रातः ८.४५ का समय कच्छ-गुजरात के लिये अत्यन्त भयावह सिद्ध हुआ । केवल ढाई-तीन मिनट में ही सैंकडों गांव धराशायी हो गये । हजारों मनुष्य खंडहरों के नीचे दबकर 'बचाओ, बचाओ' की चीख मचाने लगे । अन्य अनेक व्यक्तियों को तो

चीख-पुकार मचाने का भी अवसर नहीं मिला । वे तो भारी छतों, पत्थरों आदि के नीचे दबकर तत्क्षण मौत के करालगाल में समा गये ।

८.१ रिक्टर स्केल के ऐसे भयंकर भूकम्प से अखिल विश्व हचमचा उठा (भारतीय भूस्तरशास्त्रियों के अनुसार यह भूकम्प ६.९ रिक्टर स्केल का था, जबकि अमेरिकन भूस्तरशास्त्री उसे ७.९ अथवा ८.१ का कहते थे । भारतीय भूस्तरशास्त्रियों ने उसका केन्द्र बिन्दु कच्छ-भुज के उत्तर में लोडाई-ध्रंग के पास बताया है, जबकि अमेरिकन भूस्तरशास्त्रियों ने खोज करके कच्छ के भचाऊ तालुका में बंधडी-चोबारी के निकट कहीं केन्द्र बिन्दु होने का कहा है । नुकसान यदि देखा जाये तो अमेरिकन भूस्तरशास्त्री सही प्रतीत होते हैं ।)

भूकम्प का केन्द्र-बिन्दु हमारे गांव 'मनफरा' के निकट ही होने से अनेक गांवों के साथ हमारा गांव भी पूर्णतः ध्वस्त हो गया ।

भचाऊ, अंजार, रापर और भुज - इन चार नगरों के साथ चारों तालुकों में अपार हानि हुई । हजारों मनुष्य जीवित गड़ गये। किसी कवि ने कहा हैं कि 'जीवन का मार्ग मात्र घर से कब्र तक का है ।' परन्तु यहां तो घर ही कब्र बन गये थे । जो छत एवं छपरे आज तक रक्षक बने रहे, वे ही आज भक्षक बन गये थे । **'जे पोषतुं ते मारतुं, एवो दीसे क्रम कुदरती'** कलापी की यह पंक्ति कितनी यथार्थ है ?

अनेक गांवों के साथ हमारा 'मनफरा' गांव भी धराशायी हो चुका था । जिनालय, उपाश्रय आदि धर्म-स्थानों सहित लगभग समस्त मकान धराशायी हो गये । हमारा गांव विक्रम की सत्रहवी (वि.सं. १६०७) शताब्दी के प्रारम्भ में ही बसा हुआ है । उस समय की खड़ी गांव के मध्य की जागीर भी पूर्णतः ध्वस्त हो गई जिसके सम्बन्ध में किसी विशेषज्ञ इन्जीनियरने कहा था कि अभी भी कम से कम दो सौ वर्षों तक इस जागीर का कुछ नहीं बिगड़ेगा ।

गांव की शोभा के रूप में निर्मित देवविमान तुल्य सुन्दर

३४ वर्ष पुराना तीर्थ के समान जिनालय भी पत्थरों के ढेर के रूप में परिवर्तित हो गया । मनफरा के ४५० वर्ष के इतिहास में गांव की पूर्णरूपेण ध्वस्तता तो प्रथम बार ही हुई । यद्यपि धरती-कम्प का प्रदेश होने से कच्छ में प्रायः धरतीकम्प होते ही रहते हैं । ऐसा ही भारी भूकम्प सन् १८१९ की १९वी जून को आया था, जिसके कारण सिन्धु नदी का प्रवाह कच्छ में आना सदा के लिए बंध हो गया । कच्छ सदा के लिए वीरान बन गया । 'कच्छड़ो बारे मास' की उक्ति केवल उक्ति ही रह गई । वास्तविकता सर्वथा विपरीत हो गई । उस धरतीकम्प से पश्चिम कच्छ में अधिक हानि हुई होगी, पूर्व कच्छ (वागड़) बच गया होगा, ऐसा ४५० वर्ष पुरानी जागीर एवं ८०० वर्ष प्राचीन भद्रेश्वर के जिनालय को देखने से प्रतीत होता है । उससे पूर्व वि. संवत् १२५६ में भयंकर भूकम्प आया था, जिसके कारण नारायण सरोवर का मीठा पानी खारा हो गया था ।

हजार वर्षों में दो-तीन बार आते एसे भूकम्पों से पहले की अपेक्षा भी इस बार अत्यन्त ही विनाश हुआ है, क्योंकि अधिक मंजिलो युक्त मकानों के निर्माण के पश्चात् ऐसा हृदय-विदारक भूकम्प भारत में शायद प्रथमबार आया है ।

कच्छ के बाद विश्वभर में इण्डोनेशिया, चीन, जापान, अफघानिस्तान, अमेरिका, असम आदि स्थानों पर श्रेणिबद्ध आये भूकम्प के झटकों ने विश्वभर के लोगों को भूकम्प के सम्बन्ध में सोचने को विवश कर दिये हैं ।

डेढ़-दो हजार की जनसंख्या वाले छोटे से मनफरा गांव में भूकम्प से मारे गये लगभग १९० मनुष्यों में ६० तो जैन थे । घायल हो चुके तो अलग ।

दो-पांच हजार वर्ष पहले के प्राचीन मन्दिर क्यों आज नहीं दिखाई देते ? नदी क्यों लुप्त हो जाती हैं ? नगर क्यों ध्वस्त हो जाते हैं ? नदियों के प्रवाह क्यों बदल जाते हैं ? लोग क्यों स्थान बदल देते हैं ? 'मोंए जो डेरो' जैसे टींबे क्यों बन गये ? ऐसे अनेक प्रश्नों का उत्तर भूकम्प है ।

आदमी के लिए बड़ा गिना जानेवाला यह भूकम्प प्रकृति

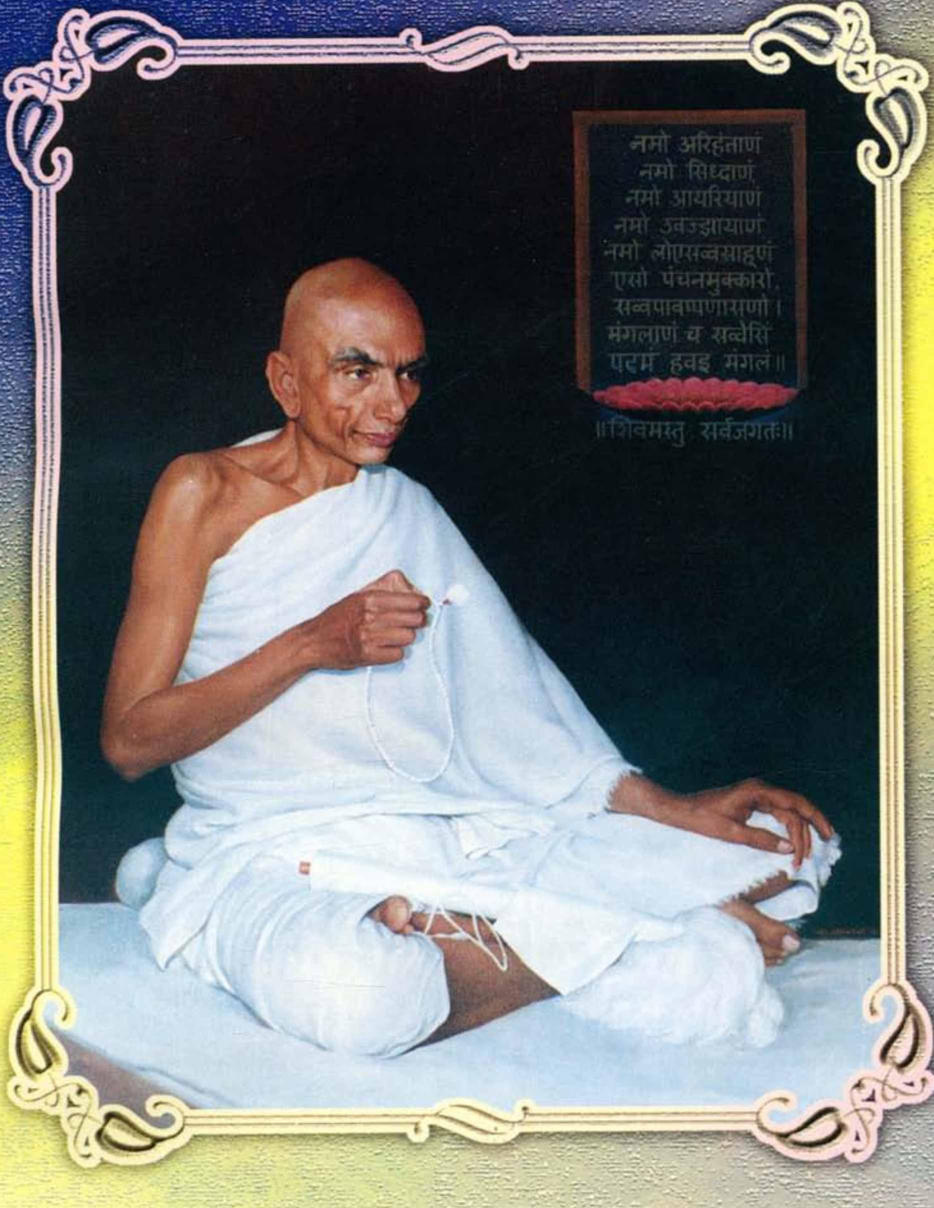

અનેક જીજ્ઞાસુ આત્મસાધકોના સફળ માર્ગ-દર્શક,
સચ્ચિદાનંદરૂપી, નમસ્કાર મહામંત્રના પરમ આરાધક,
આ સદીના પ્રથમ હરોળના યોગી,
પૂ. પં.શ્રી ભદ્રંકરવિજયજી ગણિવરને સવિનય સમર્પણ

શ્રી સિધ્ધાચલ મહાતીર્થે

રવિવારીય સામુદાયિક પ્રવચનની ઝલક

(પાલિતાણા)

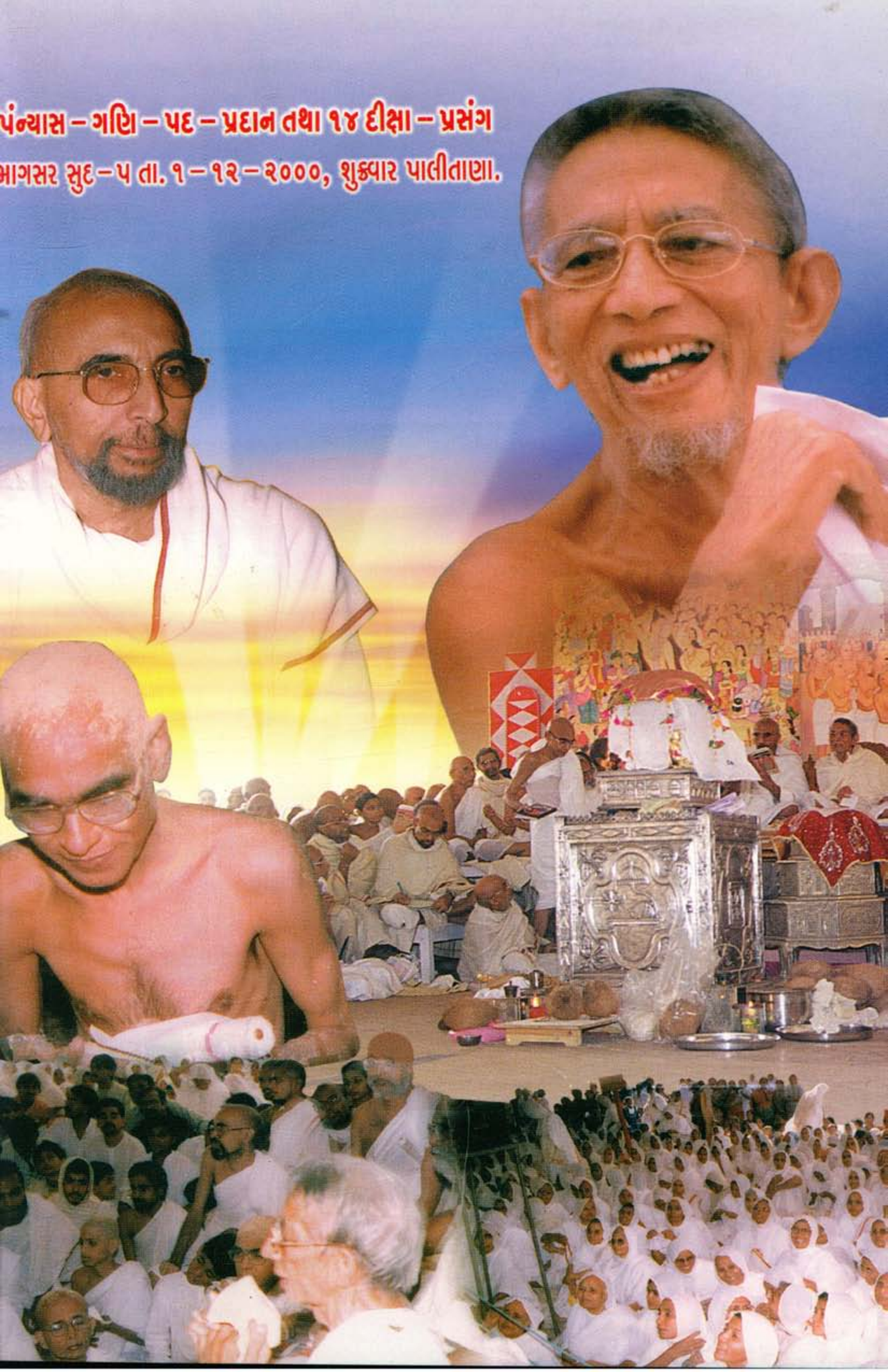
પંન્યાસ – ગણિ – પદ – પ્રદાન તથા ૧૪ દીક્ષા – પ્રસંગ
માગસર સુદ – ૫ તા. ૧ – ૧૨ – ૨૦૦૦, શુક્રવાર પાલીતાણા.

मनफरा - (कच्छ - वागड़) जिनालय

भूकंप के बाद पूर्णरुप से ध्वस्त उसी जिनालय की तस्वीर।

ऐसे सैंकड़ो गांव, मंदिर आदि कच्छ - गुजरात में ध्वस्त हो गये है ।
भूकंप : दि. 26-1-2001, माघ सुद-२, शुक्रवार, सुबह : 8-45

के लिए सर्वथा छोटा सा तिनके जैसा कार्य भी हो ! प्रकृति में तो ऐसे परिवर्तन होते ही रहते हैं ।

धार्मिक दृष्टि से सोचें तो इसमें से अनित्यता का बोधपाठ मिलता हैं – ममता के ताने-बाने तोड़ने का अवसर मिलता है और घर में से मुझे बाहर निकालने वाला तू कौन है ? एसा कहने वाले व्यक्ति को भूकम्प का एक ही झटका बाहर निकाल देता है । क्या यह कम बात है ?

ममता को दूर करने के लिए, अनित्यता को आत्मसात् करने के लिए इससे अधिक अन्य कौनसा प्रसंग हो सकता है ?

सम्पूर्ण विश्व को एक तंतु से जोड़ देने में निमित्त बननेवाला ऐसा अन्य कौनसा प्रसंग हो सकता है ?

भूकम्प के बाद गुजरात-भारत सहित सम्पूर्ण विश्व में से सहायता का प्रवाह चला, उससे ज्ञात होता हैं कि आज भी मानवता नष्ट नहीं हुई । आज भी मनुष्य के हृदय में करुणा धड़कती है ।

अकाल, आंधी-तूफान एवं भूकम्प के प्रहारों से जर्जर बनने के बजाय खुमारी के साथ चलती कच्छी प्रजा को देखकर किसी को भी लगे कि ऐसी खुमारी होगी तो बर्बाद हो चुका कच्छ अल्प समय में ही बैठा हो जायेगा ।

कच्छी 'माडू' इस बर्बादी को खुमारी में, इस अभिशाप को वरदान में बदल सके ऐसे सत्त्व के रूप में अडिग खड़ा है ।

'नवसर्जन के पूर्व विध्वंस भी कभी कभी आवश्यक होता है ।' ऐसा किसी ने कहा है जो याद रखने योग्य है ।

शारीरिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक सभी दृष्टियों से बर्बाद हो चुके मनुष्य को आज बैठा करने की आवश्यकता है, उसके अन्तर में भगवान एवं जीवन के प्रति भक्ति एवं कृतज्ञता उत्पन्न करने की आवश्यकता है । मानसिक रूप से भग्न हुए मनुष्यों के सन्तप्त हृदय में ऐसी पुस्तकें अवश्य ही आश्वासन के अमृत का सिंचन करेंगी ।

पालीताना चातुर्मास में तपस्याएं

५१ उपवास :

१. साध्वीजी श्री हेमकीर्त्तिश्रीजी म.
२. पुनशीभाई मेकण सावला (मनफरा)

३६ उपवास :

१. साध्वीजी श्री हंसध्वनिश्रीजी म.
२. साध्वीजी श्री इन्द्रवंदिताश्रीजी म.
३. साध्वीजी श्री निर्मलदर्शनाश्रीजी म.
४. साध्वीजी श्री अभयरत्नाश्रीजी म.
५. साध्वीजी श्री अर्हद्रत्नाश्रीजी म.
६. साध्वीजी श्री पुन्यराशिश्रीजी म.

मासक्षमण (३० उपवास) :

१. मुनिश्री अमितयशविजयजी म.
२. साध्वीजी श्री दिव्यरत्नाश्रीजी म.
३. साध्वीजी श्री चारुभक्तिश्रीजी म.
४. साध्वीजी श्री श्रेयोज्ञाश्रीजी म.
५. साध्वीजी श्री संवेगप्रज्ञाश्रीजी म.
६. साध्वीजी श्री सुरभिगुणाश्रीजी म.
७. साध्वीजी श्री भव्यगिराश्रीजी म.
८. साध्वीजी श्री चारुस्तुतिश्रीजी म.
९. साध्वीजी श्री विरतिकृपाश्रीजी म.
१०. साध्वीजी श्री वीरांगप्रियाश्रीजी म.
११. साध्वीजी श्री जिनकरुणाश्रीजी म.
१२. साध्वीजी श्री जयकृपाश्रीजी म.
१३. साध्वीजी श्री चारुक्षमाश्रीजी म.
१४. साध्वीजी श्री चारुप्रसन्नताश्रीजी म.
१५. साध्वीजी श्री अमीझरणाश्रीजी म.
१६. साध्वीजी श्री शासनरसाश्रीजी म.
१७. साध्वीजी श्री हंसकीर्त्तिश्रीजी म. की शिष्या

१८. साध्वीजी श्री विनयनिधिश्रीजी म.
१९. साध्वीजी श्री प्रशान्तशीलाश्रीजी म.
२०. कान्तिलालजी हजारीमलजी (मद्रास)
२१. हीराचंदजी चुनीलाल
२२. वेलजी भचु चरला (आधोई)
२३. लीलाबेन वैद (मद्रास)
२४. बीजलबेन जयंतीलाल (अहमदाबाद)
२५. चंपाबेन धीरजलाल दोशी
२६. रतनबेन जसवंतराय
२७. विमलाबेन छगनलाल (बैंगलोर)
२८. भावनाबेन घमंडीमलजी
२९. शान्ताबेन ठाकरशी डुंगाणी (बकुत्रा)

१७ उपवास :

१. साध्वीजी श्री भक्तिपूर्णाश्रीजी म.

१६ उपवास :

१. मुनिश्री अजितवीर्यविजयजी म.

भद्र तप :

१. साध्वीजी श्री पुष्पदंताश्रीजी म.
२. साध्वीजी श्री सौम्यपूर्णाश्रीजी म.
३. साध्वीजी श्री स्मितपूर्णाश्रीजी म.

सिद्धि तप :

१. साध्वीजी श्री चारुविनीताश्रीजी म.
२. साध्वीजी श्री मुक्तिनिलयाश्रीजी म.
३. साध्वीजी श्री हितवर्धनाश्रीजी म.

चत्तारि अट्ठ :

१. साध्वीजी श्री प्रियदर्शनाश्रीजी म.

यह अवसर बार बार आये (गुजराती आवृत्ति में से)

- पू. आचार्यश्री जिनचन्द्रसागरसूरिजी म.सा.
- पू. आचार्यश्री हेमचन्द्रसागरसूरिजी म.सा.

अध्यात्मलक्षी
पू. आचार्यदेव श्री कलापूर्णसूरि म. के प्रति
वैसे भी पहले से आकर्षण था ही क्योंकि
परम तारणहार पूज्य गुरुदेवश्री
(पं. श्री अभयसागरजी म.) के
ये अत्यन्त ही निकट के सम्बन्धी, साधक,
नवकार महामंत्र के परम आसक,
उपासक एवं चाहक हैं ।
अतः यह चातुर्मास पालीताना में करना सुनिश्चित हुआ
तबसे ही आनन्द एवं गलगली प्रारम्भ हो गई थी
और आज तो वह आनन्द हृदय के चारों किनारों पर लहरा रहा है।
क्योंकि,
गत चातुर्मास में पूज्यश्री की अत्यन्त ही सुन्दर निकटता का आनन्द लिया...
जीवन में सर्व प्रथम बार ही
पूज्यश्री का सम्पर्क हुआ, परन्तु ठोस हुआ ।
जब जब भी पूज्यश्री की वाचना में गया,
मेरे परम तारणहार पूज्य गुरुदेवश्री के स्मरण में
तन्मय हुआ हूं ।
पूज्य गुरुदेवश्री के जीवन में तीन तत्त्व स्पष्टतः
दृष्टिगोचर होते थे -
(१) श्री नवकार महामंत्र की साधना
(२) साधु सामाचारी (व्यवहार धर्म की चुस्तता) की आराधना
(३) जिन-भक्ति की उपासना
पूज्यश्री की निश्रा में कभी भी कोई सामूहिक आयोजन हो चाहे वह
व्याख्यान का
वाचना का
विशेष बैठक का हो

पूज्यश्री १२ नवकार गिनने की उद्घोषणा अवश्य करते
और उस समय उपस्थित सब मैत्रीभाव के मण्डप के नीचे
बारह नवकार गिनने लग जाते ।
मैत्रीभाव से वासित हृदय से गिने जाते इन श्री नवकार
महामन्त्र के प्रभाव से ही
सम्पूर्ण चातुर्मास एकता एवं एकसंपितामय व्यतीत हुआ,
ऐसा प्रमाण युक्त अनुमान लगाया जा सकता है ।
श्री नमस्कार महामंत्र के प्रति पूज्यश्री का विशेष लगाव बना रहता है,
जिसका उदाहरण ये है कि पूज्यश्री के वासक्षेप के लिए
लम्बी कतार के रूप में जनता उमड़ पडती है
परन्तु पूज्यश्री ने नियम बना लिया हैं कि,
'जो नित्य पांच बंधी नवकारवाली गिनेंगे उन्हें ही वासक्षेप डालेंगे',
अतः श्री नवकार का जाप करनेवाला अत्यन्त बड़ा वर्ग
तैयार हो गया है ।
विश्वशान्ति के लिए यह कितना बड़ा परिबल गिना जा सके !
और श्री नमस्कार महामंत्र से सम्बन्धित वाचना में भी जब-तब आलम्बन
एवं प्रेरक उपदेश देते देखा है ।
सामाचारी के सम्बन्ध में भी पूज्यश्री को जब-जब अवसर मिलता
तब-तब उसका पक्षपात किये बिना नहीं रहते थे ।
सामाचारी स्वरूप व्यवहार धर्म पर ही
निश्चय धर्म टिक सकता है ।
यह बात वे बार-बार दोहराते, इतना ही नहीं,
प्लास्टिक के घड़े या प्लास्टिक के पातरों आदि के द्वारा
सामाचारी में प्रविष्ट विकृति के प्रति कभी-कभी जोरदार कटाक्ष करते
हुए सुना है ।
मुझे अच्छी तरह ध्यान है कि एक बार तो
दोनों हाथों में दो घड़े लेकर पानी लाने की विकृत प्रथा को
आक्रमक रूप में निकृष्ट बताई थी ।
इतना ही नहीं; अनेक व्यक्तियों को ऐसा नहीं करने की प्रतिज्ञा भी दी थी ।
पंचाचारमय साधु-सामाचारी को सुरक्षित रखकर ही
अन्य प्रवृत्तियों को महत्त्व देने के प्रति पूज्यश्री बार बार प्रेरित करते थे ।

जिन-भक्ति तो मानो
पूज्यश्री का जीवन पर्याय बन गया हो ऐसा प्रतीत होता है ।
परमात्म-तत्त्व जड़ की तरह निरा निष्क्रिय तत्त्व नहीं है ।
वे वीतराग तो हैं ही, परन्तु साथ ही साथ करुणा-रहित है,
ऐसा नहीं है ।
करुणावान् एवं कृपालु भी इतने ही हैं
और इसलिए सक्रिय हैं - इस बात को
पौनः पुन्य से घूंटते अपने जीवन की घटती प्रत्येक घटमाल में
परमात्मा की सक्रियता निहित है ।
जिस प्रकार पुत्र की प्रत्येक गति-विधि में मां का हस्तक्षेप है
इस प्रकार अपने जीवन में परमात्मा का अस्तित्व है ।
नाम - स्थापना - द्रव्य - भाव के रूप में परमात्मा सदा विद्यमान हैं ।
'नाम ग्रहंता आवी मिले, मन भीतर भगवान'
यह पूज्यश्री का मनमाना विशेष नारा गिना जाता है ।
नाम के रूप में परमात्मा आज भी विद्यमान हैं ।
परमात्मा का नाम स्वयं मन्त्र-तुल्य है ।
आपकी कोई भी समस्या परमात्मा के नाम से निर्मूल हो सकती है ।
पूज्यश्री की वाचना में प्रतिदिन यह बात तो आये आये और आये ही ।
अतः जिस वस्तु का हमें हमारे पूज्य तारणहार गुरुदेवश्री के
जीवन में निरन्तर अनुभव होता था
वह बात यहां भी मिलती होने से अधिक आकर्षण होता था ।
इसके अतिरिक्त भी पूज्यश्री की वाचना में अनेक केन्द्रीभूत तत्त्व थे ।
वाचना के आरम्भ बिन्दु में स्वयं परमात्मा, गणधर भगवन्
और उनकी परम्परा को
आज तक लाने वाले आचार्य देव आदि पूज्य तत्त्वों का स्मरण
नित्य रहता था ।
अतः अपनी बात का अनुसन्धान स्वयं परमात्मा हैं यह बात
वे 'डायरेक्टली' अथवा 'इन्डायरेक्टली' पुष्ट करते थे ।
वाचना में नई-नई अनुप्रेक्षा की स्फुरणा जब स्फुट होती
तब मान-कषाय का तनिक भी आंटा देखने को नहीं मिलता था
प्रभुने कृपा करके मुझे यह सुझाया,

इस तरह बताया यह कहकर स्वयं को
परमात्मा से सतत अनुगृहीत प्रदर्शित करते ।
पूज्यश्री की वाचना की सर्वाधिक ध्यानाकर्षक बात यह देखने को मिलती
कि कोई भी बात बिना प्रमाण के नहीं रखते ।
श्री भगवतीजी, श्री पन्नवणाजी, श्री ज्ञानसार, श्री योगसार,
श्री अध्यात्मसार की या भक्तामर, कल्याणमन्दिर की पंक्तियाँ
देकर ही सन्तोष मानते...
इससे भी विशेष बात यह रहती कि
संस्कृत-प्राकृत के पाठों को गुजराती भाषा के स्तवनों आदिमें से भी
प्रस्तुत किये बिना नहीं रहते थे ।
इसके लिए श्री देवचन्द्रजी म., श्री आनंदघनजी म.,
श्री यशोविजयजी म. की
रचनाएं पूज्यश्री को विशेष पसन्द थी ।
इसके अतिरिक्त जिस ग्रन्थ की वाचना देते
उस ग्रन्थ के स्वयिता के प्रति पूज्यश्री
भारी बहुमान एवं आदर बारबार व्यक्त करते थे ।
उसके पीछे पूज्यश्री की मान्यता थी कि उससे अपना
क्षयोपशम बढ़ता है ।
वाचना में पूज्यश्री की दृष्टि अत्यन्त ही विचक्षण रहती और
वाणी जल के प्रवाह की तरह सरल एवं सरस बहती...
हमें यही लगता कि बस मानो बहते रहें,
बहते ही रहें ।
पूज्यश्री की वाचना को शब्दस्थ एवं पुस्तकस्थ करने का कार्य
करनेवाले आत्मीय मित्र
पंन्यास श्री मुक्तिचन्द्रविजयजी म.
पंन्यासश्री मुनिचन्द्रविजयजी म. का बहुत-बहुत आभार...
खंत एवं घोर श्रममय
इस कार्य को करते हुए दोनों मित्रों को आंखों से देखा है
एक पत्रकार की अपेक्षा भी अधिक तीव्रता से लिखना
और उसके बाद तुरन्त उसका संमार्जन एवं
'प्रेस कोपी' करानी यह

कितनी स्फूर्ति, ताजगी एवं अप्रमत्तता का कार्य है,
यह तो देखनेवाले को ही ध्यान आता है...
ऐसे साहित्य-प्रकाशन के कारण दोनों मित्र
धन्यवाद के पात्र हैं ।
यह बताकर मैं एक मित्र की अदा से
उन दोनों को बिना मांगी सलाह करने की चेष्टा करना
रोक नहीं सकता कि
पुस्तक का नाम
'कहे कलापूर्णसूरि' के बजाय
'बहे कलापूर्णसूरि' अधिक संगत लगता ।
कहने और 'बहने' के बीच बहुत अन्तर है ।
कहने में तन्मयता / निमग्नता आवश्यक नहीं है,
बहने में दोनों अनिवार्य हैं ।
पूज्यश्री की वाचना में 'कथन' की अपेक्षा 'वहन' का अनुभव विशेष है ।
काश ! मेरा सुझाव सफल हो ।
मुझे प्रस्तावना लिखने का अवसर दिया गया तब मैं
प्रसन्न हुआ, हर्षित हुआ ।
इससे मेरा वाचना-श्रवण सानुबन्ध बना ।
यह उपकार किया पंन्यास-बन्धुओं ने...
अन्त में उपकृत, कृत-कृत्य बनकर मैं इतना ही कहूंगा... कि
'यह अवसर बार बार आये ।'

प्रीतम छवि नैनन बसी (गुजराती आवृत्ति में से)

पूज्यपाद, अध्यात्मयोगी आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय कलापूर्णसूरीश्वरजी महाराज साहिब को श्रवण करते समय सुनने का कम, देखने का अधिक होता है । 'परमात्मा ये रहे' कहते समय उनका हाथ हवा में अद्धर हिलता है तब देखने में भी मधुर असमंजस यह होता है कि आप उनकी उस अंग-भंगिमा को देखें, मुंह पर छाये स्मित को देखें या दो नैनों को देखें, हम अपनी आंखों को कहां केन्द्रित करें ?

सद्गुरु के नैन... जहां झलकता है, परमात्मा के प्रति अगाध आदर । कवि रहीम का स्मरण हो आता है - 'प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहां समाय ।' आंखों में परमात्मा ही छा गये हैं, वहां अन्य क्या समा सकता है ? अन्य की छवि कैसे प्रकट हो सकती है ?

और सद्गुरु की यह मोहक अंग-भंगिमा, हवा में लहराता-झूलता हाथ, संकेत में पेक कर के सद्गुरु क्या परम चेतना का रहस्य नहीं पकड़ाते ?

और यह निर्मल स्मित, क्वचित् मुस्कान, कभी मुक्त हास्य, परमात्मा को प्राप्त किये उसकी रस-मस्ती उभर आई है स्मित के रूप में ।

और इसीलिए भावक असमंजस में है कि वह अपनी आंखों को केन्द्रित कहां करे ?

यद्यपि, पता है कि सद्गुरु का सम्पूर्ण अस्तित्व ही द्वार है, जहां से परमात्मा के साथ सम्पर्क हो सकता है ।

गुरु-चेतना के द्वारा परम चेतना का स्पर्श ।

सद्गुरु हैं द्वार, वातायन, खिड़की ।

एक द्वार की या एक खिड़की की पहचान क्या हो सकती है ? शीशम का या सेवन का लकड़ा काम में लिया हो वह खिड़की, ऐसी कोई व्याख्या नहीं हो सकती । छत के नीचे और दीवारों के मध्य हम हों तब असीम अवकाश के साथ जिसके द्वारा संबद्ध हो सकें वह खिड़की । सद्गुरु हमारे लिए एक मात्र खिड़की हैं प्रभु के साथ संबद्ध होने की; नैनों के द्वारा, अंग-

भंगिमा के द्वारा, स्मित के द्वारा, उपनिषदों के द्वारा ।

'ललित विस्तरा' तुल्य भक्ति की प्रबलतम ऊंचाई का ग्रन्थ हो और जिसकी प्रत्येक पंक्ति को अनुभवी पुरुष खोलते हों तब भावकों के लिए तो उत्सव-उत्सव हो जाये ।

परन्तु पहले कहा उस तरह साहबजी को देखने जाते हुए सुनना चूक गये व्यक्तियों के लिए और इस भक्ति पर्व को चूक गये व्यक्तियों के लिए है प्रस्तुत पुस्तक । पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर अथवा यों कहें कि उसकी प्रत्येक पंक्ति में है परम प्रिय की रसमय बातें । एक गंगा बह रही है और आप उसके तट पर बैठ कर उसके सुमधुर जल का आस्वादन कर रहे हैं । एक अनुभव । आप आचार्य भगवंत की उंगली पकड़कर प्रभु की दिशा की ओर जा रहे हैं । वैसा प्रतीत होता है... अनुभव... जो आपको सराबोर कर दे । पढ़ने का क्रम ऐसा रहेगा । दो-चार पंक्तियां अथवा एक-आध पृष्ठ पढ़ा गया । अब नेत्र बंध हैं । आप उन शब्दों के द्वारा स्वयं को भरा जाता, बदलता अनुभव करते हैं । यहां पढ़ने का अल्प होगा, अनुभव करने का अधिक रहेगा ।

कवि मनोज खंडेरिया की काव्य-पंक्तियां हम गुनगुनाते होंगे - 'मने सद्भाग्य के शब्दो मल्या, तारे मुलक जावा ।' अन्यथा तो केवल अपने चरणों पर भरोसा रखकर चलें तो युग व्यतीत हो जायें और प्रभु का प्रदेश उतना ही दूर हो ।

प्रभु के प्रदेश की ओर ले जाने वाले सशक्त शब्दों से सभर पुस्तक आपके हाथों में है । अब आप हैं और यह पुस्तक है। मैं बीच में से बिदा लेता हूं । आप बहें इन शब्दों में, डूबें ।

- आचार्य यशोविजयसूरि

आचार्यश्री ॐकारसूरि आराधना भवन,
वावपथक वाडी, दशा पोरवाल सोसायटी, अहमदाबाद.
पोष शुक्ला ५, वि. संवत् २०५७

सम्पादकीय (गुजराती प्रथम आवृत्ति में से)

मृत्यु के बाद तो अनेक व्यक्ति महान् बन जाते हैं या दन्तकथा रूप हो जाते हैं, परन्तु कतिपय व्यक्ति तो जीवित अवस्था में ही दन्तकथा के रूप में हो जाते हैं, वे जग-बत्तीसी पर गाये जाते हैं ।

मानवजाति इतनी अभिमानी होती है कि वह किसी विद्यमान व्यक्ति के गुण देख नहीं सकती । हां, मृत्यु के बाद अवश्य कदर करेगी, गुणानुवाद भी अवश्य करेगी, परन्तु जीवित व्यक्ति की नहीं। मनष्यु के दो कार्य हैं – जीवित व्यक्ति की निन्दा करना और मृत व्यक्ति की प्रशंसा करना । **'मरणान्तानि वैराणि ।'** (वैर मृत्यु तक ही रहता है) इसीलिए ही शायद कहा गया होगा ।

परन्तु इसमें अपवाद है : अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री विजयकलापूर्णसूरीश्वरजी महाराज, जो स्वयं की विद्यमानता में ही दन्तकथा रूप बन गये हैं, लोगों के द्वारा अपूर्व पूज्यता प्राप्त किये हुए हैं।

प्रवचन-प्रभावक पूज्य आचार्यश्री विजयरत्नसुन्दरसूरीश्वरजी महाराज ने पूज्यश्री के लिए सूरत-नवसारी आदि स्थानों पर कहे गये शब्द आज भी मन में गूंज रहे हैं ।

'पूज्यश्री में पात्रता-वैभव, पुन्य-वैभव और प्रज्ञा-वैभव – इन तीनों का उत्कृष्ट रूप में सुभग समन्वय हो चुका है, जो कभी कभी ही, कुछ ही व्यक्तियों में देखने को मिलती विरल घटना है ।

हमारा दुर्भाग्य है कि विद्यमान व्यक्ति की हम कदर कर नहीं सकते । समकालीन व्यक्ति की कदर अत्यन्त ही कम देखने को मिलती है । उत्कृष्ट शुद्धि एवं उत्कृष्ट पुन्य के स्वामी महापुरुष हमारे बीच बैठे है जो हमारा अहोभाग्य है ।'

प्रवचन-प्रभावक पूज्य आचार्यश्री विजयहेमरत्नसूरीश्वरजी महाराज ने थाणा, मुलुण्ड आदि स्थानों पर कहा था, 'वक्तृत्व, विद्वत्ता आदि शक्ति के कारण मानव-मेदनी एकत्रित होती हो, ऐसे व्यक्ति अनेक देखे, परन्तु विशिष्ट प्रकार की वक्तृत्व शक्ति के बिना एकमात्र प्रभु-भक्ति के प्रभाव से लोगों में छा जानेवाली यही विभूति देखने को मिली ।

जिनके दर्शनार्थ लोग तीन-तीन, चार-चार घंटों तक कतार

में लगे रहें, यह प्रथम बार देखने को मिला ।'

श्रेणिकभाई अपने वक्तव्यों में अनेक बार कहते हैं, 'मुझे जैन धर्म में प्रवेश करानेवाले ये पूज्यश्री हैं । पूज्यश्री की निश्रा में प्रथम बार वि.सं. २०३९ में संवत्सरी प्रतिक्रमण किया । पूज्यश्री के पास नौ तत्त्वों आदि के पाठ सीखने को मिले, जो मेरे जीवन का धन्यतम अवसर था ।'

ऐसे तो अनेक अवतरण दिये जा सकते हैं जो यहां देना सम्भव नहीं है ।

निर्मल एवं निष्कपट हृदय से की जानेवाली भगवान की भक्ति का क्या प्रभाव हो सकता है ? इसका उत्तम उदाहरण पूज्यश्री हैं । पूज्यश्री सही अर्थ में परमात्मा के परम भक्त हैं, जिनकी चेतना निरन्तर परम-चेतना को मिलने के लिए तरस रही हैं, जिनके उपयोग में निरन्तर (नींद में भी) प्रभु रमण कर रहे हैं, जो सर्वत्र प्रभु को देख रहे हैं ।

आनंदघनजी, यशोविजयजी, देवचन्द्रजी या चिदानंदजी आदि प्रभु भक्त महात्माओं को तो हमने देखे नहीं हैं परन्तु ये प्रभु-भक्त महात्मा तो आज हमारे बीच हैं, यह हमारा अल्प पुन्य नहीं है ।

प्रभु-भक्त कैसा होता है ? उसके लक्षण गीता में उत्तम प्रकार से बताये हैं - समस्त जीवों का अद्वेषी, मित्र, सबके प्रति करुणामय, निर्मम, निरहंकार, सुख-दुःख में समान वृत्ति वाला, जिससे लोग ऊबे नहीं और जो लोगों से ऊबे नहीं, हर्ष-शोक-भय एवं उद्वेग-रहित, निरपेक्ष, पवित्र, दक्ष, उदासीन, प्रेम-घृणासे परे रहनेवाला, व्यथा-रहित, समस्त आरम्भों का परित्याग करने वाला, प्रसन्न या अप्रसन्न नहीं होने वाला, शोक या इच्छा नहीं करने वाला, शुभ-अशुभ कर्मों का त्यागी, मित्र या शत्रु - मान या अपमान - ठण्डी या गर्मी - तथा सुख-दुःख में समान वृत्ति रखनेवाला, संग-रहित, निन्दा या स्तुति में समान वृत्ति धारण करने वाला, मौन, चाहे जिस पदार्थ से सन्तुष्ट, घर-रहित, स्थिर बुद्धिवाला एवं भक्तिमय व्यक्ति मुझे (श्री कृष्ण को) अत्यन्त ही प्रिय लगता है ।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः, सम-सुख-दुःखः क्षमी ॥ १४ ॥

यस्मान्नोद्विजते लोको, लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६ ॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि, न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाऽशुभपरित्यागी, भक्तिमान् यः स मे प्रियः ॥ १७ ॥
समः शत्रौ च मित्रे च, तथा मानाऽपमानयोः ।
शीतोष्ण-सुख-दुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥ १८ ॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिः भक्तिमान् मे प्रियो नरः ॥ १९ ॥
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ २० ॥

- गीता, अध्याय - १२

भक्त के प्रायः ये सभी गुण पूज्यश्री में हमें दृष्टिगोचर होंगे।

ऐसे प्रभु-भक्त के श्रीमुख से निकले हुए उद्‌गार कितने महत्त्वपूर्ण होंगे ? पूर्व प्रकाशित दो पुस्तकों के अभिप्रायों से इसका ध्यान आता है।

इस पुस्तक का आमुख लिखनेवाले प्रवचन-प्रभावक, योग-मार्ग के रसिक पूज्य आचार्यश्री यशोविजयसूरिजी महाराज, प्रवचन-प्रभावक बन्धु युगल पूज्य आचार्यश्री जिनचन्द्रसागरसूरिजी म., पूज्य आचार्य श्री हेमचन्द्रसागरसूरिजी म. से हम अनुगृहीत हैं ।

इन तीनों प्रकाशनों के सम्बन्ध में मूल्यवान् मार्ग-दर्शन-दाता विद्वद्वर्य पूज्य पंन्यास प्रवरश्री कल्पतरुविजयजी गणिवर के हम ऋणी हैं।

इस अवतरण-सम्पादन के कार्य में कहीं भी पूज्यश्री के आशय के विरुद्ध आलेखन हुआ हो तो मिच्छामि दुक्कडं की याचना करते हैं।

अन्य दो पुस्तकों की तरह इस पुस्तक को भी जिज्ञासु पाठकगण आन्तरिक भावना से पसन्द करेंगे और लाभान्वित होंगे ऐसी श्रद्धा रखते हैं।

- पंन्यास मुक्तिचन्द्रविजय गणि

- गणि मुनिचन्द्रविजय

सहायकों को धन्यवाद...

☞ श्री जैन तपागच्छ धर्मशाला, फलोदी ६२५
श्री फलोदी चातुर्मास-व्यवस्था समिति, फलोदी (ज्ञानद्रव्य)

☞ कवरलाल चेरीटेबल ट्रस्ट, चेन्नई १२५

☞ M. M. Exporters (ह. : रमेश मुथा, चेन्नइ) १२५

☞ कलापूर्ण जैन आराधक मंडल, चेन्नइ ५०

☞ कोचर टेक्ष्टाइल्स, फलोदी, चेन्नइ ४०

☞ एस. देवराजजी, चेन्नइ ४०

☞ जतनाबाई पारसमलजी लुक्कड़ ४०

☞ स्व. श्रीमती चंपाबाई
(W/o. श्री मुरलीधरजी मालू, चेन्नई - धोबीपेट, फलोदी) . ४०

☞ स्व. श्रीमती पानीबाई
(W/o. श्री उदयराजजी बरड़िया, चेन्नई - टी.नगर, फलोदी) ४०

☞ श्रीमान् कल्याणमलजी हीरालालजी वैद, चेन्नइ, फलोदी ... ४०

☞ चेन्नइ - हस्तिनापुर यात्रिक संघ, चेन्नइ २५

☞ साधर्मिक बंधु, चेन्नइ २५

☞ गिरधारीलालजी कोचर, चेन्नइ २५

☞ B. F. जसराज लुक्कड़ एन्ड सन्स, मन्नारगुडी, फलोदी
(स्व. पू. आ. श्री की निश्रा में १२१ पू. साधु-साध्वीओं
के साथ शत्रुंजय डेम से शत्रुंजय के छ'री पालक संघ
(१९-५-२००० से २४-५-२०००) की स्मृति में) २५

☞ सुजानमलजी अशोककुमारजी लुक्कड़, चेन्नइ-फलोदी २५

☞ संतोषजी सोनी १२

कच्छ वागड़ देशोद्धारक अध्यात्मयोगी पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजयकलापूर्णसूरीश्वरजी म.सा. का वि.सं. २०५७ का अंतिम चातुर्मास जन्मभूमि फलोदी में हुआ । पूज्यश्री के असीम उपकारों को हम कभी भूल नहीं सकते ।

पूज्यश्री सदा के लिए अपनी अमृतमय तत्त्व-वाणी से उपकार कर ही रहे है ।

चलो, पान करें अमृत-वाणी का...
इन पुस्तकों के माध्यम से ।

अपने ससरे - साले एवं पुत्र मुनिओं के साथ,
वि.सं. २०१६, आधोई - कच्छ

१७-९-२०००, रविवार
अश्विन-कृष्णा ४
सात चोवीसी धर्मशाला, पालीताना

(८) पुरिसवरपुंडरीयाणं ।

भगवान के अचिन्त्य सामर्थ्य से ही हमको ऐसी सामग्री मिली है, प्रभु-शासन मिला है, थोड़ी भी धर्म श्रद्धा मिली है ।

'चत्तारि परमंगाणि'

- उत्तराध्ययन ४/१

कोई पूर्वजन्म के पुण्योदय से ही इन चार वस्तुओं (मानव भव, धर्म-श्रवण, धर्म-श्रद्धा, धर्माचरण) तक हम पहुंच सके हैं, अगर पहुंचे नहीं हों तो पहुंच सकते हैं ।

अभी हमारे लिए मुक्ति कितनी दूर ? लगभग किनारे तक पहुंच गए हैं । १५ दुर्लभ वस्तुओं में मात्र तीन की ही त्रुटी है, क्षपकश्रेणि, केवलज्ञान और मोक्ष !

चिन्तामणि रत्न के लिए कोई व्यक्ति जिंदगीभर भटकता रहे और किसी चरवाहे के हाथ में वह व्यक्ति चिन्तामणि रत्न देखें, तो कैसा लगे ? चिन्तामणि जैसा धर्म हमारे हाथ में है । लेकिन हम चरवाहे तो नहीं है न...?

चरवाहे को अगर पूछें : 'तू इस चमकते पत्थर को क्या करेगा ?' तो उसका जवाब होगा... 'मैं अपने बच्चों को खेलने के लिए दूंगा ।'

धर्म-चिन्तामणि का ऐसा क्षुल्लक उपयोग तो हम नहीं कर रहे है न ? ऐसी सामग्री मिली, इसकी क्या प्रशंसा करें ? कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरिजी जैसे श्रावकत्व की प्रशंसा करते हैं ।

आप और इन्द्र दोनों एक-दूसरे के साथ सौदा करने के लिए तैयार हो जाओ तो इन्द्र तैयार हो जाएगा । समृद्धि-हीन ऐसा श्रावक-जीवन भी इन्द्र को अत्यंत प्रिय है, जब कि आप धर्महीन ऐसे इन्द्रासन के लिए ही तड़प रहे हैं ।

धर्म-सामग्री की दुर्लभता का पता चलते ही भावोल्लास हंमेशां बढ़ता ही जाएगा ।

परमात्मा की पूजा का साक्षात् फल यही है : चित्त की प्रसन्नता ।

अभ्यर्चनादर्हतां मनःप्रसादस्ततः समाधिश्च ।
ततोऽपि निःश्रेयसमतो हि तत्पूजनं न्याय्यम् ॥

– **उमास्वाति**

शुद्ध आज्ञा का पालन वह भगवान की प्रतिपत्ति पूजा है । मिले हुए इस धर्म-चिन्तामणि को बातों में, नाम की कामना में खो न दें, उस विषय में सावधान रहना हैं ।

चार या दस संज्ञाओं में से कोई संज्ञा हमें पकड़ न लें, वह देखना हैं । प्रभु ही हमें इससे बचा सकते हैं । योग का शुद्ध बीज प्रभु के अपार प्रेम से ही मिलता हैं ।

बीज प्राप्ति भी प्रभु के अपार प्रेम से ही होती हैं ।

बीज का विकास भी प्रभु के अपार प्रेम से ही होता हैं ।

बीज बोने के बाद किसान देखभाल करने का छोड़ दें, तो क्या हो ? अभी किसान इंतजार कर रहे हैं : कभी वर्षा हो ।

धर्म-बीज में भी गुरु भगवंत की वाणी-वृष्टि जरुरी हैं । नंद मणियार महान श्रावक था, लेकिन भगवान की वाणी-वृष्टि न मिली, गुरु का समागम न मिला तो वाव-कूएं आदि बनाकर वाह-वाह में पड़ गया । मरकर मेंढ़क बना । यह तो अच्छा हुआ कि मेंढ़क

के भव में भगवान मिल गये और उसका उद्धार हो गया, नहीं तो क्या होता ?

भगवान को दूर करने से नंद मणियार मेंढ़क बना ।

भगवान के नमस्कार के भाव मात्र से मेंढ़क दर्दुरांक देव बना ।

धर्म-बीज को बोने के बाद संभाल रखने में न आयें तो आगे का विकास दुर्लभ बन जाता है । मैं मेरी ही बात करूं तो लोगों की इतनी भीड़ कि मैं अपने लिए ५-१० मिनिट भी नहीं निकाल सकता । **बहुतबार होता है : मैं क्या दूंगा ? मेरे पास क्या हैं ? फिर भी विचार आता है : मुझे भले ही कुछ नहीं आता । मेरे भगवान को तो आता हैं, वे साथ है । फिर क्या चिन्ता ?**

पण मुझ नवि भय हाथो-हाथे, तारे ते छे साथे रे;

- पू. उपा. यशोविजयजी

सच कहता हूं : अभी ही भगवती का पाठ महात्माओं को देकर आया हूं । क्या कहूंगा ? वह थोड़ा भी सोचकर नहीं आया हूं । भगवान भरोसे गाडी चला रहा हूं ।

हमको शरणागति भी कहाँ आती है ? वह भी भगवान ही सीखाते हैं ।

✱ भगवान सिंह जैसे हैं । सिंह जैसा शौर्य श्रेणिक, सुलसा, रेवती आदि में आ सके, लेकिन सामान्य लोगों का क्या ? आठवां विशेषण है : भगवान पुंडरीक कमल जैसे हैं, दर्शन मात्र से सबको आनंद देनेवाले हैं ।

भगवान के बिना यह आनंद दूसरे कहां से मिलेगा ? नट-नटी के दर्शन से मिलेगा ? बहुत लोग प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, परंतु मिले कहां से ?

कमल बनता है, कीचड़ और पानी से, लेकिन रहता हैं न्यारा ! भगवान भी कमल जैसे हैं ।

लक्ष्मी ने अपने निवास के रूप में कमंल को स्वीकारा हैं । इसी लिए 'कमला' कहलाई हैं । लक्ष्मी को कमल के पास जाना पड़ता हैं । यहां पर कमल प्रभु की सेवा करने के

लिए आते हैं । प्रभु के चरण जहां पड़ते हैं, वहां पर कमल उपस्थित हो जाते हैं ।

कमल आनंद का कारण बनता हैं, उसी तरह भगवान मोक्ष-परम आनंद के कारण बनते हैं ।

जयइ जगज्जीवजोणि, वियाणओ जगगुरु जगाणंदो ।

- मलयगिरि आवश्यक टीका

इस श्लोक में भगवान को '**जगाणंदो**' कहे हैं । भगवान जगत को आनंद देनेवाले तो हैं ही, उनका कहा हुआ धर्म भी आनंद देनेवाला हैं ।

भगवानने कैसी जमावट कर दी है ? विचारते ही आनंद-आनंद छा जाता है ! अनार्य कुल में जन्म लिया होता तो ? अजैन कुल में या मांसाहारी कुल में जन्म लिया होता तो ? जैन के यहां जन्म लेने के बावजूद ऐसे संस्कारी माता-पिता न मिले होते तो ? भगवानने हमारे लिए कैसी सुंदर व्यवस्था कर दी हैं ? यह विचारते ही आनंद छा नहीं जाता ?

ऐसी सामग्री मिली, संस्कार टिके रहे, उसका कारण पुण्य हैं । पुण्य के कारण भगवान हैं । इसीलिए भगवानने ही यह सब जमा दिया है, ऐसा कह सकते हैं ।

भगवान का धर्म कैसा आनंदकारी हैं ? इनके धर्म का पालन भले आप करो, किंतु आनंद किनको हों ? धर्मी जिन जीवों की रक्षा करे उनको आनंद न हों ? भगवान का जन्म होता है, और समग्र जीव को आनंद होता हैं, यही इस बात का प्रतीक हैं ।

दूसरों को सुख-आनंद और प्रसन्नता दें, यही धर्म से सीखना हैं । एक 'अभय' शब्द में सुख, आनंद, प्रसन्नता वगेरह सब कुछ हैं । भगवान ही नहीं, भगवान का भक्त भी अभयदाता होता है, **भगवान का साधु मतलब आनंद की प्रभावना करनेवाला ! जहां जाता हैं वहां पर आनंद की बुआई करते ही जाता हैं । जहां जाता है, वहां प्रसन्नता बिछाते जाता हैं ।**

आप दूसरों को आनंद तो ही दे सकते हो, अगर जीवों पर अपार करुणा हों । करुणारहित हृदयवाले को कभी दीक्षा नहीं दे सकते । यदि दे दी गई हो तो रवाना करना पड़ता हैं । एक मक्खी

मारने की आदतवाले को पू. बापजी म. की आज्ञा से उत्प्रव्रजित करना पड़ा था ।

साधुका द्रव्य दीक्षा का पालन भी लोगों को कितना आनंद देता हैं ? दक्षिणमें गये । अजैन प्रजा भी इतनी प्रसन्नता से झूकती है कि हम स्तब्ध बन जायें । भगवानने कैसा धर्म बताया हैं ?

इस जीवन में हम दूसरों को आनंद के स्थान पर उद्वेग दें तो ? हमारे कारण कोई धर्म की निंदा करे तो ?

पू.पं. भद्रंकर वि.म. कहते : 'चारों तरफ हरियालीवाला स्थान हो, रोड़ के उपर ही हरियाली रहित स्थान मिलता हो तो हरियाली के उपर बैठीये, किंतु रोड़ के उपर नहीं ।'

हमारे कारण किसी को उद्वेग हो, ऐसा व्यवहार हो ही कैसे सकता हैं ? शासन की प्रभावना के लिए शायद पुण्य चाहिए, परंतु अपभ्राजना रोकने के लिए ऐसे पुण्य की जरुरत नहीं हैं । यह तो सबसे हो सकता हैं । यह सबका कर्तव्य हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

बीलीमोरावाले जीतुभाई श्रोफ के द्वारा 'उपदेशधारा' पुस्तक मिली हैं । शैली रोचक असरकारक हैं । कथा-वार्तालाप, सूत्रात्मक निरूपण, प्रकरण के अंतमें विशेष प्रेरक परिच्छेद इत्यादि अत्यंत उपयोगी हैं ।

पसंदगी के विषय... मानव जीवनमें उदात्त भावना और गुणों के विकासमें पूरक बन सकते हैं । आपके साहित्य-संपादन के बारेमें जाना हैं । जैन गीता काव्यों का संशोधन चल रहा हैं । उसमें ज्ञानसार गीताका आपश्रीने पद्यानुवाद किया हैं उसकी नोट की हैं ।

– डोकटर कविन शाह

.बीलीमोरा

पू. भद्रंकरसूरिजी एवं पू. जंबूवि. के साथ, शंखेश्वर, वि.सं. २०४६

१८-९-२०००, सोमवार
अश्विन कृष्णा - ५

* इस तीर्थ के आलंबन से अनेक आत्माएं मोक्ष में गई हैं और भविष्य में जाएगी ।

'तीरथ सेवे ते लहे, आनंदघन अवतार'

- आनंदघनजी

तीर्थ की सेवा करता हैं, उसे आनंदघन-पद (मोक्ष) मिलता ही हैं ।

तीर्थ की सेवा और तीर्थंकर की सेवा, दोनों में महत्त्व किसका ज्यादा ? तीर्थंकर की सेवा मुक्ति देती हैं, उसी तरह तीर्थ की सेवा भी मुक्ति देती हैं न...?

अरिहंतादि चार की हम शरण लते हैं, किंतु इनमें शरण देने की शक्ति ही न होती तो ? इनमें लोकोत्तमत्त्व या मंगलत्त्व न होता तो हमें लाभ मिलता ?

चारों की शरण में मुख्य अरिहंत की शरण हैं । उसके बाद सिद्ध, साधु और धर्म हैं । यहां देखा ना ? तीर्थ के लिए दो हैं : साधु और धर्म । इसीलिए ही तीर्थंकर से तीर्थ बलवान हैं।

हेमचन्द्रसूरिजी कहते हैं : तेरी, तेरे फलभूत सिद्धों की, तेरे

शासन में रक्त मुनिओं की, और तेरे शासन (धर्म) की शरण स्वीकारता हूं ।

त्वां त्वत्फलभूतान्...

- वीतराग स्तोत्र

अरिहंत के सेवक भी बनना हो तो उनकी अचिन्त्य शक्ति जाननी ही पड़ती हैं । यह अचिन्त्य शक्ति ही तीर्थ में काम कर रही हैं । भगवान आदिनाथ से मोक्ष में गये, उससे असंख्य गुने उनके तीर्थ के आलंबन से गये हैं ।

भले गुरु उपकार करते लगते हों, परंतु गुरुभी आखिर भगवान के ही न...?

आचार्य श्री रत्नसुंदरसूरिजीको मैंने इसी तरह समझाया था : शिबिरार्थीओं में दूसरे किसीका नहीं, आपका ही हाथ गुरु पू. भुवनभानुसूरिजीनें पकडा, उसका क्या कारण ? यही भगवानकी कृपा कही जाती हैं । वह भले गुरु के माध्यम से आती हो, लेकिन हैं भगवान की ।

तीर्थंकरोने अपनी शक्ति वासक्षेप द्वारा गणधरोंमें स्थापित की । गणधरों की यह शक्ति पाट-परंपरा से आचार्योंमें स्थापित होती आई । यही शक्ति आज भी काम कर रही हैं ।

बहुत श्रावक कहते हैं : आपका उपकार हैं । हमने तो आपको ही देखें हैं । मैं कहता हूं : नहीं भाई ! यह भगवान का उपकार हैं ।

यह भी कहने के लिए नहीं, हृदय से कहना चाहिए । अगर थोड़ा सा 'मैं' आ जाय तो हम मोह की चालमें फंस जाते हैं ।

* जिन और जिनागम एकरूप ही हैं ।

'जिनवर जिनागम एक रूपे' यह बात पं. वीरविजयजी कहां से लाये ? 'पुक्खरवरदी' देखो । उसमें सबसे पहले भगवानकी स्तुति की हैं । शिष्य शंका उठाता हैं : यहां तो आगमकी स्तुति चल रही हैं । तो भगवानकी स्तुति किस लिए ? शंका को दूर करते कहा : भगवान और श्रुत दोनों एक ही हैं, इसीलिए ।

* तुम्हारा ज्ञान तदुभय तक न पहुंचे तो उसके पहले के सातों (ज्ञानाचार) व्यर्थ हैं ।

तदुभय का अर्थ सूत्र और अर्थ तो होता ही हैं । परंतु उसका महत्त्वपूर्ण दूसरा भी अर्थ होता हैं : जीवन में उतारना । जैसा जाना. वैसा जीना वह तदुभय हैं ।

श्रुतज्ञान पढ़ते हो तब भगवान ही सामने दिखने चाहिए, इसीलिए मैं यह बात कह रहा हूं । हमने तो भगवान और भगवानका नाम, भगवान और भगवानके आगम अलग कर दिये हैं । भगवान इसी तरह ही आपके पास आयेंगे, देहधारी बनकर नहीं आयेंगे, जैसे जैनेतरों में आते हैं ।

'नाम ग्रहंता आवी मिले, मन भीतर भगवान' ऐसा मानविजयजीने यों ही नहीं कहा । नाम बोलते समय आपकी चेतना भगवन्मय बनी याने भगवान आ ही गये समझें ।

पू.आ. हेमचन्द्रसागरसूरिजी : उपयोग (जागृति) के बिना भी भगवान का नाम ले सकते हैं न ?

पूज्यश्री : उस समय भगवान नहीं आते ऐसा समझ लो । भगवान के बिना कुछ याद न हों, मात्र भगवान का ही स्मरण हों तो भगवान आते ही हैं ।

यह तो आप मनमें १७ वस्तुएं रखकर भगवान को याद करते हो ! भगवान कहां से आयेंगे ?

मुनि भाग्येशविजयजी : भगवानकी फी बहुत ऊंची हैं ।

पूज्यश्री : हां... हैं ही, नहीं तो बहुत लोग भगवान को प्राप्त कर लें । उवसग्गहरं की कुछ गाथाएं इसीलिए ही संहरण करनी पडी ना ? भगवान की स्तुति करते लोग अपने संसारी कार्य भी कराने लगे । शंखेश्वरमें आज यही चलता हैं न ?

आगमके एकेक अक्षरमें भगवान दिखते हों तो अभ्यास छोड़ देंगे ? आगममें रस नहीं पड़ेगा ? फोन नं. आप घूमाओ तो शायद उस व्यक्ति के साथ संपर्क न हो, वैसा बन भी सकता है, परंतु आगम के अक्षरों से भगवान न मिलें, ऐसा नहीं ही होगा । शर्त मात्र इतनी : आपका मन भगवन्मय चाहिए, मेरा मन भी कभी-कभी ही भगवन्मय बन सकता हैं ।

विक्षिप्त अवस्था में ही मन लगभग ज्यादा रहता हैं । हमें तो हमारे नामकी, हमारे अहंकी ज्यादा चिंता हैं । भगवान

के साथ क्या लेना-देना हैं हमें ? फिर भगवान हृदय में कैसे आयेंगे ?

✱ सूत्र-अर्थ तो फिर भी करते हैं, लेकिन तदुभयमें क्यों खामी हैं ? आत्मा के अनंत गुणों में मुख्य आठ गुण हैं । उन गुणों को रोकने के लिए ही ज्ञानावरणीयादि आठ कर्म चिपके हुए हैं ।

इनमें भी मुख्य मोहनीय हैं । उसने दो खाते संभाले हैं : दर्शन और चारित्र रोकने के । मोह का जोर हों वहां तक 'तदुभय' नहीं आता ।

तदुभय के लिए खास चारित्र मोहनीय का क्षयोपशम चाहिए । इसके पहले दर्शन मोहनीय का क्षयोपशम चाहिए ।

✱ **मैं बोलूं उसका कोई महत्त्व नहीं । सामने शास्त्र-पंक्ति हों तो ही महत्त्व हैं ।**

✱ तीर्थंकर नामकर्मका बन्ध किनको होता है ? सिर्फ बाह्यतप-क्रिया से नहीं, ४०० उपवास सें नहीं, लेकिन जिसने भगवान के साथ समापत्ति साधी उसको ही बन्ध होता हैं । बाकी बाह्य तपश्चर्या तो अभव्य भी कर सकता हैं ।

✱ ध्यानकी साधना से प्रज्ञा परिकर्मित न बनें वहां तक आगम का रहस्यार्थ नहीं मिलता । जैनेतरों में कहा हैं :

आगमेनानुमानेन, योगाभ्यासरसेन च ।
त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञां, लभते तत्त्वमुत्तमम् ॥

आगम, अनुमान और योगाभ्यास का रस – इन तीनों से प्रज्ञा को परिकर्मित करता साधक उत्तम तत्त्वको प्राप्त करता हैं ।

✱ भगवतीमें गौतम स्वामी प्रश्न करते हैं वह यों ही नहीं करते । भगवती में लिखा हैं : 'झाणकोट्ठगए'

अर्थ-पोरसी में ध्यान कोठे में प्रवेश करने के बाद पूछते थे । ज्यों ज्यों उसका ध्यान धरें, त्यों त्यों नये-नये अर्थों की स्फुरणा होती ही जाती हैं ।

श्रुत-केवलीओंमें भी अर्थ-चिंतन में तरतमता होती हैं, परस्पर छट्ठाणवड़िया होता हैं ।

✱ जितना चिंतन गहरा, अर्थ उतने ज्यादा स्फुरते हैं ।

✱ घड़ियाल के सभी स्पेरपार्ट कामके हैं, उसी प्रकार साधु

जीवन के सर्व अंग कामके हैं । अठारह हजार शीलांग कामके हैं । एक भी अंग बिगड़ा तो आराधना की घड़ियाल अटक जाती हैं ।

✱ पुणिया श्रावक के सामायिककी प्रशंसा क्यों की ? उसका मन इतना पवित्र और स्थिर रहता कि कोई भी अशुद्धि जल्दी से पकड़ी जाती थी । इसीलिए ही भूल से पड़ोसीके घरका गोबर आ जाने से उसका मन सामायिक में लगा नहीं था ।

आपके पास कितना अन्यायका धन होगा ? फिर आप कहते हैं : माला में मन नहीं लगता । कहां से लगेगा ?

हम कितने अतिचारों से भरे हुए हैं ? फिर मन कहां से लगें ? पुणिया श्रावक को इतनी संभाल रखनी पड़ी तो हमको कुछ संभाल नहीं रखनी ?

आत्मा को आश्वासन दे सकें ऐसी साधना न करूं तो मेरा साधुपन किस कामका ? - ऐसा विचार नहीं आता ?

छोटा बालक खेलते १० लाख रूपये की गठरी जला दें, तो देखकर उसके पिता को कितना दुःख होगा ? ऐसा ही दुःख हमें हो रहा हैं : संयम में होती अशुद्धिओं को देखकर, होते हुए प्रमाद को देखकर ।

आगम, अनुमान और योगाभ्यास से प्रज्ञा को परिकर्मित करने के लिए अजैन लोग कहते हैं । हमारे हरिभद्रसूरिजी कहते हैं : श्रुत, चिन्ता और भावनासे आत्माको परिकर्मित बनानी हैं । भावना ज्ञानवाला चारित्रवान ही होता हैं, वह तत्त्व संवेदन को पाया हुआ ही होता हैं ।

श्रुतज्ञान : सामान्य शब्द का ज्ञान ।

चिंताज्ञान : टीका - निर्युक्ति - चूर्णि आदि से विशिष्ट अर्थका ज्ञान । जिन्होंने अर्थ (टीका)का निषेध किया उन्होंने भगवानको खोये । क्योंकि भगवान स्वयं अर्थ से ही देशना देते हैं ।

भावनाज्ञान : हृदय में उसको भावित बनाना वह !

✱ जीव नवि पुग्गली !

सुमतिनाथ भगवान के देवचन्द्रकृत स्तवनकी यह गाथा हैं । मुझे तो ये स्तवन बालपन से ही कंठस्थ हो गये थे । भगवती के पाठ तो कहां याद रहते हैं ? लेकिन यह कड़ी तो मनमें ही घूमती रहती हैं ।

यदि शरीर का पुद्‌गलपन ध्यानमें न रहें, थोड़ा प्रमाद हो जाय तो मोह आक्रमण करते डरता नहीं हैं ।

बालपनमें कण्ठस्थ की हुई ये कृतियां आज मेरे लिये मूल्यवान् बन गई हैं । जैसे किसी गृहस्थ को सस्ते भाव में खरीदा हुआ सोना आज मूल्यवान् बन जाता हैं ।

✱ पू. हरिभद्रसूरिजीने यहां हर पदमें अन्य मतका खंडन किया हैं; उसका कारण यह हैं कि : जैनेतरों की ओर से जैनों पर आक्षेप हुए थे । इन आक्षेपों का खंडन जरूरी था । अतः हरिभद्रसूरिजी गृहस्थवाससे ही चौदह विद्या के पारगामी विद्वान थे । इसीलिए इनके सामने उस युग के सभी मत उपस्थित रहे हों । इसी कारण से एकेक पदमें अन्य मतका सहज रूप से खंडन होता रहता है ।

⌘ ⌘ ⌘

आपश्री द्वारा भेजी गई 'कहे कलापूर्णसूरि ३' एवं मन्नारगुडी से पु.नं. २ प्राप्त हुई । हररोज सुबह सामायिकमें इन्हीं पुस्तकों पर वांचन चल रहा हैं । आपका संकलन एवं गुरु भगवंत की वाचना इतनी गजब की हैं कि मानो वे फलोदीमें नहीं, बल्कि बेंगलोरमें हमारे समक्ष बैठकर समझा रहे हैं । सामायिक का समय कब पूरा होता हैं पता नहीं चलता । महोपाध्याय यशोविजयजी म.सा. को विमलनाथ भगवान की प्रतिमा देखकर तृप्ति नहीं होती हैं बल्कि देखने की जिज्ञासा बढती हैं । उसी भांति हमें आपका साहित्य पढकर ऐसे साहित्य ज्यादा से ज्यादा पढने की जिज्ञासा बढती हैं । पू. गुरु भगवंतश्री ज्यादा से ज्यादा ऐसी प्रवचन गंगा की धारा प्रवाहित करते रहे एवं आप उस धारा को हम तक पहुँचाते रहें ।

– अशोक जे. संघवी

बेंगलोर

पू. गुणरत्नसूरिजी के साथ, भेरुतारकधाम (राज.) वि.सं. २०५७

१९-९-२०००, मंगलवार
अश्विन कृ. ६

तीर्थंकरमें अचिन्त्य शक्ति होती हैं । हमारी कल्पनामें भी न आये ऐसे उपकार उस शक्ति से होते रहते हैं । दीर्घदृष्टि से विचारें तो महाविदेह क्षेत्रमें रहे हुए तीर्थंकर भी उपकार करते ही हैं । **घर का व्यक्ति विदेश जाता हैं तो भी घरका ही कहा जाता हैं । तीर्थंकर किसी भी स्थल पर हों, हमारे ही हैं । महाविदेह क्षेत्र में रहे हुए भगवान महाविदेह के लोगों के ही नहीं, हमारे भी हैं । अगर ऐसा न होता तो रोज उनके चैत्यवंदन का विधान न होता ।**

भगवानने हमको यहां रखे हैं वह हमें परिपक्व बनाने के लिए ! अलग क्षेत्र में रहते हैं, उससे हम कोई अलग नहीं हैं । मां अपने पुत्रको कमाने के लिए परदेशमें भेजती हैं, उससे हृदयकी जुदाई थोड़े ही हो जाती हैं ?

भूतकालका वर्तमानमें आरोपण करके जैसे भगवानके कल्याणकों की आराधना की जाती हैं वैसे भावी का भी वर्तमानमें आरोपण कर सकते हैं । इसी दृष्टि से भरतने अष्टापदके उपर २४ तीर्थंकरोकी मूर्तियां भराइ थी ।

इसी दृष्टिकोणसें मैं कहता हूं : **एक तीर्थंकर की स्तवना सर्व तीर्थंकरों को पहुंचती हैं । एक तीर्थंकर का प्रभाव आप झेलते हों, तब सभी तीर्थंकर का प्रभाव झेलते हों । एक तीर्थंकर को प्रेम करते हो तब आप सर्व तीर्थंकरो को प्रेम करते हो । एक तीर्थंकर को आप प्रेम करते हों तब सर्व तीर्थंकरो के नाम, स्थापना, आगम आदि सब पर प्रेम करते हो ।**

जो नाम प्रभु के साथ अभेद साधता हैं, फिर मूर्ति के साथ अभेद साधता हैं उसी को ही भाव भगवान मिल सकते हैं । इसीलिए ही हमें यहां (भरतक्षेत्रमें) रखे गये हैं । जिससे नाम-स्थापना की भक्ति कर भाव-भगवान की भूमिका का निर्माण कर सकें ।

हम नाम-नामी को बिलकुल भिन्न मानते हैं, उसी के कारण हृदय से भक्ति कर नहीं सकते हैं । अभी भगवतीमें हम पढ़कर आये हैं : गुण-गुणीका कथंचित् अभेद होता हैं । अगर ऐसा न होता तो गुण और गुणी दोनों अलग-अलग हो जाते । गुण-गुणी की तरह नाम-नामी का भी अभेद हैं ।

नाम, मूर्ति और आगममें तो भक्त, भगवानको देखता ही हैं, आगे बढ़कर चतुर्विध संघके प्रत्येक सभ्यमें भी भगवान देखता हैं । तीर्थ तीर्थंकर से स्थापित हैं । गुरु शिष्य के उपर उपकार करते हैं वह भी वस्तुतः भगवानका ही उपकार हैं । गुरु तो मात्र वाहक हैं, माध्यम हैं ।

शास्त्रोंमें वहां तक कहा हैं : हम भगवानको नमस्कार करते हैं वह नमस्कार भी हमारा नहीं, भगवानका गिना जाता हैं, नैगमनयसे ।

नमस्कार मैंने किया वह भगवानका कैसे ?

दलालने सेठकी तरफसे कमाई की, लेकिन वह सेठ की ही गिनी जाती हैं न...?

रसोइया खिलाता हैं, लेकिन खाना तो सेठ का ही कहा जाता हैं न...?

नौकरने गधा खरीदा, किंतु वह सेठ का ही गिना जाता हैं न...?

हम चतुर्विध-संघ के सभी सभ्य भगवान के हैं न...? कानजी के मतकी तरह हम सिर्फ उपादानको ही महत्त्व नहीं

देते, भगवान को आगे रखते हैं, पूज्य देवचन्द्रजीकी तरह हम निमित्त कारण को आगे रखते हैं ।

हम ही भगवान के हों तो हमारा नमस्कार हमारा कैसे हो सकता हैं ? हम पूरे ही वाहन में बैठे हों तो हमारा सामान हमारे उपर भाररूप कैसे बन सकता हैं ?

नमस्कार भी भगवान ले लें तो हमारे पास रहा क्या ? ऐसे विचारकर चिंतातुर मत होना । हमारे सेठ (भगवान) इतने उदार हैं कि वे हमारे नमस्कार रख नहीं देते, लेकिन अनेकगुने बढ़ाकर वापस देते हैं ।

हम अभी तक भगवान को संपूर्ण समर्पित नहीं बने हैं । समर्पित बने हों तो जुदाई कैसी ?

मैं स्वयं साथ हूं । मुझमें इतना समर्पण भाव नहीं प्रगटा हैं ।

पू. हेमचन्द्रसागरसूरिजी : यह सब बहुत कठिन हैं ।

पूज्यश्री : कठिन तो हैं लेकिन करना हैं । आपके जैसे वक्ता यहां सुनने के लिए आते हैं, यही योग्यता का सूचक हैं । आपके जैसे अनेकों को पहुंचाएंगे ।

पू. हेमचन्द्रसागरसूरिजी : हम तो आपको लूटने आये हैं ।

पूज्यश्री : अब आप भी दूसरों को देना । मेरे जैसे 'कंजूस' मत बनना ।

पू. हेमचन्द्रसागरसूरिजी : कंजूस शब्द का प्रयोग शुभ समयमें हुआ हैं ।

पूज्यश्री : उस दिन आगम-परिचय वाचनामें मैंने भगवती के लिए (घण्टे-डेढ़ घण्टे के लिए)ना कह दी थी तो आपको कंजूसी लगी होगी, लेकिन स्वास्थ्य के कारण ज्यादा खींच सकूं ऐसा न लगने के कारण ना कही थीं, बाकी कहां एतराज था ?

पू. हेमचन्द्रसागरसूरिजी : नहीं, ऐसा तो मेरे मनमें भी नहीं था । यह बात तो पू. कल्पतरुविजयजी से हो गई थी । परसौं तो आप पोणा घण्टा बहुत ही स्वस्थता से बोले थे ।

पूज्यश्री : १५-२० मिनिट का बोलकर ३०-४० मिनिट हो जाये तो एतराज नहीं, परंतु घण्टे का वचन देने के बाद २० मिनिट में पूरा नहीं कर सकते, समझे ?

✱ समग्र जीवराशिमें भगवान हैं । समग्र जीवराशिमें हम हैं या नहीं ? अगर हम भगवन्मय हों तो उससे कम क्यों मानें ?

उपयोगात्मा, द्रव्यात्मा और दर्शनात्मा के रूपमें हम सिद्धों के साथ हैं । (भगवतीमें अभी ८ आत्माओं की बात चल रही हैं । उपयोगात्मा आदि तीन इनमें से ही हैं ।)

सिद्ध समान होते हुए भी हम पामर बने हुए हैं । यही बड़ी करुणता हैं ।

✱ हम पासे फेंकते हैं देह आदि के उपर, लेकिन बंधन होता हैं हमारा स्वयं का ही । हमारा यह पासा नया हैं । केवट जाल फेंकता हैं, परंतु पकड़ाई जाती हैं मछलियां, परंतु यहां पर तो हमारी जालमें हम ही पकड़ा रहे हैं ।

सिद्धत्व याद रहे तो ऐसी जाल में कभी फंसेंगे नहीं ।

आत्मबोधो नवः पाशो, देहगेहधनादिषु ।
यः क्षिप्तोऽप्यात्मना तेषु, स्वस्य बंधाय जायते ॥

- ज्ञानसार

✱ चतुरशितिजीवयोनिलक्षप्राणनाथाय ।

- शक्रस्तव

भगवान चौराशी लाख जीवयोनि के प्राणनाथ हैं । भगवानने तो हमारे साथ अभेदभाव किया, लेकिन हमने ही भगवान के साथ भेद रखा हैं । **भगवान तो हमारे साथ संपर्क रखने के लिए तैयार हैं, हम ही तैयार नहीं हैं । भगवान के साथ संपर्क साधने के लिए ही 'प्रीतलडी बंधाणी रे' वगेरह स्तवन गाता हूं ।**

(९) पुरिसवरगंधहत्थीणं ।

इस पद से गुणक्रम-अभिधान-वादी बृहस्पति के शिष्यों के मत का खंडन हुआ हैं ।

आत्माके अनंतगुणों का कोई क्रम नहीं हैं । जैन दर्शन एकान्त माननेवाला नहीं हैं । इसीलिए गुणों का वर्णन क्रम से भी किया जाता हैं, उत्क्रम से भी किया जाता हैं ।

उसकी दलील यह हैं कि कितनेक गुण छद्मस्थ-अवस्था के हैं । कोइ गुण केवलज्ञान के बाद के हैं । गुण-वर्णन क्रमशः होना चाहिए ।

परंतु हमारे यहां पश्चानुपूर्वी से, पूर्वानुपूर्वी से, अनानुपूर्वी से सब तरह वर्णन हो सकता हैं । उदाहरण के तौर पर मुख्यता की अपेक्षा से सम्यग्दर्शन के लक्षणों में शम प्रथम हैं । उत्पत्ति की अपेक्षा से आस्तिकता प्रथम हैं । वहां पश्चानुपूर्वी भी स्वीकार की गइ हैं । उसी तरह यहां भी समझें ।

* गंधहस्ती से दूसरे हाथी भाग जाते हैं, मिट्टी के तेल से चिंटीया भाग जाती हैं, उसी तरह भगवान से सारे उपद्रव भाग जाते हैं । इसीलिए ही भगवान पुरुषों में 'गंधहस्ती' हैं ।

पुण्यपुरुष हो वहां उपद्रव कम होत हैं, उनके सांनिध्य से आनंद-मंगल फैलता रहता हैं ।

पू. हेमचन्द्रसागरसूरिजी : जैसे अभी उपद्रव नहीं हैं ।

पूज्यश्री : ऐसे नहीं कह सकते । आप सब साथ में ही हो ना...? कहनेवाले तो ऐसे भी कहते हैं कि ये होते हैं वहां वृष्टि नहीं आती ।

दोनों तरफ बोलनेवाले लोग हैं । हमें दोनों में समभाव रखना हैं ।

* अलोकमें किसीको जाना हैं ? बड़ा स्थान मिलेगा । आकाशास्तिकायने तो कह दिया हैं : यहां आप अकेले नहीं रह सकते । दूसरों को स्थान देना ही पड़ेगा । 'मेरे कमरे में मैं दूसरे को आने नहीं दूंगा' ऐसी वृत्ति मेरे पास नहीं चलेगी ।

आकाश की उदारता तो देखो । धर्म-अधर्म पुद्गल, जीव वगेरह को कैसे समाकर अलिप्त भाव से बैठा हैं । इसके पाससे उदारता गुण लेने जैसा नहीं हैं ? छोटी-छोटी तुच्छ बातों को लेकर लड़नेवाले हम इसमें से कोइ बोधपाठ लेंगे ?

* **सर्वदेवमयाय ।**

- शक्रस्तव

सर्व देवोमें भगवान व्याप्त हैं । (भले कोइ रामकृष्ण जैसे कालीमाता को मानते हों, लेकिन नमस्कार भगवान को ही पहुंचता हैं । नाम बदलने से क्या हो गया ? भगवान का नाम भी भूल जाओ तो अर्हं या ओं भी चलता हैं ।)

सर्वज्ञानमयाय - जगत का सर्वज्ञान भगवान का ही हैं । हम ज्ञान पढ़ते हों तब भगवन्मय ही होते हैं ।

तेजोमयाय – भगवान तेजोमय हैं, उद्द्योतमय हैं । **लोगस्स उज्जोअगरे** । साधक को बहुतबार तेज दिखाई देता हैं । यह ज्योतिर्ध्यान हैं । परमज्योतिरूप भगवान में से ही आता यह स्फुलिंग हैं ।

ध्यानमयाय – ध्यानमें प्रतिमाजी आये । आलंबन प्रतिमा का लेना होता हैं । ध्यान के बिना वह हो नहीं सकता । ध्यान जो कोई भी करें वह भगवन्मय ही हैं ।

ऐसे भगवान के साथ एकाकार बनेंगे तब भगवान अवश्य मिलेंगे ही ।

⌘ ⌘ ⌘

धनमें ही संतोष न मानें

पूज्यश्रीने कहा : (अमेरिकन जिज्ञासु मित्रों को) रोज सुबह होते ही कहाँ दौड़ते हो, क्यों दौड़ते हो ? धन कमाने के लिए ? उसके बाद सुख मिलता हैं ? ठीक हैं । धन जीवन निर्वाह का साधन हैं, लेकिन उसमें ही सुख हैं ऐसा मानकर संतोष प्राप्त न करें । इस तीर्थमें क्यों आये हो ? क्या कमाई होगी ? कमाईमें फरक समझ में आता हैं ? प्रभुभक्ति द्वारा ही सच्ची कमाई होगी ।

– सुनंदाबहन वोरा

भुज, वि.सं. २०४३

२०-९-२०००, बुधवार
अश्विन कृष्णा – ७

✱ भगवान के तीर्थमें द्रव्य से भी पुण्य के बिना नंबर नहीं लगता । भगवान हमारे हैं, ऐसा भाव तीर्थ के आलंबन से उत्पन्न हो सकता हैं । **शरीर–इन्द्रियादि मेरे है – ऐसा मानकर जीवन पूरा करनेवाले जीव को 'भगवान मेरे हैं' ऐसा कभी लगा नहीं हैं । अनेक भवों का यह अभ्यास दूर होना आसान नहीं हैं । विकथाएं बहुत सुनने मिलती हैं, भगवान की बातें जगतमें कहीं सुनने को नहीं मिलती । भगवान मेरे है, अच्छे हैं – ऐसी दुर्लभ बातें इस ललित विस्तरामें से ही आपको जानने मिलेंगी ।**

नमुत्थुणं तो बालपन से जनते हैं, लेकिन उसमें ऐसी दुर्लभ बातें हैं, वह तो इस ललित विस्तरा से ही जान सकते हैं ।

भाव तीर्थंकर भले नहीं हैं, लेकिन भाव तीर्थंकर को पैदा करनेवाले संयोग हाजिर हैं । व्यक्ति भले हाजिर न हो, परंतु उसका नाम चारों तरफ गूंजता हों, उसकी तस्वीरें (स्थापना) सब जगह दिखाई देती हों, उसको देखनेवाले लोग विद्यमान हों, वह भी उसकी महानता बताने के लिए काफी हैं ।

शरीर मेरा हैं, घर मेरा हैं, ऐसा बहुतबार लगा, परंतु भगवान

मेरे हैं, ऐसा कभी लगा ? भगवान मेरे हैं ऐसा भाव जगने से भगवान कभी दूर नहीं लगेंगे ।

'नाम ग्रहंतां आवी मिले, मन भीतर भगवान'

- उपा. मानविजयजी

'मैं शायद भूल भी जाऊं । परंतु भगवन् ! आप तो मुझे याद कराना था' ऐसे भक्त ही भगवानको बोल सकता हैं ।

भगवान अपने नाम-मूर्ति-आगम-संघ आदि के साथ जुड़े हुए हैं । इसमें से किसी भी माध्यम से आप भगवान को पकड़ सकते हों ।

*** हम भाव भगवानकी बातें करते हैं । परंतु भाव भगवान को कौन देख सकता हैं ? साक्षात् भगवान भी सामने बैठे हो तो भी उनका आत्मद्रव्य थोड़ी दिखनेवाला हैं ? शरीर ही दिखता हैं । भाव जिन विद्यमान हो तभी भी उनको कोइ हृदयमें या घरमें ले नहीं जाते, उस समय भी नाम और स्थापना ही आधारभूत होते हैं ।** इसीलिए ही पू. देवचन्द्रजी कहते हैं :

'उपकारी दुग भाष्ये भाख्या, भाव वंदकनो ग्रहीए रे...'

नाम और स्थापना जिन ही लोगों के लिए उपकारी हैं ।

भाव भी आखिर शब्द से ही पकड़ा जायेगा न...? भावको बतानेवाले और ग्रहण करनेवाले शब्द (नाम) ही हैं, चित्र (स्थापना) ही हैं । इसलिए ही उन दोनों को उपकारी कहे हैं ।

तो यहां भाव किनका लेना ? वंदक का भाव लेना हैं ।

आप भगवानमें जुड़े और आपके भावमें भगवान आये, समझें ।

जिन्होंने भावमें भगवान लाये वे तिर गये, गौतम वगेरह...।

जिन्होंने भावमें भगवान न लाये वे डूब गये, गोशालक - जमालि वगेरह... ।

भावमें भगवान लाने के लिए नाम - मूर्ति - आगममें भगवान हैं, ऐसी बुद्धि पैदा करनी पड़ेगी ।

भगवान को **'सर्वदेवमयाय'** कहकर बुद्ध, विष्णु, ब्रह्मा, महेश वगेरह सबके नाम (विशेषण सहित) शक्रस्तवमें हैं । इन सब नामों का अर्थ भगवानमें भी घट सकता हैं । देखिये भक्तामर :

बुद्धस्त्वमेव ।

भगवन् ! आप ही बुद्ध हो । आप ही शंकर हो । आप

ही विधाता हो । आप ही पुरुषोत्तम हो । ऐसा घटाया हैं । उसके बादमें लिखा :

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्त्तिहराय नाथ ।

पूरे जगत की पीडा दूर करनेवाले भगवान हैं ।

भगवान का नाम लेने से आज भी उपद्रव शांत होते हैं । अगर ऐसा नहीं होता तो शांति, बृहत्–शांति, संतिकरं वगेरेह स्तोत्र गलत मानने पड़ेंगे । आज लाभशंकर डोकटरने कहा : 'बचपन से मुझे किसी महात्माने नवकार सीखाया, उसके प्रभाव से मैं बिच्छु का ज़हर उतार सकता हूं ।'

सुनकर आश्चर्य हुआ । हमें जो नवकार सामान्य लगता हैं, उनको वह मंत्र लगता हैं ।

मुल्लाजीने कूएंमें से पानी निकालकर देने पर सेठने आश्चर्यचकित होकर पूछा : कौनसा मंत्र हैं, तुम्हारे पास ?

उस मुल्लाजीने 'नवकार' मंत्र सुनाया । सुनकर सेठजी हंस पडे : यह तो मुझे भी आता हैं ।

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : यह कहां की घटना हैं ?

पूज्यश्री : बनी हुई घटना है, इतना पक्का । विश्वास न आता हो तो आपके गुरु महाराजकी ही घटना कहूं ।

हरिजन के कोई मुख्य व्यक्तिओंने मुशायरा जमाया । उस समय एक व्यक्ति जाता हैं, किंतु उसके लिए काम सिद्ध नहीं होगा– ऐसा किसीने कहा ।

सचमुच ही, जिस व्यक्ति के लिए यह गया था, वह व्यक्ति ही मर गया था ।

यह विद्या सीखने के लिए एक श्रावक ललचाया । २१ दिन जाप किया । अंतिम दिन स्मशानमें जाना हुआ ।

वह मलिन देवी नवकार के आभामंडल के कारण अंदर प्रवेश कर सकती नहीं थी ।

'तूं नवकार भूल जाये, तूं नवकार बंद कर दे तो ही मैं आऊं' देवीके इस वचनको ठुकराकर श्रावक नवकार के उपर दृढ श्रद्धावाला बना ।

बाहर से जानने को मिले उसके बाद ही अपने पास रही हुई वस्तुकी महिमा समझमें आती हैं ।

✱ नमो अरिहंताणं और भगवान एक हैं, ऐसे आप मानते हैं ? स्तोत्र से साक्षात् भगवानकी ही आराधना हो सकें, ऐसे विश्वास से ही आचार्य मानतुंगसूरिजीने ४४ बेड़ियां तोड़ी थीं ।

'श्री सुपास जिन वंदीए' । इस स्तवनमें श्री आनंदघनजीने नामकी ही महिमा बताई हैं ।

शिवशंकर, जगदीश्वरु वगेरह एकेक विशेषण तो पढो ।

आपत्ति आये तब भगवानके नामके बिना शांति कहां हैं ? इसीलिए ही भगवान को 'जगत-जन्तु-विश्राम' कहा हैं ।

पूरे विश्वको ज्ञानसे भर देनेवाले भगवान 'विश्वंभर' हैं । विविध नामों से भगवानकी कैसी विविध-विविध शक्तियां और कैसे गुण प्रगट हुए हैं ?

रथको सारथि चलाता हैं, उसी प्रकार भक्तको भगवान चलाते हैं ।

इसीलिए ही कहा : 'मुक्ति परमपद-साथ'

'एम अनेक अभिधा धरे, अनुभव गम्य-विचार;
जे जाणे तेहने करे, आनंदघन अवतार...'

ऐसे भगवानके अनेक नाम हैं । यह अनुभव से ही जान सकते हैं । जो जाने उसे भगवान आनंदघन स्वरूप बना देते हैं ।

✱ पुरुषगंधहस्ती तक असाधारण हेतु स्तोतव्य, संपदा पूरी हुई ।

(१०) लोगुत्तमाणं ।

यहां पांचों सूत्रों में लोक का अर्थ बदलता जाता हैं । पंचास्तिकायमय लोक कहा जाता हैं, फिर भी यहां लोक से भव्य लोग ही लेने हैं । एक शब्द के बहुत अर्थ होते हैं ।

'हरि लंछन सस हस्त तनु' यहां हरि याने सिंह ।

कहीं हरि शब्दका अर्थ इन्द्र होता हैं । ऐसे हरिके १३ अर्थ होते हैं ।

सर्व जीवोंमें उत्तम ऐसा कहा हो तो अभव्यों से भव्य भी उत्तम गिने जाते हैं, इसीलिए ही भव्यलोकमें भी उत्तम भगवान हैं, ऐसे इस सूत्रसे बताया ।

सकल मंगलके मूल भगवान हैं । इसीलिए ही वे लोकोत्तम हैं । उनका तथाभव्यत्व ही उस प्रकारका हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

पद प्रदान प्रसंग, वांकी - कच्छ, वि.सं. २०५६, माघ शु. ६

२१-९-२०००, गुरुवार
अश्विन कृष्णा - ८
गिरिविहार धर्मशाला

✱ साधना-शिबिर प्रारंभ :

आशीर्वाद + निश्रा :

पूज्य आचार्यश्री विजय कलापूर्णसूरिजी

संचालन :

पूज्य यशोविजयसूरिजी

पूज्य कलापूर्णसूरिजी :

✱ विश्व के प्रत्येक जीव के मंगल के लिए भगवानने वै. सुदि ११ के दिन तीर्थ की स्थापना की, जिसे २५५६ साल हुए । इस शासनको आत्मसात् कर उसका अमृत पीनेवाले आचार्य भगवंतोंने यह शासन यहां तक पहुंचाया हैं । कितना उपकार भगवानका ?

२१ हजार वर्ष तक तीर्थ किनके भरोसे पर ? भगवान मोक्षमें गये, किंतु परोपकारसे अटके नहीं हैं । जीवों से विरक्त नहीं बने हैं । भगवानमें वीतरागता हैं, वैसे वात्सल्य भी हैं । परस्पर विरुद्ध धर्म भी भगवानमें हैं । वस्तुका स्वभाव अनंतधर्मात्मक हैं । वही प्रमाणभूत माना जाता हैं ।

'वस्तु अनंत स्वभाव छे, अनंत कथक तसु नाम'

– पू. देवचन्द्रजी

भगवान के बिना ऐसा तत्त्व कौन बताए ?

भगवानने अर्थसे, गणधरोंने सूत्रसे बनाइ हुई द्वादशांगी मिली वह हमारा महापुण्योदय हैं ।

✱ आज के दिखते दृश्यसे किसे आनंद न हो ? ध्यान को प्रेक्टीकल बनाने की जरूरत हैं । आज ध्यानके नाम पर ऐसे प्रयोग चल रहे हैं, जो ध्यान कहे जाये या नहीं ? वही सवाल हैं । इसीलिए ही मैं 'ध्यान शिबिर' शब्दका विरोधी हूं।

हमारे यहां, ध्यान न धरे तो अतिचार लगे – ऐसा विधान हैं । परंतु हराम हैं : हमने कभी ध्यान धरा हों ।

ध्यानसे भड़कते हैं, परंतु साधु जीवन ही ध्यानमय हैं, वह हम जानते ही नहीं हैं । 'क्रिया सर्वाऽपि चिन्मयी' अप्रमत्त साधुकी हर क्रिया चिन्मय-ज्ञानमय हैं । इसीलिए ही ये क्रिया ध्यान-विघातक नहीं, किंतु ध्यान-पोषक हैं ।

✱ धर्म ध्यान न हो तो आर्त्तादि ध्यान रहेगा ही । आज स्थिति ऐसी हो गयी है : लोग आक्षेप करते हैं : जैनोंमें ध्यान नहीं हैं ।

इसका जवाब देने के लिए ही इसका आयोजन हुआ हैं ।

सुविहित मुनिकी चर्या न करें तो दोष लगता हैं । मनको केन्द्रित करने के प्रयत्न तो अपनी आवश्यक चीज हैं । छः आवश्यकों में क्या है ? जीवनभर समतामें रहना वह सामायिक । यह सामायिक की प्रतिज्ञा चतुर्विध-संघ समक्ष हमने ली हैं ।

विषय-कषाय से तप्त हूं । अभी मुझे समता के सरोवरमें नहाना हैं । ऐसी भावना जगे वही सच्ची सामायिक कर सकता हैं । समता हम मानें उतनी सरल नहीं हैं । इसे प्राप्त करने के लिए बाकी के पांच आवश्यक हैं ।

ये मेरे – आपके आवश्यक नहीं हैं, गणधरों के हैं ।

चिन्ताभावनापूर्वकः स्थिराध्यवसायः ध्यानम् ।

– ध्यान-विचार

ध्यान के भेदमात्र अमुक ही नहीं हैं, जितनी-जितनी मनकी अवस्थाएं हैं उतने ध्यानके प्रकार हैं ।

ध्यानके बिना केवलज्ञान नहीं मिलता ।

ध्यानको सिद्ध करना हैं, ऐसा संकल्प करके ही यहां आना ।

भूमिकामें ही समय न जायें इसीलिए मैं संक्षेप से कहना चाहता हूं ।

पूज्य यशोविजयसूरिजी : फरमाइए, कोई एतराज नहीं ।

पूज्यश्री : पहुंचना हैं प्रभुके पास । प्रभुके पास पहुंचने के लिए समता चाहिए । समता प्राप्त करनी हो तो चउविसत्थो, २४ तीर्थंकरोंको पकड़ो ।

सामायिक के बाद चउविसत्थो आवश्यक हैं । यह क्रम भगवान की उपस्थितिमें गणधरोंने जोड़ा हैं, उसका ख्याल हैं न...?

२४ तीर्थंकरोंको जो नमस्कार करता हैं, उनका जो कीर्तन करता हैं, उसीकी ही साधना सफल बनती हैं, इसके पीछे का यह रहस्य हैं ।

सिर्फ हमारे पुरुषार्थ से यह समता नहीं ही मिलती, यही समझना हैं ।

सामायिक-समता साध्य हैं ।

जीवनभर महेनत करेंगे तो यह मिलेगी ।

श्रुत, सम्यक् और चारित्र सामायिक के ये तीन प्रकार हैं ।

यह कौन देता है ? धर्म ।

देव दर्शन, गुरु ज्ञान और धर्म चारित्र देता हैं । सामायिक चारित्ररूप हैं ।

चउविसत्थो के लिए लोगस्स हैं । इस पर एक पुस्तक प्रकाशित हुई हैं । पढेंगे तो समझेंगे ।

चउविसत्थोको लाने के लिए वांदणा वगेरह आवश्यक चाहिए ।

*** कोई न होने पर वापरने से पहले 'वापरुं' बोलने की आदत हैं । पू. कनक-देवेन्द्रसूरिजी का देखकर हमने सीखा हैं । ऐसा तभी ही बोल सकते हैं, जब देव-गुरु सामने रहे हुए हैं, ऐसा दिखें ।**

*** हमारे यहां कदम-कदम पर कहा जाता 'देव गुरु पसाय' या पच्चक्खाण पारना वगेरह हर प्रसंग में गिना जाता नवकार, वह भगवान की मुख्यता को ही बताता हैं ।**

हमारा काम, गुप्ति (खासकर मनोगुप्ति) द्वारा साधना करनी हैं ।

मनोगुप्ति का अभ्यास करने के लिए इकट्ठे हुये हैं । उसके पहले पांच समिति आत्मसात् बन गई हैं, ऐसा समझकर चलते हैं ।

✱ आचारांग वगेरह प्रत्येक आगम भगवान स्वरूप हैं । प्रत्येक अक्षर या पंक्ति भगवान स्वरूप हैं ।

✱ कोई मुझे पूछे : किसका ध्यान धरते हों ?

मैं कहता हूं : भगवान का ध्यान धरता हूं ।

जहां भगवान न हो ऐसे कोई ध्यान-ब्यानकी मुझे जरुरत नहीं ।

हमारा कोई भी कार्य भगवानकी कृपा से ही सिद्ध होगा, इतना हंमेशां के लिए आप लिखकर रखें ।

✱ मनोगुप्ति के तीन स्टेप हैं ।

प्रवचनकी माता क्यों कही गई ? अध्यात्म-जगतमें माता जैसा काम कर सकती हैं ।

अष्ट प्रवचन माताकी गोदमें रहे हुए मुनिकी बराबरी इन्द्र भी नहीं कर सकते । छोटा बालक माँ के बिना नहीं जीता, उसी तरह मुनि अष्टप्रवचन माता के बिना जी नहीं सकता ।

सात माता (मनोगुप्ति को छोड़कर) का अभ्यास होगा तो मनोगुप्ति का अभ्यास आसानी से हो सकेगा ।

मनकी चार अवस्थाएं : विक्षिप्त, यातायात, सुश्लिष्ट और सुलीन ।

बाहर के सभी संयोग मन के लिए शराब है, जिससे मन उत्तेजित होता रहता हैं ।

जैन लोग T.V. वगेरह रखते हैं, उसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता । सुनता हूं तब स्तब्ध हो जाता हूं ।

ध्यानार्थीओं को सूचना कि वापस घर जाकर T.V. न देखें । अरे, घरमें टी.वी. रखना ही नहीं चाहिए ।

यहां निर्मल बनो और T.V. देखकर मलिंन बनो, ऐसा मत करना । गधा स्नान कर फिर कचरे के डिब्बे में आलोटता हैं, ऐसा मत करना । T.V. वगेरह सब निकाल देना ।

कपड़े बहुत धोये । अभी मनको धोना हैं । **वस्त्र तो दूसरे भी धो सकते हैं, किंतु मनको तो हमें ही धोना पड़ेगा ।**

अतः पहला काम :

१. कल्पना की जाल बिखेर देना : **'विमुक्तकल्पनाजालम्'**

२. समतामें प्रतिष्ठित करना : **'समत्वे सुप्रतिष्ठितम्'**

३. आत्मामें डूब जाना : **'आत्मारामं मनः'**

इन तीन सोपानोंमें मनोगुप्ति बंटी हुई हैं ।

यह प्रयत्न स्तुत्य हैं । यशोविजयजी आचार्य भगवंत हैं । गुरु आशिष प्राप्त करके जो कुछ सीखे हैं । वे जो सीखाएं वह स्वीकारना ।

शांति प्राप्ति करनी हो तो मनको एकाग्र बनाना । इसके बिना शांति नहीं मिलेगी । भगवान को भूलना मत, यह खास सूचना हैं ।

पूज्य यशोविजयसूरिजी :

महामहिम प्रभु श्री आदिनाथ को प्रणाम ।

परम श्रद्धेय परम गीतार्थ पूज्य आचार्य भगवंतके आशीर्वादपूर्वक हमारी साधना शुरु होती हैं ।

पंचाचारमयी हमारी साधना हैं ।

सप्ताहमें पंचाचारमें गहराईमें जाने के लिए प्रायोगिक कक्षामें प्रयत्न करना हैं ।

ज्ञानाचारका पालन आगम-वाचना द्वारा प्रभु के पावन शब्दों से सुनकर किया हैं ।

दर्शनाचार चेहरे पर दिखता हैं । सबको भगवान पर अटूट श्रद्धा हैं । **हमारी बुद्धि वर्तुल हैं । मात्र सर्वज्ञ ही मार्ग दे सकते हैं । उनके चरणों में झूकें, मस्तक को अनुप्राणित करें ।**

आपकी बुद्धि टूट जाय उसके बाद ही श्रद्धा शुरु होती हैं ।

पद्मविजय - नवपद पूजा

'जिनगुण अनंत हैं, वाच क्रम मित दीह;

बुद्धिरहित शक्तिविकल, किम कहुं एकण जीह;

इशारेसे अशब्द-वाचना भी उन्होंने दी हैं ।

प्रभुमें जिनको डूबना हैं, उनको स्वबुद्धि, स्वकर्तव्यों का छेद उडाना चाहिए । वे ही प्रभु मार्ग के उपर चल सकते हैं ।

चारित्राचार, तप-आचार, वीर्याचार हमारे अंदर हैं ही ।

◆ गुप्तिमें कायगुप्ति से शुरु करेंगे ।

◆ पिंडस्थ-पदस्थ ध्यान ।

◆ काउसग्गमें इरियावही सूत्र स्पष्ट करके देखेंगे ।

◆ स्थान-वर्णादि, छः आवश्यक प्रेक्टीकल करेंगे ।

◆ साधनाको सैद्धांतिक रूप देकर प्रेक्टीकल बनायेंगे ।

◆ प्रभुका अनुग्रह, सद्‌गुरु की आशीष, साधनाका उत्साह - इस त्रिकोण से सफलता मिलती ही हैं ।

◆ भगवानका अनुग्रह हंमेशा चालु ही हैं ।

'व्यक्त्या शिवगोसौ, शक्त्या जयति सर्वगः ।'

- उपा. यशोविजयजी

तीर्थंकर तो प्रसन्न हैं ही, किंतु उसमें रहा हुआ 'मैं' शब्द महत्त्वपूर्ण हैं ।

हम तीर्थंकर की कृपा झेल नहीं सकते । उसका कारण मनोगुप्तिका अभाव हैं ।

विचार की चादर पर अनुग्रह झेला नहीं जा सकता ।

निर्विचार - वैशारद्ये अध्यात्म - संप्रसादः ।

- पतंजलि ।

◆ पहली साधना निर्विचार की होगी ।

◆ **अनेन विना द्रव्यक्रियाः तुच्छाः ।**

भावक्रिया बनानी हो तो प्रणिधानपंचक समझना पड़ेगा । दोपहर को समझेंगे ।

◆ अभी कायगुप्तिसे शुरु करके वचन-गुप्तिमें जायेंगे ।

हम भाग्यशाली हैं, पूज्यश्रीने यहां अंत तक निश्रा दी । पूज्यश्रीके ओरा का लाभ मिलेगा । ऐसे सद्‌गुरु के बिना सीधा साधनाको उठाना मुश्किल हैं ।

पूज्यश्री पधारे वह कृपा । रुके वह महाकृपा ।

गुप्तिका मतलब बीचमें आत्मोपयोगका स्थिर होना ।

काया के कंपन के बीच आत्मोपयोगमें रहना वह ईर्यासमिति ।

वचन कंपनके बीच आत्मोपयोगमें रहना वह भाषासमिति ।

गोचरी के समय आत्मोपयोगमें रहना वह एषणासमिति ।

लेते-रखते समय आत्मोपयोगमें रहना वह आदान-निक्षेपणा समिति ।

छोटी-छोटी चीजें परठवते समय आत्मोपयोगमें रहना वह पारिष्ठापनिकासमिति ।

समिति-गुप्ति याने आत्मोपयोगमें ठहरने का स्थान ।

*** विमुक्तकल्पनाजालं**

काय-वचनगुप्ति सरल हैं । क्योंकि कंपन के बिना प्रयत्न करें तो बैठ सकते हैं ।

आवश्यक निर्युक्तिमें '**ठिओ, निसन्नो, सुत्तो वा ।**' तीनों तरह काउसग्ग हो सकता हैं, ऐसा लिखा हैं ।

* विज्ञान जैन सिद्धांत के पीछे दौड़ रहा हैं ।

विज्ञान छोटा भाई हैं, जैन सिद्धांत बड़ा भाई हैं ।

कायगुप्ति और वाग्गुप्ति भी सरल हैं । आज मौन थे न ? साधना के ०॥ घण्टे पहले मौन रखना ।

एक साधकने कहा : ०॥ घण्टा पहले मौन रखना । बातें करके आयेंगे तो आपका मन १५-२० मिनिट तक कोमेन्ट करता ही रहेगा ।

प्रतिक्रमण भी इसी तरह किजिए । १-२ माला गिनकर प्रतिक्रमण करो । मनोगुप्ति कठिन हैं ।

विचारों की जाल को एक तरफ रख देना ।

मनको दो ही दिशाओं की जानकारी हैं : विचार अथवा निद्रा । तीसरी अवस्था का अब अनुभव करना हैं ।

ज्ञानसार में कहा हैं,

आपकी कही जाती जागृति और निद्रामें कोइ फर्क नहीं हैं। दोनोंमें विचार हैं ही ।

विचार के कदम की शोध करो । पदचिह्नज्ञाता क्या करता है ? मैंने ऐसे पदचिह्नज्ञ देखे हैं जो वृक्ष परसे कठिन भूमिमें जाते चोरका कदम पहचान ले ।

शुभका एतराज नहीं । अशुभ विचार नहीं चाहिए ।

मंदिरमें अमृतरूप प्रभु के पास भी एक व्यक्ति की वजह से विचार बदल जाता हैं, ऐसा बनता हैं ।

'आतमज्ञाने मन-वचन-काय रति छोड;
तो प्रगटे शुभ वासना, धरे गुण अनुभवकी जोड;'

- समाधिशतक

वचनानंद का एहसास करो । वचन-रति छोड़ दो ।

कायानंद का मजा लो । काय-रति छोड दो ।

किसीने कहा : अच्छा गाया ! और हम प्रभु-भक्तिमें से अहंमें आ जायेंगे ।

मैंने साधना कहां की ? साधना प्रभुने करवाई हैं । ऐसा नही बोल सकते ?

'हे प्रभु ! तेरा आभार । तेरे शब्द बोलने का मुझे अवसर दिया ।' इस प्रकार व्याख्यान के बाद मैं बोलता हूं ।

'तेरी साधना की प्रशंसा लेकर हे प्रभु ! तू मुझे निर्भार बना दे ।' ऐसे प्रभुसे प्रार्थना करो ।

* झेन आश्रममें लिखा होता हैं :

No Mind Please.

No Sound Please.

* मनके आधार पर प्रभु-शब्द नहीं झेल सकते । सिर्फ हृदय से ही प्रभु शब्द झेल सकते हैं ।

* ज्ञाततत्त्वता : बुद्धि से,

आत्मतत्त्वता : हृदय से मिलती हैं ।

– वचन-काया के आनंद में हमको झूमना हैं ।

वचन-काया की रति से दूर रहना हैं । जिससे तुच्छ बाबत गौण बन जाय ।

* निद्रामें अज्ञान, जागृतिमें विचार – इसके बिना मन कुछ नहीं जानता हैं ।

सुत्ता अमुणी, मुणिणो सया जागरंति ।

निद्रा, विचार न हो तब ही परम जागृति आ सकती हैं ।

गुर्जिएफने साधकको घड़ी देकर कहा : 'सेकन्ड के कांटे को दो मिनिट तक अपलक तू देख ।'

दो मिनिट के बाद –

'सेकन्ड के कांटे को देखनेवालेको तू देख ।'

दृश्योंमें खोये हुए हम दृष्टा को भूल गये हैं ।

हम ज्ञानकी वजह से ज्ञेयमें डूबकर रागी-द्वेषी बनते हैं । ज्ञानी दृश्यसे-ज्ञेयसे दूर रहता हैं । यही भिन्नता हैं ।

पसंदगी-नापसंदगी को बढाता रहे वह सच्चा ज्ञान नहीं हैं ।

सिर्फ दिखता हो वह मुक्ति हैं ।

दृश्योंमें खो जाना वह संसार हैं ।

* जिन-गुणदर्शनसे आत्म-गुणदर्शन, समवसरण ध्यान के समय देखेंगे ।

* मनके स्तर पर से मनको आज्ञा करो तो मन कहांसे मानेगा ? गुलाम गुलामका नहीं मानता, सेठका मानता हैं । मनसे उपर उठकर आत्माके स्तरसे आज्ञा करो तो मन क्यों न मानें ?

* फ्रोइड महा मनोवैज्ञानिक :

फ्रॉइड पत्नीके साथ एकबार बागके बेन्च पर बैठा था ।

पत्नी : बालक खो गया । कहां गया ?

मन भी बालक हैं । माताको बालकका पता होता हैं ।

आपको ख्याल हैं ?

फ्रोइड : तूने बालकको कहीं नहीं जाने के लिए कहा था ?

पत्नी : फव्वारे के पास जाने की मना कही थी ।

फ्रोइड : हां, तो बालक वहीं मिलेगा ।

सचमुच, बालक वहीं पर मिल गया ।

हमारा मन ऐसा हैं : जहां मना करो वहीं जाता हैं ।

देहमें मात्र रहना हैं, खोना नहीं हैं । तो ही देहाध्याससे दूर हो सकेंगे । साधना का प्रारंभ होगा ।

* प्रायोगिक ध्यान शुरु ।

सबसे पहले गुरु-अनुग्रह के लिए :

गणि महोदयसागरजी :

चउव्विसंपि जिणवरा

तित्थयरा मे पसीयंतु ।

करोडरज्जु टट्टार, आंखें बन्द, खुल्ली आंखोंमें परका प्रवेश होता हैं । श्वासकी शुभ्र दीवार पर कोई भी विचार का प्रतिबिंब पड़ेगा ।

श्वास जड़-चेतन के बीच सूक्ष्म भेदरेखा हैं । लोगस्समें यह श्वास-साधना काम आयेगी । श्वास लो । रखो । छोडो ।

* 'बुद्धकी धारामें बह जाएगा तो तू ही खो जाएगा । उसके बाद प्रश्न कहां रहेंगे ? प्रश्न पूछने हो तो अभी

पूछ । बाद में नहीं ।' बुद्ध के पास जानेवाले को एक व्यक्तिने कहा ।

✱ हम दूसरों को प्रभावित करने के लिए ज्यादा करके प्रवृत्ति करते रहते हैं । मैंने कितना अच्छा सोचा ? मैंने कितना अच्छा कहा ? आप ऐसे ही विचार रहे होते हो ।

✱ कोई भी विचार मौलिक नहीं होता । दूसरों के विचार पर सिर्फ आप दस्तखत कर देते हो ।

'देह-मन-वचन पुद्गल थकी, कर्मथी भिन्न तुज रूप रे'

- उपा. यशोविजयजी, अमृतवेल

विचार पौद्गलिक हैं । आप पौद्गलिक नहीं हैं । विचार पराई घटना हैं । अनुभूति ही स्वकी हैं ।

कौन से दरवाजे से कौन सा विचार आया वह ज्यादा करके हम जानते नहीं हैं ।

मंदिरमें विचारको छोड़कर जाते हो ?

विचार की गठरीको बाहर की चौकी पर रखकर मंदिरमें जाओ । ध्यानकी प्रारंभिक भूमिकामें मन विचार से भरा हुआ हैं, उसकी देखभाल मिलती हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

विणयमूलो धम्मो

संसार के ताप, उत्ताप और संताप ये त्रिविध दुःखसे मुक्त करानेवाला एक मात्र आत्मज्ञान हैं । आत्मा ज्ञानरहित नहीं हैं, किंतु जीवको ऐसा सुख-संपन्न, दुःख-रहित, कोई अचिंत्य पदार्थ हूं, ऐसा भान नहीं हैं । गुरुगम के द्वारा जिज्ञासु उस निधान को जानता हैं । और शुद्ध भावसे उसका अनुभव करता हैं । गुरुगम प्राप्ति का उपाय विनय हैं ।

पू. धुरंधरवि. के साथ, पालिताना, वि.सं. २०५६

२२-९-२०००, शुक्रवार
अश्विन कृष्णा - ९

* आगमका ज्ञान बढे त्यों त्यों गुणोंका विकास होता हैं। **अज्ञाताद् ज्ञाते सति वस्तुनि अनन्तगुणा श्रद्धा भवति ।** इसीलिए ही 'अभिनव पद' २० स्थानक में ज्ञानपद से अलग रखा हैं । ज्ञानसारमें ज्ञान के लिए (ज्ञान, शास्त्र, अनुभव) तीन अष्टक हैं ।

ज्ञानसे श्रद्धा अपूर्व बनती हैं उस प्रकार कर्मक्षय भी अपूर्व बनता जाता हैं ।

'बहु कोडो वरसे खपे, कर्म अज्ञाने जेह;
ज्ञानी श्वासोच्छ्वासमां, कर्म खपावे तेह ।'

परंतु वह भावनाज्ञान होना चाहिए । भावनाज्ञान मात्र शिबिरोंमें जाने से नहीं आता, बरसोंकी साधनाके परिपाक से आता हैं ।

अभी हमारे तीर्थंकर भगवान कैसे हैं, उसका परिचय गणधरोंकी स्तुति के माध्यम से हम कर रहे हैं ।

उस पर हरिभद्रसूरिजीकी ललित-विस्तरा टीका अद्‌भुत हैं । यह टीका मिलते मैं तो ऐसा मानता हूं कि साक्षात् हरिभद्रसूरिजी मिल गये । दैवयोग से साक्षात् हरिभद्रसूरिजी मिल गये होते तो भी वे इतना नहीं समझाते । अर्थात्, समझाने का उनके

पास समय नहीं होता, किंतु उनकी यह टीका चाहे जितनी बार आप पढ़ सकते हो, उसके उपर चिंतन कर सकते हो, ग्रंथ अर्थात् ग्रंथकार का हृदय ही समझ लो ।

यही बात भगवानमें भी लागू पड़ती हैं । भगवानके आगम मिलते साक्षात् भगवान मिल गये, ऐसा लगना चाहिए । प्रेमीका पत्र मिलते हृदय अति प्रसन्न हो जाता है, उस तरह भगवानकी वाणी मिलते भक्तका हृदय आनंदित बन जाता हैं ।

* भगवान तीर्थंकर हैं, उसी तरह तीर्थस्वरूप भी हैं । मार्गदाता हैं, उसी तरह स्वयं भी मार्ग हैं ।

त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र ! पन्थाः

- भक्तामर

'ताहरुं ज्ञान ते समकित रूप,
तेहि ज ज्ञानने, चारित्र तेह छेजी ।'

- पू. उपा. यशोविजयजी

तीर्थ के साथ अभेद करना मतलब आगम और चतुर्विध संघ के साथ अभेद करना ।

(१०) लोगुत्तमाणं ।

सिद्ध आदि चार भी लोकोत्तम कहे जाते हैं और भगवान भी लोकोत्तम कहे जाते हैं तो फरक क्या ? इस अपेक्षासे तो भगवान उत्तमोत्तम हैं । (देखो तत्त्वार्थकारिका । वहां उत्तमोत्तम मात्र तीर्थंकरों को ही लिये हैं ।) ठाणंगमें ४ भांगे हैं : जिसमें मात्र परोपकार हो उस भागमें तीर्थंकर आते हैं ।

'लोकोत्तमो निष्प्रतिमस्त्वमेव' भगवान अप्रतिम लोकोत्तम हैं ।

'सिद्धर्षि सद्धर्ममयस्त्वमेव ।' इस पंक्तिमें सिद्ध, मुनि और धर्म आ ही गये हैं । (सिद्ध + ऋषि + सद्धर्म)

उन तीर्थंकर का आप संग करो, उनके जैसे बनोगे ।

'उत्तम संगे रे उत्तमता वधे, साधे आनंद अनंतोजी ।'

लोहे जैसी चीज भी सुवर्ण रसके स्पर्शसे सोना बन जाती हैं ।

'जिनगुण भक्ति रत चित्त वेधक रस गुण-प्रेम;
सेवक जिनपद पामशे, रसवेधित अय जेम ।'

– पू. देवचन्द्रजी

प्रभु-गुणों का प्रेम ही वेधक-रस हैं । उसका स्पर्श होते ही इस काल में भी पामर परम बन सकता हैं ।

पत्थर या लोहे जैसी आत्मा प्रभु-भक्तिमें मशगुल बनती हैं, तभी वह स्वयं प्रभु बन जाती हैं ।

ध्येयमय ध्याता बन जाय तभी समाधि आती हैं ।

ध्यानमें तीनों की भिन्नता होती हैं, किंतु समाधिमें तो तीनों (ध्याता, ध्येय, ध्यान) एक बन जाते हैं ।

यह भक्ति का रंग लगाने जैसा हैं । हमारी योग्यता के अनुसार भले इसका फल मिले, परंतु मिलता हैं जरूर ।

(११) लोगनाहाणं ।

विश्वमें भगवान सर्वश्रेष्ठ नाथ हैं । भगवान जैसे नाथ मिलने पर भी हम अनाथपना क्यों अनभव कर रहे हैं ? भगवान तो नाथ बनने के लिए तैयार हैं, परंतु हम संपूर्ण शरणागति नहीं स्वीकारते हैं । नाथकी जवाबदारी हैं, जो वस्तु आपमें न्यून हो उसकी पूर्ति करें । किसी भी काल किसी भी क्षेत्रमें भगवानकी योगक्षेमकी जवाबदारी हैं । भगवान कभी ना नहीं ही कहते । फोन से इष्ट व्यक्ति का संपर्क हो या न भी हो, परंतु भगवान को याद करो तो वे आते ही हैं, कभी ना नहीं कहते । आपका ये योगक्षेम करते हीं हैं ।

अनुत्तर विमान के देव प्रश्न करते हैं उसी समय भगवान उनको जवाब देते हैं ।

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : वे क्यों नीचे नहीं आते ?

पूज्यश्री : उनका ऐसा कल्प है ।

ऐसे उपकारी, करुणाके सागर भगवान हमको नाथके रूपमें मिल गये, यह हमारा कितना बड़ा सौभाग्य गिना जाय ? फिर भी भगवानको मिलने का समय हमको कम मिलता हैं ।

अभी हरिभद्रसूरिजीके शब्दोंमें नाथका अर्थ देखते हैं ।

भगवान भव्यजीवों के नाथ हैं । संसारी जीवों को सतानेवाले –

संताप खड़े करनेवाले राग-द्वेषादि शत्रु हैं । राग-द्वेषादि हमारे अंदर ही रहे हुए हैं । इसीलिए बहुतबार पता भी नहीं चलता कि आचार्य भगवंत कहते है या रागादि कह रहे हैं ? इसीलिए ही उपर भगवान या गुरु को रखना जरुरी हैं । बहुतबार मोह ही ऐसे समझाता हैं : मैं ही नाथ हूं । पीडा के मुख्य तीन कारण हैं : राग, द्वेष और मोह । उससे भगवान भव्यात्मा को बचाते हैं । जिनका बीजाधानादि हो गया हो वैसे ही भव्य जीवों को यहां लेना हैं । आदि शब्दसे धर्मश्रवण आदि लेना ।

ऐसे भगवानको नाथ के रूपमें स्वीकारो और बेड़ा पार ।

हेमचन्द्रसूरिजी कहते हैं : मैं दास हूं । नौकर हूं । किंकर हूं । सेवक हूं ।

आप मात्र 'हां' कहो तो बात हो गई ।

अगर भगवान नाथ हैं तो कौन हेरान कर सकता हैं ? सरकार आपको सुरक्षा दें तो आपको खतरा किसका ? खतरे को दूर करने की जवाबदारी सरकारकी हैं । भगवान तो सरकार की भी सरकार हैं । सरकार की सुरक्षामें फिर भी खामी हो सकती हैं, यहां थोड़ी भी खामी नहीं हो सकती ।

बीजाधान नहीं हुआ हो ऐसे जीवों के नाथ भगवान नहीं बन सकते ।

दुनियामें बहुत सारे नाथ बनने जाते हैं, परंतु भगवान के बिना कौन नाथ बन सकता हैं ?

अनाथी मुनि को श्रेणिकने कहा था : मैं आपका नाथ बनुं ।

उसी समय अनाथी मुनिने कहा : आप स्वयं अनाथ हो, तो दूसरे के नाथ कैसे बन सकोगे ? मैंने तो भगवान को नाथ किये हैं ।

श्रेणिक को तब समकितकी प्राप्ति हुई ।

भगवान के बिना जगत् अनाथ हैं ।

गुरुकी बात जब हम नहीं मानते तब भगवान को नाथके रूपमें नहीं स्वीकारते । क्योंकि गुरु स्वयंकी तरफ से नहीं, भगवानकी तरफ से बोलते हैं ।

तापी नदी के पुलसे आप चलते हो और रास्तेमें ही पुल

को आप छोड़ दो, छलांग लगाओ तो पुल क्या कर सकता है ? भगवानको आप छोड़ दो, भगवान क्या कर सकते हैं ?

'नामादिक जिनराजना रे, भवसागर महासेतु ।'

नाम-स्थापना आदि चार भव-सागरमें सेतु (पुल) हैं । भगवान भले नहीं हैं, परंतु उनका पुल विद्यमान हैं ।

भगवानको नाथके रूपमें स्वीकारने के बाद भक्त भगवानके समक्ष अनेक बिनंतीयां - आरझु कर सकता हैं । भक्तका यह अधिकार हैं ।

'भगवन् ! आप तो राग-द्वेषादि छोड़कर मोक्षमें पहुंच गये हैं, किंतु मेरा क्या ? राग-द्वेषादि आपसे छूटकर मुझे चिपक रहे हैं । भगवन् ! मुझे बचाओ ।'

कभी भक्त भगवानको ऐसा उपालंभ देता हैं । उसमें भी भगवानको नाथके रूपमें स्वीकार ही हैं ।

अब तय करो : भगवान रूप इस पुलको छोड़ना ही नहीं हैं । यहां तक पहुंचे हैं वह इस पुलके आधारसे ही पहुंचे हैं ।

अब पुलकी उपेक्षा नहीं करते हैं ना ?

काउस्सग्ग नवकारवाली बगैरह कभी करते हो ? भक्तों बगैरह सबकी मुलाकात के बादमें करते हो ? नींद आती हो तब ? मेरे जैसे पहले प्रेरणा देते थे, किंतु बोल-बोलकर थक गया ।

ऐसे भगवान मिलने के बाद प्रमाद ? इस शरीरका क्या भरोसा ? मैं स्वयं ३-४ बार मरते बचा हूं ।

वि.सं. २०१६में सबसे पहले जानलेवा बिमारी आई । डोकटरने कहा : T.B. हैं । सोमचंद वैद्यने कहा : T.B. - B.B. कुछ नहीं हैं । मेरी दवा लो ।

कहना पड़ेगा । भगवानने ही वैद्य को ऐसी बुद्धि देकर आठ दिनमें छाशके द्वारा खड़ा कर दिया ।

दूसरी बिमारी मद्रासमें आयी । मैंने रात्रिके समय कल्पतरुविजयको कह दिया : 'मैं जाता हूं । बचने की शक्यता नहीं हैं ।' मुहपत्तिके बोल भी मैं भूल गया था । वेदना भयंकर । पट्ट गिनते समय शांति भी नहीं बोल सकता था । किंतु भगवान बैठे हैं ना ? उन्होंने बचा लिया ।

ऐसे उपद्रवोंमें से बचानेवाले भगवान ही ना ? उस समय मुझे विचार आया था : प्रभावना के नाम पर इस क्षेत्रमें मैं कहां आया ? उस समय कल्पना भी नहीं थी कि मैं स्वस्थ हो जाऊंगा और गुजरात-कच्छमें आकर मैं फिर वाचना दूंगा ।

परंतु भगवानने मुझे बैठा किया । आज आप वाचनाएं भी सुन रहे हो ।

ऐसे भगवानको मैं कैसे भूल सकता हूं ?

मैं तो अपने अनुभवसे कह रहा हूं : बाह्य-आंतरिक आपत्तिओं में भगवान रक्षण करते ही हैं । जीवनमें खूटती हुई आध्यात्मिक शक्तिओं की पूर्ति करते हैं । जब जरुरत पड़े तब या तो व्यक्ति मिल जाता हैं या तो पंक्ति मिल जाती हैं ।

नवकार गिनकर मैं पुस्तक खोलता हूं । जो निकले उसमें भगवानका आदेश समझकर मैं अमल करता हूं और सफलता मिलती हैं । अभी भगवान के बिना मुझे किसका आधार है ?

अनुभव से कह रहा हूं : भगवान हंमेशां योग-क्षेम करते ही रहते हैं । मोक्ष तक हंमेशां योग-क्षेम करते ही रहते हैं ।

बीजाधानवाले भव्यों के ही भगवान नाथ बनते हैं तो भगवानकी महिमा कम नहीं कही जाती ? नहीं, भगवान की महिमा कम नहीं कही जाती । यही वास्तविकता हैं । यही नैश्चयिक स्तुति हैं।

✱ भगवान कहते हैं : तीर्थ स्थापना करके मैंने कोई बड़ा काम नहीं किया । आप सबका अनंत उपकार हैं । मैं ऋणमुक्ति कर रहा हूं ।

किंतु भगवानका नय हमसे नहीं लिया जा सकता ।

शिक्षक भले कहे : 'तुझमें बुद्धि थी इसीलिए तू पढा हैं। पढानेवाला मैं कौन ?' परंतु विनीत विद्यार्थी ऐसा नहीं मान सकता ।

अप्राप्त गुणों को प्राप्त कर देना वह योग । प्राप्तकी रक्षा करना वह क्षेम । दोनों जो करे वे नाथ ।

नाथ शब्दका उपयोग कहां कहां हुआ हैं ?

जयइ जगजीवमें, जगचिंतामणिमें, जयवीयराय आदिमें बहुत जगह नाथ शब्दका प्रयोग हुआ हैं । किंतु हमारी नजर नहीं गयी ।

शक्रस्तवमें लिखा हैं : भगवान का प्रेम सर्व संपत्तिओं का

मूल हैं । भगवान के बिना अन्य व्यक्ति और वस्तु का प्रेम कम हो तो ही भगवान का प्रेम सच्चा गिना जाता हैं । व्यवहारसे सभी के साथ संपर्क होता हैं, परंतु भक्तको भगवानसे अधिक प्रेम अन्य कहीं भी नहीं ही होता हैं ।

भगवान के प्रति पूर्णराग प्रगटाइए ।

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : बहुत अद्भुत । हृदयको आर्द्र बना दे ऐसा सुनने मिला ।

पूज्यश्री : अब वह दूसरों को देना ।

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : आपने ही योग कर दिया हैं । क्षेम भी आपको ही करना हैं ।

पूज्यश्री : योग-क्षेम करनेवाले तो भगवान हैं । मैं कौन ?

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : हमारे लिए तो आप ही हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

'कह्युं कलापूर्णसूरिए' पुस्तक मिली । पुस्तक हाथमें लेते ही उसकी आकर्षक सजावट और विशेष तो सचोट, सरल, गंभीर, अलौकिक लेखन-श्रेणि देखकर पूरी पुस्तक एक साथ पढ लेने का मन हो जाता हैं ।

पू. आचार्यदेवकी वाचनाओं - व्याख्यानादि का अद्भुत सार, आपश्रीने जो अपनी कुशलता से लिखा हैं वह बहुत ही अद्भुत-अप्रतिम हैं । आपकी यह पुस्तक मिलेनीयम रेकार्ड प्राप्त करे यही शुभेच्छा ।

- जतिन, निकुंज

बरोड़ा

लाकडिया - पालिताना संघ, वि.सं. २०५६, भीमासर - कच्छ

२३-९-२०००, शनिवार
अश्विन कृष्णा - १०

* **'नमो तित्थस्स'** कहकर तीर्थंकर स्वयं तीर्थ की महत्ता बताते हैं। तीर्थ बड़ा या तीर्थंकर बड़े ? इसका जवाब इस नमस्कारमें आ जाता हैं। तीर्थंकर के बिना दूसरे जवाब दे भी कौन सकते हैं ? 'मैं तीर्थंकर बना हूं इस तीर्थ के प्रभावसे' - ऐसे इनका नमस्कार कहता हैं।

'चक्री धर्म तीरथतणो, तीरथफल ततसार रे;
तीरथ सेवे ते लहे, आनंदघन अवतार रे ।'

- आनंदघनजी

* लोकमें सारभूत तत्त्व आत्मा हैं। आत्मा का सार चारित्र हैं। चारित्र के बिना मुक्ति नहीं हैं। आत्मा का अनुभव वह चारित्र हैं।

* व्यवहार-निश्चय दोनों पक्षी के पंख की तरह जुड़े हुए हैं। दोनों जुड़े हुए हो तो ही मुक्ति-मार्गमें उड्डयन हो सकता हैं। निश्चय को हृदयमें रखकर व्यवहार का पालन करना हैं।

'निश्चय दृष्टि हृदये धरीजी, जे पाले व्यवहार;
पुण्यवंत ते पामशेजी, भव-समुद्रनो पार ।'

- पू. उपा. यशोविजयजी

निश्चय को प्राप्त करने के लिए ही व्यवहार हैं । निश्चय (ध्येय) तय करके कोई भी प्रवृत्ति हम करते हैं ना ?

अकेले व्यवहार या अकेले निश्चयसे मुक्तिमार्गमें चल नहीं सकते । यह बात एक्सिडेन्ट के बाद मुझे अच्छी तरह समझ में आई । दाहिना पैर तैयार हो, किंतु बायां पैर सज्ज न हो वहां तक चलना कैसे ? दोनों पैर बराबर तैयार हो तो ही बराबर चल सकते हैं, निश्चय-व्यवहार दोनों हो तो ही मुक्तिमार्गमें चल सकते हैं, ऐसा मुझे सही ढंग से समझाने के लिए ही मानो यह घटना आ पड़ी ।

✱ आनंदघनजी के जमानेमें उनको पहचाननेवाले बहुत ही कम थे । सामान्य लोग समझते थे : आनंदघनजी याने एक घुमक्कड़ साधु । यह तो जानकारों ने ही उनको पहचाना ! किसी भी युगमें तत्त्व-दृष्टाकी यही हालत होगी । जिनके उपर आनंदघनजी, देवचन्द्रजी, यशोविजयजी के साहित्यका असर हैं, वे तो उनको भावसे गुरु मानेंगे हीं ।

दोनों पैर चलते हैं तब कोई अभिमान नहीं करता । मैं बड़ा या तूं छोटा ऐसा कोई भाव वहां नहीं हैं । एक पैर आगे रहता हैं और दूसरा पैर स्वयं पीछे रहकर उसको आगे करता हैं ।

ऐसे बड़े आचार्य भगवंत (हेमचन्द्रसागरसूरिजी) बैठे हैं, तो मुझे सब कहना पड़ता हैं ना ?

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : क्यों मजाक करते हो ? कलसे नहीं आऊं ?

पूज्यश्री : जरुर पधारीये । आप मुंबई वगैरह में धूम मचाते हो । आवाज़ बड़ी हैं । मेरी आवाज तो कहां पहुंचती हैं ?

मुनि भाग्येशविजयजी : गला बैठ जाता हैं तब हमारे यहां लोग इकट्ठे होते हैं । आपके दर्शनके लिए लाखों लोग इकट्ठे होते हैं ।

पूज्यश्री : लोग इकट्ठे होते हैं उसमें वे भगवानको देखने आते हैं, मुझे नहीं । यह तो भगवानका प्रभाव हैं ।

ये लोग ज्यादा से ज्यादा धर्म प्राप्त करे, ऐसा मुझे लोभ है जरूर । इससे मैं ज्यादासे ज्यादा नियमों के लिए आग्रह रखता हूं । हम आखिर बनिये हैं न ?

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : इसमें भी मारवाड़ी ?

पूज्यश्री : इस अर्थमें जरुर कह सकते हो । मारवाड़ी उदार भी होते हैं, यह याद रखना । मद्रासमें २० करोड़की आय कर देनेवाले मारवाड़ी थे । मारवाड़में छोटी मारवाड़ के ज्यादा उदार । हम बडी मारवाड़ के । वहां इतनी उदारता नहीं हैं ।

* सम्यक्त्व मोहनीयके पुद्‌गल के प्रभावसे प्रभुदर्शन के कारण अंदर आनंद होता हैं ।

आठों कर्मों का उदय द्रव्य-क्षेत्रादिकी अपेक्षासे होता हैं । उदा. ब्राह्मी औषधिसे ज्ञानकी वृद्धि होती हैं । भैंसका दहीं बगैरहसे बुद्धि जड़ बनती हैं ।

ये पुद्‌गल भी ज्ञानावरणीय कर्म तोड़ने में सहायक होते हैं । जैसे सम्यक्त्व मोहनीय के पुद्‌गल प्रभुदर्शन से होते आनंदमें सहायक बनते हैं ।

प्रतिमाके शांत परमाणुके आलंबनसे हमारे भीतर शांत आंदोलन उत्पन्न होते हैं ।

* चलने पर भी पहुंचना चाहिए वहां पहुंचते नहीं उसका कारण निश्चय-व्यवहार का सम्यग् आलंबन नहीं लेते, वह हैं । अभी हम निश्चय बिलकुल भूल गये हैं । 'मैं शुद्धात्मा हूं ।' ऐसी विचारधारामें हमें मिथ्यात्व दिखता हैं, किंतु शरीर में ही आत्मबुद्धि हैं, उसमें मिथ्यात्व नहीं दिखता हैं । ज्ञानसार यों ही नहीं बनाया गया । **'एगो मे सासओ अप्पा ।'** यह श्लोक यों ही नहीं बनाया । संथारा पोरसीमें रोज निश्चय याद किया जाता हैं, किंतु याद करे ही कौन ?

* नींदमें अकेले-अकेले संथारा पोरसी पढानेवाले सुन ले कि स्वातंत्र्य ही मोहका-पारतंत्र्य हैं । गुरुका पारतंत्र्य ही सच्चा स्वातंत्र्य हैं ।

किसी की भूल कभी जाहिरमें नहीं कही जाती, एकांतमें ही कही जाती हैं । किसीकी टीका करने से पहले विचारीये । जाहिरमें बोलेंगे तो सामनेवाले के हृदयमें आपके प्रति आदर ही नहीं रहेगा । आदर ही नहीं रहेगा तो आपका मानेगा कैसे ?

भूल नीकालने के नाम पर निंदामें चला जाना बहुत सरल

हैं । निंदा कौन से दरवाजे से आ जाये, उसका पता भी नहीं चलता । मर जाना, परंतु किसी की निंदा मत करना । निंदा करना याने दूसरे की जीते जी मृत्यु करना । इतने बरसों तक पू.पं. भद्रंकर वि.म.के पास रहे हैं, किंतु उनके मुंहसे कभी किसी की निंदा नहीं सुनी ।

ज्ञानी की जांच क्रियासे होती हैं । ज्ञान ज्यादा तो क्रिया ज्यादा ।

'हेम परीक्षा जिम हुएजी, सहत हुताशन ताप;
ज्ञान दशा तिम परखीएजी, जिहां बहु किरिया व्याप ।'

- पू. उपा. यशोविजयजी

ज्ञान अमृत हैं । क्रिया फल हैं । इन दोनों से ही सच्ची तृप्ति होती हैं ।

ज्ञानी अलिप्त होते हैं, लेकिन ज्ञानी कौन ?

तीन गुप्तिसे गुप्त ज्ञानी हैं । एक भी गुप्ति से गुप्त नहीं वह सच्चा ज्ञानी नहीं । वहां तक ऐसा अधिकार नहीं हैं । फिर भी अभ्यास करनेका सबका अधिकार हैं ।

जैसे कि परसौं यशोविजयसूरिजीने गुप्तिकी बात की थी । पांच समिति के पालनमें तत्पर बनने के बाद गुप्तिमें जा सकते हैं ।

अगर हम संकल्प करें तो समिति का पालन सरल हैं ।

चलते समय नीचे देखकर चलो, तो इर्यासमिति आ जायेगी ।

बोलते समय हित-मित-पथ्य-प्रिय जरुरी बोलो तो भाषासमिति आ जायेगी ।

गोचरी करते हो तब बोलने की जरुर कब पड़ती हैं ? जरुर पड़े तब ही बोलते हो न ? बिनजरुरी नहीं बोलते हो न ?

भाषासमितिसे ही वचन-गुप्तिमें जा सकेंगे ।

पू. भाग्येशविजयजी : गुप्ति उत्सर्ग हैं । समिति अपवाद हैं । पहले उत्सर्ग नहीं होता ?

पूज्यश्री : अपवाद-उत्सर्ग की बात बादमें करना । अभी मुझे वर्णन करने दो । विषयांतर हो जायेगा ।

४२ दोष टालकर गोचरी लें तो एषणासमिति आयेगी । ऐसा

नहीं बन सकता हो तो मनमें दुःख लगना ही चाहिए । ऐसा साधक दूसरीबार स्वादिष्ट वस्तुएं नहीं मंगवाता ।

लेते-रखते उपयोग न रखो तो स्व-परको नुकसान होगा । दूसरा जीव मर जायेगा । बिच्छु बगैरह डंक मारे तो स्वयं को भी नुकसान ।

कलकी ही बात करुं । छोटा पातरा हाथमें लेते अंदर कचरा दिखा । संभालकर हाथमें लिया, किंतु उसके बाद वह उड़ा । वह मच्छर था ।

प्रशंसाकी बात नहीं करता हूं । अभी स्वप्न आया था : स्वप्नमें मैंने देखा कि चारों तरफ निगोद थी । पैर कहां रखना ? वह सवाल था : मैंने संभालकर थोड़ासा जो निगोदरहित स्थान था वहां पैर रखा ।

वि.सं. २०११में राधनपुर चौमासेमें ओंकारसूरिजीने प्रश्न पेपरमें बुद्धिपूर्वक का प्रश्न पूछा था : नींद में मुनिको गुणस्थानक होता हैं या चला जाता हैं ? अर्थात् नींदमें भी जागृति चाहिए । तो ही गुणस्थानक टिक सकता हैं ।

✱ इतना नक्की करो : चलते और वापरते बोलना नहीं । तो वचनगुप्तिका अभ्यास होगा । अभी मौन रहोगे तो इकट्ठी हुई शक्ति व्याख्यान के समय काम आएगी । गृहस्थ लोग कमाइ को व्यर्थमें खर्च नहीं कर देते, हम बोल-बोलकर उर्जाका दुर्व्यय कैसे कर सकते हैं ?

अंधेरेमें पुस्तक पढ़ते देखकर पू. आचार्यदेव कनकसूरिजीने मुझे टोका : 'आंखें खोनी हैं ? आगे चलकर नजर कम हो जाएगी ।' मुझे तभी पू. आचार्यश्रीने प्रतिज्ञा दी । इसी के कारण आज मेरी आंखें अच्छी हैं ।

बहुत पूछते हैं : 'आपको पढते समय चश्मा की जरुरत नहीं पड़ती ?'

मेरा जवाब होता है : 'आपके दर्शन के लिए जरुर पड़ती हैं, पढने के लिए नहीं ।'

नवसारीमें रत्नसुंदरसूरिजीने पूछा था : अब तक चश्मा नहीं पहना । अभी क्यों पहना ?

मैंने कहा था : श्रीसंघके दर्शन के लिए ।

चलो, हम सब वापरते-चलते व्यर्थ नहीं बोलने की प्रतिज्ञा करें ।

(प्रतिज्ञा दी गई ।)

(११) लोगनाहाणं ।

बीजाधानादि-युक्त भव्य जीवोंके भगवान नाथ हैं ।

हरिभद्रसूरिजी बहुत ही कम लिखते हैं, कम बोलते हैं, किंतु ऐसा लिखते हैं कि उसमें से अनेक गंभीर अर्थ नीकल सकते हैं ।

किसीकी धर्मक्रिया - तपश्चर्या देखकर अहोभाव आया वही धर्म-बीज । इस धर्म-बीजने ही हमको यहां तक पहुंचाया हैं । अभी गुरु ऐसे मिले हैं, जो आपको भगवान तक पहुंचा दें; यदि आप गुरुको मानो ।

जहाज या विमानमें बैठो तो इष्ट स्थल पर पहुंचाते हैं । नहीं बैठो तो जहाज या विमान क्या करें ?

भगवान वीतराग हैं । मध्यस्थ हैं । फिर भी नाथ उनके ही बन सकते हैं, जो बीजाधानादि से युक्त हैं । डोकटर या वकील उसी का केस हाथमें लेते हैं, जो अपना समर्पण करते हैं ।

'क्रोधका नाश करना हैं, क्रोध अप्रिय लगता हैं । क्षमा लानी हैं, परंतु आती नहीं हैं । प्रभु ! आपकी कृपा के बिना क्रोध जायेगा नहीं । क्षमा आयेगी नहीं । भगवान के प्रभावसे ही यह बन सकता हैं ।'

इस प्रकार जो भगवानकी शरणमें जाते हैं वे ही सनाथ हैं । उनके लिए भगवान नाथ हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

साधना और प्रार्थना

मैं किसी भी वस्तु की चाह करूं, उससे अच्छा आत्मा के चैतन्यमात्र को ज्यादा चाहुं, ऐसा मेरा मन बनो, यह श्रेष्ठ साधना और प्रार्थना हैं ।

पू. भुवनभानुसूरिजी आदि के साथ, सुरत, वि.सं. २०४८

२४-९-२०००, रविवार
अश्विन कृष्णा - ११

(११) लोगनाहाणं ।

जिस क्षण हम सन्मुख होते हैं उसी क्षण प्रभु की करुणाका साक्षात्कार होता हैं । मछली पानीमें ही हैं । सिर्फ मुंह खुले उतनी ही देर हैं । प्रभुकी करुणा बरस ही रही हैं, हमारे आसपास करुणा ही करुणा हैं, किंतु हम उसका स्पर्श प्राप्त नहीं कर सकते ।

'पानी में मीन प्यासी, मोहे देख आवे हांसी ।' ऐसी हमारी दशा हैं ।

सूर्यकी तरह केवलालोकसे भगवान संपूर्ण विश्वको भर देते हैं । इस अपेक्षासे भगवान विश्वव्यापक हैं । अन्य दर्शनीयोंने भगवानको 'विभु' कहे हैं, वह इस तरह घटित होता हैं । हम भी उनको इसी अपेक्षा से 'सर्वग' कहते हैं ।

(सर्वज्ञः सर्वगः शान्तः, सोऽयं साक्षाद् व्यवस्थितः ।)

भगवान कहां हैं ? ऐसा मत पूछो, भगवान कहां नहीं हैं ? ऐसा पूछो ।

भगवानकी करुणा चारों तरफ होने पर भी मछली की तरह हम प्यासे रहें यह कैसी करुणता ? तत्त्वद्रष्टा तो कहते हैं : भगवान

निष्काम करुणासागर हैं । वीतराग होने पर भी जीवों की तरफ वात्सल्यकी धारा बहा रहे हैं ।

✱ **दुनिया के सन्मानसे आप अपना मूल्यांकन मत करना । स्वयंका मूल्यांकन बहुत ही कठोर बनकर आपकी तटस्थ आंखों से किजिए । दूसरों के अभिप्रायसे चलने गये तो धोखा खा जाओगे ।**

✱ मूर्ति, आगम, मुनि, मंदिर, धर्मानुष्ठान वगैरह कुछ भी देखकर धर्म या धर्मनायक, भगवान के प्रति अहोभाव जगे तो धर्मका बीज पड़ गया, ऐसा मानें । पूर्वभवमें इस तरह बीजाधान हुआ होगा, इसीलिए ही हमें धर्म मिला हैं ।

बीजाधान हुआ हो तो ही भगवान के प्रति समर्पण भाव जगता हैं, भगवानको नाथके रूपमें स्वीकारने का मन होता हैं । भगवान उनके ही नाथ बनते हैं, सबके नहीं, केस सौंपे बिना डोकटर या वकील भी केस हाथमें नहीं लेते तो भगवान कैसे लेंगे ? काम किये बिना तो सेठ भी वेतन नहीं देता तो भगवान कैसे देंगे ?

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : यह तो सौदाबाजी न हुई ?

पूज्यश्री : पानी इतनी तो शर्त रखता हैं : आप उसको पीओ । पीने के बिना पानी कैसे प्यास बुझायेगा ?

आपके इस शिष्य का योग-क्षेम करते हो ?

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : सेवा करे तो योग-क्षेम करता हूं । क्योंकि मैं भगवान नहीं हूं ।

पूज्यश्री : यहां पर भी समर्पित बनो तो भगवान योग-क्षेम करते हैं ।

भगवान मोक्षके पुष्ट निमित्त हैं, किंतु आप मोक्षकी साधना करने के लिए तैयार ही न हो तो भगवान क्या करे ? मोक्षकी साधना करने के लिए आप तैयार हुऐ हो ?

आपके (हेमचन्द्रसागरसूरिजी) और मेरे बीच कोई गुरु-शिष्यका संबंध है क्या ? फिर भी पूछने आओ तो मैं मना करूं ?

✱ मैं घरका एक अक्षर यहां नहीं कहता हूं । पूर्वाचार्योंने कहा हुआ - अनुभव किया हुआ कह रहा हूं । ऐसी पंक्तियां मेरे

सामने हैं । कोई भूल हो तो कहना । मैं सुधार दूंगा । आप गीतार्थ हो ।

हरिभद्रसूरि स्वयं भी अपनी तरफ से नहीं कहते । देखो, वे स्वयं कहते हैं : '**योगक्षेमकृदयमिति विद्वत्प्रवादः** ।' भगवान योग-क्षेम करनेवाले हैं, ऐसा प्राज्ञपुरुष कहते हैं । योग-क्षेम नहीं करते हो और मात्र महत्त्व बढ़ाने के लिए यह विशेषण नहीं लगाया । वस्तुतः भगवान योग-क्षेम कर ही रहे हैं, इसीलिए ही भगवान 'नाथ' कहे गये हैं ।

बहुत सारे प्रसंगोंसे भगवान नाथ हैं, योग-क्षेम करते हैं, ऐसा नहीं लगता ? भगवान की आज्ञा थोड़ी सी छोड़ दी और आपत्ति में पड़ गये, ऐसा नहीं बनता ?

कल ही एक साध्वीजी दो घड़े पानी ला रहे थे । (यद्यपि वे एक ही घड़ा लाते हैं । दूसरा घड़ा तो दूसरे का था । सिर्फ पांच कदम आगे रखने गये थे ।) घड़े फूट गये । साध्वीजी सख्त जल गये । जिनको देखना हो वे उनकी दशा देखकर आयें । इसीलिए ही मैं दो घड़े लाने के लिये मना करता हूं ।

पू. कनकसूरिजीके जमाने में तो प्लास्टिक था ही नहीं । पू. कनकसूरिजी के कालधर्म के बाद (वि.सं. २०२०) पू. रामसूरिजी (डेलावाले) कच्छमें आये थे । तब हमारे पास एक प्लास्टिककी काचली देखकर पूछा : आपके समुदायमें भी प्लास्टिक आ गया ?

तब हमने कहा था : 'भूलसे एक काचली आ गई हैं ।' आज तो प्लास्टिक का अमर्यादित उपयोग होने लग गया हैं । पू. कनकसूरिजी म. तो प्लास्टिकका माल लेकर कोई श्रावक आये तो थेलीमें पेक कर, लानेवाले भाई को तुरंत ही रवाना कर देते । क्या भरोसा कोई बालमुनि प्लास्टिक की चीजोंसे ललचा जाय ।

इन (हेमचन्द्रसागरसूरिजी) महात्माके गृपमें आज भी प्लास्टिक का उपयोग नहीं होता ।

अपुनर्बन्धक, मार्गानुसारीके भी योग-क्षेम करनेवाले भगवान हैं । भले वे आज अन्य धर्ममें हैं । वीतराग भगवान को पहचानते भी नहीं हैं, परंतु भगवानको वे भजते हैं । उनका योग-क्षेम भगवान करते ही रहते हैं ।

धर्मबीज अंदर हैं उसकी प्रतीति क्या ? जिनवाणी के पानीसे अंकुरे आदि फूटते गये तो समझना : अंदर बीजकी बुआई हो चूकी हैं ।

'योगावंचक प्राणीआ, फल लेतां रीझे
पुष्करावर्तना मेघमां, मगशेल न भींजे ।'

बहुत अजैन ट्रकोंवाले चालक हमको देखकर खुश होते हैं । ट्रक खड़ी रखकर कहते हैं : इसमें बैठ जाओ । हम रुपये नहीं लेंगे । आपको इष्ट स्थान पर पहुंचा देंगे ।

उनको जब कहते हैं : 'हम वाहनमें नहीं बैठते । तब वे आश्चर्य के भावसे झुक पड़ते हैं ।

यह अहोभाव वही बीजाधान ।

जैनोंको ही बीजाधान होता हैं, ऐसा नहीं हैं । अजैनों को भी होता हैं । आज तो अजैनों को ही होता हो ऐसा लगता हैं । जैनों को तो दुगंछा न हो तो भी बड़ी बात गिनी जाएगी ।

योग याने मन-वचन आदि नहीं, किंतु **'अप्राप्त-लाभलक्षणः योगः'** जो न मिला हो उसकी प्राप्ति होना ही योग हैं । मान लो कि किसी गुण (क्षमा आदि) की आपमें त्रुटी हैं, भगवानके पास आप मांगते हो । भगवान वह देते हैं, वह योग कहा जाता हैं । देने के बाद उसकी सुरक्षा कर देते हैं वह 'क्षेम' कहा जाता हैं ।

आपने निश्चय किया : मैं क्रोध नहीं करूंगा । क्षमा रखूंगा । परंतु उसके बाद ऐसे प्रसंग आते हैं कि क्रोध आना सहज बन जाता हैं । फिर भी हृदयमें प्रभुका स्मरण हो तो आप क्रोध के आक्रमण से बच सकते हो । तो यह योग-क्षेम कहा जाता हैं। परलोककी अपेक्षासे भगवान आत्माको नरकादि दुर्गतिसे भी बचाकर क्षेम करते रहते हैं ।

ऐसे योग-क्षेम करनेवाले नाथ मिलने पर भी उनको हृदयसे न स्वीकारें तो हमारे दुर्भाग्यकी पराकाष्ठा कही जाएगी ।

* योगोद्वहनमें हम बोलते हैं :

उद्देशः सुत्तेणं अत्थेणं तदुभयेणं जोगं करिज्जाहि ।

सूत्र-अर्थ और तदुभयसे योग करो ।

समुद्देश : '**थिरपरिचिअं करिज्जाहि**' स्व-नामकी तरह उस सूत्र-अर्थ को स्थिर-परिचित करो ।

स्वयंके नामको कभी भूलते हैं ? आधी रात को भी नहीं भूलते हैं न ? **प्रीतियोग पराकाष्ठा पर पहुंचता हैं तब भगवान को कभी नहीं भूलते । स्वयं का नाम भगवानमें ही विलीन करने का मन हो जाता हैं ।**

अनुज्ञा : **सम्मं धारिज्जाहि, अन्नेसिं पवज्जाहि, गुरुगुणेहिं वुड्ढिज्जाहि ।**

उसका अब सम्यग् धारण करना । दूसरों को देना और महान गुणों से वृद्धि पाना ।

जैसे आपने पाया हैं, उस प्रकार अन्यमें भी विनियोग करना तो ही इसकी परंपरा चलेगी ।

आज यह बात इसीलिए याद आयी कि आचारांग के जोगवालों की अंतिम नंदी आ रही हैं । वे सब हितशिक्षा मांग रहे हैं । उन सबको इतना ही कहना हैं कि जिन सूत्रों के योगोद्वहन किये हैं उन सूत्रों को सूत्र-अर्थ-तदुभयसे आत्मसात् करना । जीवन उस प्रकारका बनाना ।

हमारे प्राण-त्राण-शरीर भगवान ही हैं । भगवान भले दूर हो, लेकिन आगमसे नजदीक हैं । आगमके एकेक अक्षरमें भगवान हैं । उसके पारायणसे पापकर्मोंका क्षय और मंगलकी वृद्धि होगी । आखिर हमको यही काम करना हैं न ?

सर्व आगमों का सार नवकारमें हैं । इस नवकारको कभी मत भूलना । नवकार कहता हैं : आप अगर मेरा स्मरण करते हो तो सर्व पापों का नाश करने की जवाबदारी मेरी हैं । सभी आगम नवकार को केन्द्रमें रखकर चारों तरफ प्रदक्षिणा दे रहे हैं । चौदहपूर्वी भी अंत समयमें नवकार याद करते हैं । ऐसा महामूल्यवान नवकार मिला हैं उसे भाग्यकी पराकाष्ठा समझना ।

संपादन-संशोधनमें इतने व्यस्त होने पर भी पू. जंबू वि.म. २० पक्की माला गिनने के बाद ही पानी वापरते हैं । यह प्रतिज्ञा देनेवाले पू.पं. भद्रंकर वि.म. थे । पू.पं. भद्रंकरविजयजी महाराजने पू. जंबू वि.म. जब अकेले थे (पिता म. स्वर्गवासी हो गये थे ।)

तब स्वयं के पास दीक्षा लेने आनेवाले एक भाई को पू. जंबू वि.म. के पास भेजा था ।

पू. अभयसागरजी म.भी नवकारके अनन्य उपासक थे । अनेकों को नवकार के उपासक बनाये हैं । नवकार के प्रभावसे आपको नये-नये अर्थोंकी स्फुरणा होगी - यह स्व-अनुभवसे समझ सकेंगे ।

भगवान को जाकर कहिए : भगवन् ! मैं आपका हूं । आप मेरे हो । मेरे नाथ हो । मेरा योग-क्षेम करने की जवाबदारी आपकी हैं । मुझ में खामी हो तो बताना ।

आप आज्ञा का पालन करो तो भगवान योग-क्षेम करते ही हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

'कहे कलापूर्णसूरि' तथा 'कह्युं कलापूर्णसूरिए' इन दोनों पुस्तकों की ३-३ नकल मिली हैं । खूब-खूब आनंद हुआ हैं । दृष्टिपात किया । अत्यंत आनंदानु-भूतिदायक आलेखन हैं । स्वच्छ + सुगम हैं । कृति अति प्रशंसनीय हैं । और अध्यापन कार्यमें अत्युपयोगी हैं ।

पुस्तक प्राप्त होते बहुत ही आनंद हुआ हैं । दोनों पुस्तकों की १-१ कोपी मेरे अग्रज पंडितश्री चंद्रकांतभाई और अनुज पंडितश्री राजुभाई को भेज दूंगा ।

- अरविंदभाई पंडित

राधनपुर

पू. भुवनभानुसूरिजी आदि के साथ, सुरत, वि.सं. २०४८

२५-९-२०००, सोमवार
अश्विन कृष्णा - १२-१३

वडोदराके विद्यार्थीओं द्वारा नरकके जीवंत प्रदर्शन के प्रसंग पर :

पूज्य धुरंधरविजयजी :

मृत्युके बाद क्या होता हैं ? वह हम नहीं जानते । वह शास्त्रसे ही जान सकते हैं । काले पानी की सजावाला भी कहने नहीं आ सकता । इनाम मिले वह तो फिर भी कहने आ सकता हैं ।

दुःखका कारण दुःख देना वह हैं । इस जगतमें भी मनुष्य-हत्यादिका बदला मिलता ही हैं । किंतु फिर भी पर्याप्त नहीं है। लाखों मनुष्यों को मारनेवाले को या एकको मारनेवाले को भी मृत्युदंडसे ज्यादा यहां दिया नहीं जा सकता । उसके लिए व्यवस्था हैं नरक ।

अणुबोंब फेंकनेवाला पागल हो गया था । उसको परेशानी-परेशानी हो गयी थी ।

स्वर्ग--नरक वैक्रिय भूमियां हैं । हमारा ही आचरण किया हुआ हमको मिलता हैं ।

मरनेसे दुःखसे मुक्त नहीं हो सकते । प्रायश्चित्त से ही दुःखसे मुक्त हो सकते हैं ।

एक वाहनका पाप भी अनालोचित हो तो नरकमें ले जा सकता हैं ।

वैक्रिय शरीरकी पीड़ा तीव्र होती हैं । क्योंकि बेहोशी नहीं होती । शरीर टूटता नहीं हैं ।

यहां जो सुख देता हैं, उसको भवांतरमें स्वर्गमें अनेकगुने सुख मिलते हैं । हमें सुख-दुःख दोनों से पर होकर मोक्षमें स्थित होना हैं । संसारका सुख हिंसा पर खड़ा हैं ।

पापमें जितना मजा ज्यादा उतनी सजा ज्यादा ।

पापमें जितना पश्चात्ताप ज्यादा उतनी मजा ज्यादा !

स्वर्ग हैं तो नरक है ही । प्रकाश हैं तो अंधकार भी हैं ही । आप मानते हो कि नरक नहीं हैं, किंतु मान लीजिए कि नरक नीकली तो क्या करेंगे ? आपकी मान्यता से कभी 'अस्तित्व' 'नास्तित्व' में बदल नहीं सकता, 'है' 'नहीं है' नहीं होगा ।

✱ पू. आचार्यदेव श्री विजयकलापूर्णसूरिजी :

एक घण्टेसे वडोदराके विद्यार्थीओंने जो दृश्य बताया, वह देखने के बाद जिसके कारण नरकमें जा सकते हैं वे कारण तो मिटने ही चाहिए । नरकके चार द्वारोंमें प्रथम ही द्वार रात्रिभोजन हैं । उसका त्याग करना । कंदमूल भक्षण, परस्त्रीगमन, अचार बगैरह का भी त्याग करना । पंचेंन्द्रियकी हत्या तो होनी ही नहीं चाहिए । अपितु हत्या का बिचार भी नहीं आना चाहिए । ऐसे युगमें हमने जन्म लिया हैं जहां औषध के नाम पर ज़हर (जीवोंको मारनेका) का उपयोग होता हैं । चींटी बगैरह को मारनेके लिए, जंतुओं को मारने के लिए उपयोग होता जहर कुछ अंशमें मनुष्यको भी नुकसान करता ही हैं । धर्मी आत्मा ऐसी दवा (ज़हर) का उपयोग नहीं करता ।

२० साल पहले यहां पालीतानामें सूयगडंग सूत्र पढा था । उसमें नरक का वर्णन था । वह पढते हृदय कांप उठता हैं ।

चारमें से नरक भी एक गति हैं । चार गति के चक्रमें से बचने के लिए ही धर्मकी आराधना करनी हैं । महारंभ, महापरिग्रह, पंचेन्द्रिय, हत्या, मांसाहार - ये नरक के कारण जानकर उसका त्याग कीजिए । बड़े कारखाने बगैरह नहीं खोलो तो उद्योगपति शायद न बन सको, परंतु धर्मी तो बन ही जाओगे ।

✱ पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी :

कोई आत्मा वैराग्य प्राप्त न करें उस समय उसका मित्रदेव यहां आकर नरकके दुःखोंको बताते हैं । अभी दृश्य कल्पित लगता हो, किंतु शास्त्रीय पदार्थका दर्पण हैं ।

उमास्वातिजीने कहा हैं : महाआरंभ, महापरिग्रह नरकके कारण हैं ।

घरमें ऐसी सामग्री इकट्ठी कर रखी हैं जिसमें परदे के पीछे महारंभ-परिग्रह हो । T.V., फ्रीज, मोटर बगैरह कब चलते हैं ? उसके पीछे बड़े कतलखाने चलते हैं वह जानते हैं ? जिसकी मना की हैं उन कर्मादानों के पीछे आज जैन दौड़ रहे हैं । पू. आचार्यश्री उससे अटकाते हैं ।

मक्खी-मच्छर-खटमलकी औषधि वापरते हो तो आप जैन रह ही नहीं सकते ।

सभी प्रतिज्ञा ले लो ।

⌘ ⌘ ⌘

तीर्थंकर भगवंत की महिमा

- तीर्थंकर भगवंत मुख्य रूप से कर्मक्षय के निमित्त हैं ।
- बोधिबीज की प्राप्ति के कारण हैं ।
- भवांतरमें भी बोधिबीज की प्राप्ति कराते हैं ।
- वे सर्वविरति धर्म के उपदेशक होने से पूजनीय हैं ।
- अनन्य गुणों के समूह के धारक हैं ।
- भव्यात्माओं के परम हितोपदेशक हैं ।
- राग, द्वेष, अज्ञान, मोह और मिथ्यात्व जैसे अंधकारमें से बचानेवाले हैं ।
- वे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और त्रैलोक्य प्रकाशक हैं ।

पू. जम्बूविजयजी के पास वाचना, धामा - गुजरात, वि.सं. २०३७

२५-९-२०००, सोमवार
अश्विन कृष्णा - १२-१३

✱ प्रभु तो सभीके उपर उपकार करने के लिए तैयार हैं, परंतु सभी जीव इनके योग-क्षेम करनेकी शक्ति स्वीकार नहीं कर सकते । बरसात सब जगह पड़ता हैं, परंतु प्यास उसी की बुझती हैं, जो पानी पीता हैं । भगवान उनके ही नाथ बनते हैं, जो उनको नाथ के रूपमें स्वीकारते हैं । उसमें भगवानकी संकुचितता नहीं हैं । सूर्य उल्लूको मार्ग नहीं बता सकता इसमें सूर्यकी संकुचितता नहीं हैं ।

यैनैवाराधितो भावात्, तस्यासौ कुरुते शिवम् ।
सर्व जन्तु-समस्याऽस्य, न परात्मविभागिता ॥

- योगसार

सर्व जंतुओ पर भगवान समान हैं । जो भाव से आराधना करता हैं उसका कल्याण करते ही हैं । यहां कोई मेरे-तेरे का विभाग नहीं हैं ।

संपूर्ण समर्पण की बात हैं । एकबार समर्पित हुए तो सभी जवाबदारी भगवान की हो जाती हैं ।

समर्पित शिष्य सांपको पकड़नेकी आज्ञा भी स्वीकारने के लिए

तैयार हो जाता हैं । उनकी आज्ञा का ही मुझे पालन करना हैं । उसका रहस्य गुरु ही जाने । **आयरिया पच्चवायं जाणंति** । सांपको पकड़ने जाते लगे हुऐ झटके से उनका कुबड़ापन दूर भी हो जाता हैं ।

✱ पिंडवाडामें (वि.सं. २०३४) पू. धर्मजित् वि.म.के पास निशीथका एक पाठ ऐसा आया कि उन्होंने पढने की और दूसरों को पढाने की मना की थी । पढनेवाले के उपर भी विश्वास कि वे जब अकेले होंगे तब भी नहीं पढेंगे । ऐसे गंभीरको ही छेदसूत्र पढा सकते हैं ।

अगंभीर शिष्यको छेदसूत्र नहीं दे सकते उसका अर्थ यह नहीं हैं कि गुरुको उसके प्रति पूर्वग्रह हैं । माता छोटे बालकको भारी खुराक नहीं देती उसमें बालकका हित ही हैं ।

✱ बीजाधान हो उसका योग-क्षेम अंतमें मोक्ष तक नित्य चालु रहता हैं । भगवान मोक्ष उसीको दे सकते हैं, जिनको वहां जाना हैं । डोकटर प्रत्येक दर्दीको नहीं, इच्छा हो उसीको दवा देता हैं ।

भगवान योग-क्षेम हंमेशा करते हैं । ऐसा मैंने स्वयं अनुभव किया हैं । अनेक-अनेक प्रसंगोंमें किया हैं । उदा. आपने कोई प्रश्न पूछा और मैंने तुरंत ही जवाब दे दिया । वहां मैं भगवानकी कृपा देखता हूं । कभी-कभार एकाध घण्टे के बाद भगवान आकर जवाब दे जाते हैं । भगवान का ही हैं । भगवान दिलाने के लिए इच्छते होंगे तो दिलायेंगे । जवाबदारी उनकी हैं । कभी तबीयत अस्वस्थ हो फिर भी भगवानको याद करके वाचनाके लिए झुका देता हूं । योग-क्षेम करनेवाले भगवान बठे हैं । फिर क्या चिंता ?

ऐसे भगवान को एक क्षण भी कैसे भूल सकते हैं ? 'समय-समय सो वार संभारुं' यों ही नहीं कहा गया । भगवान भूल गये उसी समय मोह का हमला होता ही हैं, भगवान को हंमेशां याद करने की तैयारी हो तो भगवान की तरफ से योग-क्षेम होता ही हैं ।

भाग्येशविजयजी : 'इतनी भूमि प्रभु तुमही आण्यो ।' यहां भगवान की तरफसे योग-क्षेम नहीं हैं ?

पूज्यश्री : भारत सरकार सैनिकों को हथियार कब देती हैं ?

विद्यालयमें पढते हो तब नहीं, किंतु लडाई के मैदानमें उतरते हैं तब । उसी तरह भगवान योग-क्षेम कब करते हैं ?

निगोदसे यहां तक भगवानका उपकार तो हैं ही, परंतु विशिष्ट प्रकारका योग-क्षेम तो बीजाधान के बाद ही होता हैं, विद्यालयमें विद्यार्थी पढता हैं तब भी सरकारकी तरफसे सहायता मिलती ही हैं, किंतु हथियार तो युद्धके मैदानमें मिलते हैं ।

✱ बीजाधान - बीजका उद्‌भेद, उसका पोषण वह योग ।

उस अंकुरेके आसपास बाड़ द्वारा उपद्रवोंसे सुरक्षा करनी वह क्षेम । योग-क्षेम करे वे नाथ ।

✱ हरिभद्रसूरिजी स्वयं आगमपुरुष हैं । इसीलिए उनकी प्रत्येक कृति आगमतुल्य गिनी जाती हैं । ऐसा उल्लेख पद्मविजयजीने १२५ गाथाके स्तवनके टब्बेमें किया हैं ।

सबसे पहले आगमों के टीकाकार हरिभद्रसूरिजी हैं । हम स्थानकवासी की तरह मात्र मूल आगमको नहीं मानते । टीका वगैरह सहित पंचांगी आगम मानते हैं । यदि उनकी आगम परकी टीकाएं आगम गिनी जाय तो अन्य ग्रंथ भी आगमतुल्य ही गिने जाते हैं ।

'चूर्णि भाष्य सूत्र निर्युक्ति, वृत्ति परंपर अनुभव रे;
समय पुरुषना अंग कह्या ए, जे छेदे ते दुर्भव्य रे ।'

- आनंदघनजी

आगमके रहस्यों को समझना हो तो हरिभद्रसूरिजी के योग ग्रंथोको पढना जरुरी हैं । ऐसा उपा. यशोविजयजीने कहा हैं ।

सूत्र नहीं मानते तो आप गणधरों को नहीं मानते । टीका वगैरह नहीं मानते तो अरिहंतोंको नहीं मानते हैं । क्योंकि अर्थ कहनेवाले अरिहंत हैं । सूत्र रचनेवाले गणधर हैं ।

✱ एक ही तीर्थंकरसे सभी भव्योंका योग-क्षेम शक्य नहीं हैं । अपार्ध पुद्‌गल परावर्तमें मोक्ष होनेवाला हो, उसीका योग-क्षेम होता हैं । तत्काल ओपरेशन कराना हो उसी दर्दीका डोकटर ओपरेशन करते हैं ।

हमारा स्वभाव हैं : सभी मेरे पास रखूं । कुछ भी समर्पित न करूं । मेरा सो मेरा, तेरा भी मेरा । ऐसे स्वभाववाले का भगवान योग-क्षेम कैसे कर सकते हैं ?

हमने हमारे पास क्या रखा ? और भगवानको-गुरुको क्या दिया हैं ? कभी आत्म-निरीक्षण करना । पता चल जायेगा ।

गोशालक-जमालिको साक्षात् भगवान मिलने पर भी क्यों काम नहीं हुआ ? मोक्ष देरी से होनेवाला था इसीलिए समर्पणभाव नहीं जगा ।

इससे इन्डायरेक्ट रूप से भगवान ऐसे भी बताते हैं : सभीको एक साथ तार देने की मूर्खता छोड़ देना । बीजाधान के बिना जीवों को भगवान भी नहीं तार सकते तो आप कौन ?

'कार्यं च किं ते परदोषदृष्ट्या,
कार्यं च किं ते परचिन्तया च ।
वृथा कथं खिद्यसि बालबुद्धे,
कुरु स्वकार्यं त्यज सर्वमन्यत् ॥'

– हृदयप्रदीप

इस ३६ श्लोकके ग्रंथको कंठस्थ नहीं किया हो तो कर लेना । इसी ग्रंथमें लिखा हैं :

सम्यग् विरक्तिर्ननु यस्य चित्ते,
सम्यग् गुरुर्यस्य च तत्त्ववेत्ता ।
सदाऽनुभूत्या दृढनिश्चयो य-
स्तस्यैव सिद्धि र्न हि चापरस्य ॥

सिर पर सद्गुरु, हृदयमें वैराग्य, आत्मामें अनुभूति हो तो ही मोक्ष मिलता हैं ।

कभी विचारना : भगवानका योग-क्षेम मुझमें शुरु हुआ हैं या नहीं ? इस भवको हम चूक गये तो अनंत भव चूक गये, ऐसा मानो, नहीं तो यह गधा (हमारा जीव) नहीं समझेगा । यों ही सोया रहेगा । कितना भी कहें तो भी कोई असर नहीं । ऐसे गुरु, ऐसी सामग्री मिलने पर भी यह जगता नहीं हैं । सोना इसे बहुत ही अच्छा लगता हैं ।

भगवान गौतमस्वामी जैसे को प्रमाद नहीं करने के लिए कहते थे । यद्यपि गौतमस्वामी अप्रमादी थे, अंतर्मुहूर्त में द्वादशांगी बनानेवाले थे, ५० हजार केवलज्ञानी शिष्यों के गुरु थे । गौतमस्वामी के माध्यम से भगवान सबको अप्रमादका संदेश देते थे ।

एक परदेशी विद्वानने लिखा हैं : गौतम बहुत प्रमादी थे । इसलिए भगवान उसे बार बार टोकते थे : समयं गोयम मा पमायए ।

परदेशी विद्वान आगमों के उपर लिखें तो भी इस प्रकारका लिखते हैं । ऐसे परदेशी विद्वान ज्यादा करके धर्म के लिए योग्य नहीं होते ।

परदेशमें धर्म-प्रचार करने का प्रवाह चला हैं । सिर्फ अहंका प्रचार होता हैं । वहां स्व-साधना बिलकुल भूल जाते हैं ।

महेश योगीने विश्वमें बहुत ध्यानकेन्द्र खोले हैं । इसके ध्यानको शशिकांतभाई अपनी भाषामें नशे की गोली कहते हैं ।

*** 'मज्जत्यज्ञः किलाज्ञाने, विष्ठायामिव शूकरः ।**
ज्ञानी निमज्जति ज्ञाने, मराल इव मानसे ॥'

- ज्ञानसार

यहां शास्त्रकारों को द्वेष नहीं हैं कि हमको भूंड की उपमा दें । किंतु करुणा हैं : विष्ठा जैसी अविद्या छोड़कर जीव ज्ञानी बनें ।

पुद्‌गल मिलते ही परमकी बात हम तुरंत भूल जाते हैं । हज़ार बार आत्माकी बात सुनी होने पर भी वह बात याद नहीं रहती ।

याद रहें : बुलाये बिना पुद्‌गल आते नहीं हैं । आप बुलाओ । (राग-द्वेष करो) और पुद्‌गल आये बिना नहीं रहते ।

विश्वका राजा तो आत्मा हैं । आत्मा पुद्‌गल के जूठेमें पड़े वह ज्ञानीओंको कैसे अच्छा लगे ? कोई भी पदार्थ मतलब पुद्‌गल का जूठा ही । जितना धान्य हैं वह क्या हैं ?

गांधीधामवालोंने तो मुझे कहा था : हमारा कारखाना मतलब विष्ठाका कारखाना ! विष्ठा ज्यादा उतना खाद जोरदार ! इस खादसे ही धान्य तैयार नहीं होता ? यद्यपि पुद्‌गल परिणमनशील हैं । इसके गुणधर्म बदलते जाते हैं । किंतु हैं तो सब इसका ही न ? अनंत जीवोंने भोगा हुआ ही हैं न ?

यह सब ज्ञान आत्माको प्राप्त करने के लिए ही हैं, जानकारी का भार बढाने के लिए नहीं हैं । गधेको देखा हैं न ? हम सिद्धाचल की यात्रा के लिए जाते तब सामने से गधे आते थे न ? ये गधे बहुत भार उठाते हैं, किंतु क्या मिलता हैं ? शायद चंदनका भार

गधे उठाये, लेकिन क्या सुगंध प्राप्त करते हैं ? हमें ज्ञानका भार उठानेवाले गधे बनना हैं ?

दूसरी आत्मा भी मोक्षमें जाये, ऐसी भावना के लिए प्रयत्नशील बननेवाले हम स्वयं की ही (आत्मा की) चिंता न करें ?

* संपूर्ण शरणागति लेनेके लिए आत्मा तैयार नहीं होती । यह तैयार न हो तब तक भगवान की तरफ से योग-क्षेम नहीं होता । मन-वचन-काया तीनों भगवानको सौंप दो तो भगवान आपकी आत्माको परमात्मा बनाने के लिए अभी तैयार हैं । परंतु हमारी तैयारी कहां हैं ?

प्रीति-भक्ति आदि अनुष्ठानों में क्रमशः ज्यादा से ज्यादा अर्पण ही करते जाना हैं ।

आप योग-क्षेमके पात्र बने तो आपका मोक्ष नक्की ! मृत्यु से पहले इतना तो नक्की कर ही लेना । इतनी मेरी बात मानना ।

* मिथ्यात्व मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति ७० कोड़ा-कोड़ि सागरोपम हैं । ऐसी उत्कृष्ट स्थिति जो अब एक भी बार नहीं बांधनेवाला हो वह अपुनर्बंधक कहा जाता हैं ।

मिथ्यात्वकी उत्कटता हो वहां अनंतानुबंधीकी भी उत्कटता होती हैं । अंतर्मुहूर्त में ७० कोड़ाकोड़ि सागरोपम (याने कि ३॥ कालचक्र) कर्मकी स्थिति बांध सकते हैं ।

सम्यक्त्व रोकनेवाला यह दर्शन मोहनीय ही हैं । इसे सर्वप्रथम पराजित करना पड़ेगा । इसके लिए कदम-कदम पर 'नमो अरिहंताणं' जपते जाओ । मोह के सामने यह मोरचा शुरु करना ही रहा । लोगस्स क्या हैं ? भगवानको नमस्कार हैं । नमस्कार, मोह के सामने प्रत्याक्रमण हैं ।

* दुर्योधन-रावण वगेरहने युद्ध करके जितने कर्म बांधे उससे भी ज्यादा कर्म देव-गुरुकी आशातनासे बांधते हैं । वह (युद्धादि करनेवाला) नरकमें जाता हैं, परंतु देव-गुरुकी आशातना करनेवाला तो निगोदमें जाता हैं ।

भक्ति कम हो तो भले हो, किंतु देव-गुरुकी आशातना तो कभी मत करना ।

⌘ ⌘ ⌘

मद्रास, वि.सं. २०४९

२७-९-२०००, बुधवार
अश्विन कृष्णा - ३०

✱ परिग्रह संज्ञा सबसे ज्यादा पीड़नेवाली हैं । परिग्रह छूटा हैं, परंतु परिग्रह संज्ञा छूट गयी हैं ऐसा लगता हैं ? उसको तोड़ने के लिए दानधर्म हैं ।

उसके बाद पीड़नेवाली हैं मैथुन संज्ञा, उसको तोड़ने के लिये शीलधर्म हैं ।

उसके बाद आहार संज्ञा पीडा देती हैं । 'यही चाहिए यह नहीं चाहिए ।' ऐसी वृत्ति आहार-संज्ञा ही हैं । आहार छोड़ना आसान है, किंतु आहार संज्ञा छोड़नी मुश्किल हैं । उसे तोड़ने के लिए तपधर्म हैं ।

चौथी पीड़नेवाली भय संज्ञा हैं । भयके कारण हमारा मन नित्य चंचल रहता हैं । चंचलता भय की निशानी हैं । उसे तोड़ने के लिए भावधर्म हैं ।

आहार नहीं, आहार संज्ञाको तोड़ने के लिए तप हैं । आज इन महात्मा (हेमचन्द्रसागरसूरिजी)ने ७६वीं ओलीका पारणा किया हैं । उनको तप करने की क्या जरुरत ? प्रसिद्धि हैं । परिवार हैं । भक्त वर्ग हैं । सब कुछ हैं । फिर भी तप के प्रति कितना

प्रेम हैं ? क्योंकि जानते हैं तप के बिना कर्म-क्षय नहीं होता ।

कर्म-क्षय के बिना मोक्ष मिलेगा ? लड्डु खाते-खाते मोक्ष मिल जायेगा ? मुझे नहीं लगता : मोक्ष की इच्छा जगी हुइ हो। मोक्षमें जाना हों तो कटिबद्ध होना पड़ेगा । **'देहं पातयामि कार्यं वा साधयामि ।'** मोत को मूठी में रखकर नीकलना पड़ता हैं । तो तप होता हैं, कर्म-क्षय होता हैं ।

✱ अपुनर्बंधकमें हमारा नंबर हैं या नहीं वह जानना हैं ? बीजाधान हुआ हैं या नहीं, वह जानना हैं ? बीजाधान के बिना भगवान की तरफसे योग-क्षेम होनेवाला नहीं हैं । अतः स्वाभाविक हैं कि हमारे अंदर बीजाधान हुआ हैं कि नहीं वह जानने की इच्छा जगे । अपुनर्बंधकता के बाद क्षयोपशम भावके गुण बढते रहते हैं ।

पूज्य हेमचंद्रसागरसूरिजी : क्षयोपशम भावका अप-डाउन हुआ नहीं करता ?

पूज्यश्री : नहीं, क्षयोपशमभावकी नित्य वृद्धि होनी चाहिए । आगे-पीछे जाता रहे तो मुसाफिर मंझिल तक कैसे पहुंचेगा ? मुंबई से यहां आप कैसे आये ? थोड़े आगे थोड़े पीछे चलते रहो तो पहुंच सकते हों ?

हमें मुक्तिनगरीमें पहुंचना हैं । पीछे हटेंगे तो कैसे पहुंचेंगे ?

अपुनर्बंधक याने ऐसी आत्मा कि वह अब भवचक्रमें कभीभी मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति (७० कोड़ाकोड़ि सागरोपम) बांधनेवाली नहीं है ।

इसने थोड़ीसी परमकी झलक प्राप्त की हैं वह अब विष्ठामें कैसे लेटेगा ? मिठाई खाई हो वह अब एंठा-जूठा कैसे खाएगा ?

शायद भोजन करना पड़े तो भी मन कहां होगा ?

जाण्यो रे जेणे तुज गुण लेश,
बीजा रे रस तेने मन नवि गमेजी,
चाख्यो रे जेणे अमी लवलेश,
बाकस-बुकस तस न रुचे किमेजी !

- उपा. यशोविजयजी

ये यशोविजयजीके उद्‌गार हैं, जो लघु-हरिभद्र कहे गये हैं ।

अपुनर्बंधकमें विषयाभिलाषाकी विमुखता होती हैं, उसे संसार

ज्यादा अच्छा नहीं लगता । भले वह चक्रवर्ती हो या शहनशाह, परंतु मन संसारमें नहीं लगता ।

विषयाभिलाषाकी निवृत्ति करानेवाली क्षयोपशमकी वृद्धि हैं । अपुनर्बंधक के बिना यह नहीं हो सकता ।

अपुनर्बंधक अवस्थामें हमने प्रवेश किया तो भगवानकी तरफसे योग-क्षेम होना शुरु हो ही गया, जान लो ।

अन्यदर्शनी जो कहते हैं : हम परमकी झलक, परमका आनंद अनुभव कर रहे हैं, वे सच्चे नहीं हैं, ऐसा नहीं हैं । अपुनर्बंधक-दशामें भी ऐसा आनंद मिल सकता हैं, ऐसा हरिभद्रसूरिजी कहते हैं ।

(१२) लोगहिआणं ।

लोक याने पंचास्तिकाय । पंचास्तिकायमें अलोक भी आ गया । क्योंकि आकाशास्तिकाय अलोकमें भी हैं ।

अलोक इतना बड़ा है, उसे लोकमें कैसे समा सकते हैं ? इस अर्थमें समा सकते हैं । केवलज्ञानमें भी समा सकते हैं ।

भगवान पंचास्तिकायमय लोक के लिए हितकारी हैं ।

यथावस्थित दर्शनपूर्वक, सम्यग्-प्ररूपणा करके भगवान हित करते हैं । ऐसा हित करते हैं कि जिसमें भाविमें कोई बाधा न पहुंचे ।

भगवान सर्व पदार्थोंको यथार्थ देखते हैं । उसके (दर्शनके) अनुरूप भगवान व्यवहार करते हैं । भगवान ऐसी ही प्ररूपणा करते हैं जिससे भविष्यमें बाधा न पहुंचे ।

सत्य हो उतना सब भगवान बोलते नहीं हैं, भगवान बोलते हैं वह सत्य होता हैं, किंतु सत्य हो वह बोलते ही हैं, ऐसा नहीं हैं ।

डोसीमांको डोसी, अंधेको अंधा, कानेको काना, चोरको चोर, सच होने पर भी नहीं कहना चाहिए ।

न सत्यमपि भाषेत परपीडाकरं वचः ।

कौशिक नामके बाबाजीको प्रतिज्ञा थी : सत्य ही बोलना ।

वह जंगलमें जा रहा था । उस समय उसने दौड़ते चौरों को झाड़ीमें छिप जाते देखा । पीछे आते सैनिकोंने पूछा तो उसने कह दिया : चौर उस झाड़ीमें छिपे हैं ।

उन लोगोंने उन चौरोंको मार देते कौशिकको पाप लगा ।

कौशिकने सत्य देखा जरूर, परंतु भाविमें होनेवाले खतरेको दूर न किया । भगवान कभी ऐसा नहीं करते ।

ये सर्व धर्म प्राणीओंको सुखकारी, कल्याणकारी एवं मंगलकारी हैं । किसी जीव को तकलीफ हों ऐसी वाणी साधक कैसे निकाल सकता हैं ? भगवान स्वयं आचरण कर हम सबको ऐसा समझा रहे हैं ।

जिनागम और दूसरे शास्त्रों में यह बड़ा अंतर हैं । यथार्थ दर्शन और भाविमें हितकर प्ररूपणा मात्र जिनागमों में ही देखने मिलेगी ।

प्रश्न : हित और योग-क्षेममें क्या अंतर हैं ?

उत्तर : हित और योग-क्षेममें अंतर हैं । योगक्षेम बीजाधान-वालोंका ही होता हैं । हित सबका होता हैं । भगवान सबको हितकर हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

सम्यक्त्व के लक्षण

शम : उदयमें आये हुए या आनेवाले क्रोधादि कषायों को शांत करने की भावना रखकर, समता रखनी ।

संवेग : इच्छा हैं बल्कि मात्र मोक्ष प्राप्ति की।

निर्वेद : संसारी जीव की प्रवृत्ति हैं, परंतु संसार के पदार्थोंमें आसक्ति नहीं हैं ।

अनुकंपा : जगत के सर्व जीवों को स्व-समान मानकर सबके प्रति वात्सल्यभाव, करुणाभाव ।

आस्तिकता : श्रद्धा, जिनेश्वर और उनके द्वारा बोधित धर्ममें अपूर्व श्रद्धा ।

पू. हेमचन्दसूरिजी के साथ, गिरनार अंजनशलाका, वि.सं. २०४०

२८-९-२०००, गुरुवार
अश्विन शुक्ल - १

✱ भगवानकी देशनाके प्रभावसे तीर्थमें ऐसी शक्ति आयी कि जिससे तीर्थ २१ हजार बरस तक चलेगा । हम सब वाहक हैं । बड़ी मांडलीमें दूर रहे हुए महात्माको वस्तु पहुंचानेमें जिस तरह हम वाहक बनते है, उसी तरह यहां पर भी हम वाहक हैं । २१ हजारके सात भाग करें तो पहला भाग पूरा होने आया हैं, और छः भाग बाकी हैं ।

भगवान मोक्षमें गये तो तीर्थमें प्रभाव घट गया, ऐसा नहीं हैं । मैं तो कहता हूं : उलटा प्रभाव बढ गया हैं ।

भगवान पहले कर्मसहित थे । अब कर्म-मुक्त बने । कर्मसहितका प्रभाव ज्यादा या कर्मरहित का प्रभाव ज्यादा ?

अभी भी भगवानकी करुणा काम करती हैं वह समझ में आता हैं ?

✱ नगरमें धर्मी कितने ? अधर्मी कितने ? यह जानने के लिए श्रेणिकने नगरके बाहर बनाये हुए दो मंडपों में सभी धर्मके ही मंडप में आये । अधर्मके मंडपमें मात्र एक ही श्रावक था । जो कह रहा था : मैंने धर्ममें अतिचार लगाया हैं । मैं धार्मिक

नहीं हूं । अभयने कहा : यही सच्चा धर्मी हैं ।

✱ जैसी करुणा भावना तीर्थंकर भा सकते हैं वैसी दूसरे कोई नहीं भा सकते । तीर्थंकरमें यह विशेषता हैं : वे सर्व जीवों में आत्मभाव देखते हैं ।

ऐसे करुणाशील भगवानकी करुणा रही या गई ?

हेमचंद्रसूरिजी कहते हैं : भगवानमें इतनी करुणा हैं कि जिसके सामने स्वयंभूरमण भी छोटा पड़े ।

उस करुणाकी वृष्टि आज भी हो रही हैं ।

✱ मेरा योग-क्षेम भगवान कर रहे हैं । ऐसा विचार हमें कैसा गद्‌गद् बनाता हैं ? एक बड़े मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री की दोस्ती भी आदमीमें खुमारी भर देती हैं, तो भगवानका संपर्क आपके अंदर कैसी मस्ती भर देता हैं ।

भगवानकी करुणा आपको दुःखमें आश्वासन देती हैं ।

प्रश्न होगा : करुणाशील भगवानने श्रेणिक जेलमें थे तब क्यों कुछ नहीं किया ?

भगवानने उस समय भी श्रेणिककी रक्षा की ही हैं, दुःखमें श्रेणिकको धीरज और आश्वासन देनेवाले भगवान ही थे । भगवान दुःख दूर नहीं करते, दुःखमें समाधिकी शक्ति देते हैं, रोगमें योगकी शक्ति देते हैं, व्याधिमें समाधि देते हैं ।

यही भगवानकी कृपा हैं ।

बीजाधानवाले जीवोंका भगवान इस तरह (सद्‌विचार देकर) योग-क्षेम करते ही हैं । मात्र उसे देखने की आंख हमारे पास चाहिए ।

✱ महानिशीथमें खुलासा किया हैं : उधई खाई हुई एक ही महानिशीथकी प्रत मिली हैं, उसी तरह हमने लिखा हैं उससे कोई भी व्युद्‌ग्राहित न हों ।

ध्यान-विचार की भी इसी प्रकार एक ही प्रत पाटण के भंडारमें से अमृतलाल कालिदास दोसीको मिली थी ।

✱ बीजाधान करना हो तो पाप-प्रतिघात करना जरुरी हैं । पाप-प्रतिघात किये बिना बीजाधान कैसे हो संकता हैं ?

बीजाधानके बिना चाहे जितने आगे पहुंच गये हो (जैनाचार्य बनकर नवग्रैवेयक तक) तो भी व्यर्थ हैं ।

जैसे कि पू. देवचन्द्रजी कहते हैं,

'आदर्यो आचरण लोक उपचारथी,
शास्त्र अभ्यास पण कांइ कीधो,
शुद्ध श्रद्धान वली आत्म-अवलंब विण,
तेहवो कार्य तिणे को न सीधो ।'

बीजाधानका उपाय पाप-प्रतिघात हैं ।

पुद्गलका उपयोग चालु हैं । हम इच्छते हैं : हम इसमें से छूट जायें । होटलमें जाकर आप जितना उपभोग करो उतना बिल आयेगा । हमारे पुद्गलोंका बील नहीं चढेगा ? हमको पुद्गलों से छूटना हैं या इसी के ही चक्रमें फंसना हैं ?

ऐसी सामग्री बारबार मिलेगी ? भगवान गौतमस्वामी जैसे को बारबार कहते थे : 'समयं गोयम ! मा पमायए ।'

तो हमारे जैसोंकी क्या हालत ?

शुद्ध धर्मकी प्राप्ति पापकर्म के विगमसे, पापकर्मका विगम (विनाश) तथाभव्यताके परिपाक से होता हैं ।

* सातत्य, आदर और विधिपूर्वक ही धर्म शुद्ध हो सकता हैं ।

तीर्थंकर के आदर के बिना तीर्थंकर के धर्म पर आदर कैसे जगेगा ? सभीका मूल भगवान के उपरका बहुमान हैं ।

जइ इच्छह परमपयं, अहवा किर्त्ति सुवित्थडं भुवणे ।
ता तेलुक्कुद्धरणे, जिणवयणे आयरं कुणह ।

- अजितशांति

अगर आप परमपद चाहते हो या जगतमें कीर्ति इच्छते हो तो जिनवचन में आदर करो ।

जिनवचन आगे करते हो तब भगवानको आगे करते हो । भगवानको आगे किये तो सब जगह सफलता ही सफलता ।

जिनवचन गुरुको आधीन हैं ।

गुरु विनयको आधीन हैं ।

'नमो अरिहंताणं' में पहले 'नमो' विनयका सूचक हैं ।

तथाभव्यताका परिपाक करने के लिए दूसरे चार कारण नहीं, किंतु हमारा भगवानको प्राप्त करने का पुरुषार्थ ही मुख्य हैं । भगवान

ही सब कुछ हैं । काल बगैरह सभी भगवानके ही दास हैं, ऐसा मानकर पुरुषार्थ करना हैं ।

* व्यापारीओं के यहां दो विभाग होते हैं :

खाता और रोकड़ ।

खाता नवकार हैं । रोकड़ शेष द्वादशांगी ।

खातेमें मात्र टीप ही होती हैं ।

अब मैं पूछता हूं : रोकड़ खो जाय तो नुकसान या खाता खो जाये तो ज्यादा नुकसान ?

इसी तरह नवकार खो जाये तो सब कुछ खो जाता हैं ।

एक नवकार के आधार पू.पं. भद्रंकरविजयजी महाराजने अनेक अगम्य पदार्थों की शोध की और कहा : नवकार से निर्मल बनी हुई प्रज्ञा आपको सब कुछ ढूंढ देगी ।

गणधरों को तो मात्र तीन ही पद भगवानने दिये थे । वे मातृका हैं । यह खाता हैं । उसके उपर बनाई हुई द्वादशांगी वह रोकड़ हैं ।

* चार माता :

(१) वर्ण माता : ज्ञानमाता । अ से ह तक के अक्षर ।

पुराने जमानेमें माता की तरह अक्षरों को पूजते थे । गणधरोंने स्वयंने उसको नमन किया हैं । 'नमो बंभीए लिविए ।'

अक्षर द्रव्यश्रुत होने पर भी भावश्रुतका कारण हैं ।

(२) नमस्कृति माता (नवकार) : पुण्यकी माता ।

विशिष्ट पुण्य पैदा करने से जीवका विकास होता ही रहता हैं ।

(३) प्रवचन माता : धर्ममाता ।

पुण्य के बाद धर्मका सर्जन होना चाहिए ।

ये सभी धावमाताएं हैं । ये स्वयं का कार्य करके आगे की माताकी गोदमें हमको भेज देती हैं ।

पहले वर्णमाता आती हैं । वर्णमाता आपको नवकार माताकी गोदमें, नवकार माता आपको प्रवचन माताकी गोदमें रखती हैं ।

आज तो आश्चर्य होता हैं । आपके बालक वर्णमातासे वंचित रह जाते हैं । उसको A, B, C, D आती हैं, किंतु अ से ह तक

के अक्षर ही नहीं आते, हमारे पास ऐसे कितनेक बालक आते हैं । यह देखकर आश्चर्य होता हैं : हमारे ही देशका बालक हमारी ही भाषा नहीं जानता !

बालपनसे ही आप मातृभाषासे अलग हो जाओ तो आपमें आर्य-संस्कृति की धारा कैसी उतरेगी ? जो बाषा बचपनसे सीखो उसी भाषाकी संस्कृति उतरेगी ।

बालक तो ठीक, आज तो साधु-साध्वीजी भी संस्कृतसे दूर हो गये हैं । व्याख्यान अच्छे दे दिये ! लोगोंको प्रभावित कर दिया, बस... काम हो गया । लोकरंजनमें पड़ जायेंगे तो आगमोंको कौन पढेगा ?

जैन साधुओं को इतनी सामग्री मिली हैं कि अन्य कहीं जानेकी जरुरत ही नहीं पड़ती ।

(४) ध्यान माता : त्रिपदी ।

तीनों माताएं हमको अंतमें ध्यान माताकी गोदमें रख देती हैं । किंतु प्रारंभ तो क्रमशः ही होता हैं । सीधा ध्यान नहीं आता ।

✱ भगवान सबका हित करते हैं, किंतु सबके नाथ कैसे नहीं बनते ?

भगवान तो नाथ बनने के लिए तैयार हैं, किंतु हम उनको नाथ के रूपमें स्वीकारने के लिए तैयार नहीं हैं । बीजाधानयुक्त जीव ही नाथ के रूपमें स्वीकारने के लिए तैयार होते हैं ।

भारत सरकार युद्ध मैदानमें उतरे हुए वफादार सैनिकोंको ही शस्त्र देकर मदद करती हैं । बेवफा-शत्रु पक्षमें मिले हुए सैनिकोंको शस्त्र दे तो क्या हालत हो ? भारत सरकारसे ही भारतका नाश हो जाये ।

इसी तरह भगवान बीजाधानयुक्त भव्यात्मा के ही नाथ बनते हैं, दूसरे के नहीं । बीजाधान से प्रारंभ कर अंतमें मोक्ष तक भगवान योग-क्षेम करते रहते हैं । उसके बाद तो आप स्वयं नाथ बनकर दूसरे का योग-क्षेम करते रहोगे ।

✱ व्यवहार राशि या अव्यवहारराशि - सभी जीवों का हित भगवान करते हैं । हम भले विचारते न हों, परंतु हमारा हित कोई करते हैं, ऐसा पता चलता हैं ? रेलमें बैठे हो तब

चालक आपका हित करता हैं न ? भले वैसा कोई विचार आपके मनमें न हो ।

✱ भाषावर्गणासे मनोवर्गणाका उपकार-क्षेत्र बड़ा हैं ।

हम जिस तरह विहार करते हैं उसी तरह हमारे छोड़े हुए भाषा और मनके पुद्‌गल भी विहार करते हैं ।

पंद्रह योगोंके पुद्‌गल अल्प या अधिक देशांतर जाते हैं । कोई थोड़े दूर अटकते हैं कोई दूर तक जाते हैं ।

भगवान पवित्र वाणीका उच्चार करते हैं तब उसकी तरंगे सर्वत्र नहीं फैलती होगी ? सीमंधरस्वामी की वाणी के पुद्‌गल यहां नहीं पहुंचते होंगे ?

यह भी हमारा उनके द्वारा होता हित ही हैं न ?

⌘ ⌘ ⌘

परदेशमें पूज्यश्री के वचन की लब्धि का प्रसार

एक युवानने थोड़े ही दिनोंमें पूरी किताब (तत्त्वज्ञान प्रवेशिका) कंठस्थ कर ली और इसके चिंतनमें ऐसा खो गया कि अमेरिकामें धन कमाने गये हुए उस आदमीने धर्म कमाया । इतना ही नहीं लेकिन अमेरिका छोड़ दिया और भारत आकर आजीवन ब्रह्मचर्य ग्रहण कर तत्त्वज्ञान आत्मसात् किया । ज्यों ज्यों तत्त्वज्ञान प्राप्त करता गया त्यों त्यों इस जीवको भी जन्मो-जनम चले वैसा तत्त्व-चिंतन का महान पाथेयं मिला, जिसका ऋण कैसे अदा हो सकता हैं ?

- सुनंदाबहन वोरा

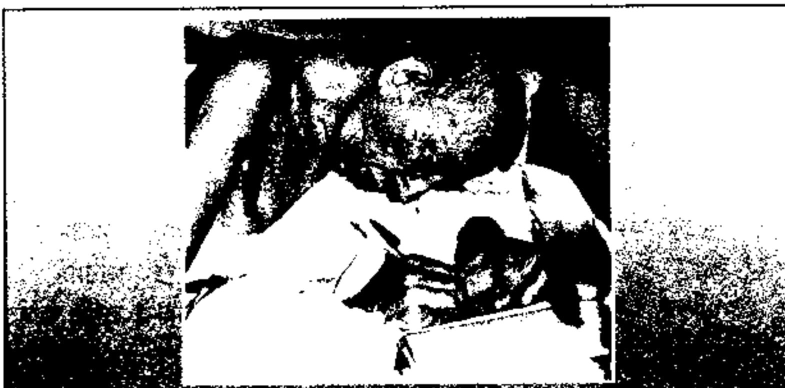

लेखन मग्नता

२९-९-२०००, शुक्रवार
अश्विन शुक्ल - २

* भगवान योग-क्षेम अमुकका ही करते हैं, परंतु हित सभीका करते हैं ।

जीवका तो हित करते हैं, अजीवका भी हित करते हैं । यथावस्थित वस्तुका प्रतिपादन करने से अजीव का भी हित करते हैं ।

भगवान यथावस्थित दर्शनपूर्वक सम्यक् प्ररूपणा करते हैं । भावि को बाधा न पहुंचे, उस तरह भगवान प्ररूपणा करते हैं । जो जिसको यथार्थ रूपसे देखते हैं, तदनुरूप भावि अपाय दूर करनेपूर्वक वर्तते हैं, वह उसको वस्तुतः हितकर हैं ।

वनस्पति आदि स्थावरमें चेतना बताकर भगवान लोगों को उसकी हिंसासे बचाते हैं । एकेन्द्रिय जीवोंको पीड़ा से बचाते हैं ।

लौकिक पर्वोमें जीवोंका नाश होता हैं, लोकोत्तर पर्वोमें जीवों को अभयदान होता हैं । छ कायका हित जिनविहित अनुष्ठानमें होता ही हैं ।

दूसरे व्रतका नाम मृषावाद-विरमण हैं, सत्य भाषण नहीं

हैं । सत्य हो वह बोल ही देना, ऐसा नहीं हैं, परंतु जो बोलो वह सत्य होना चाहिए, यह व्रतका रहस्य हैं । सत्य बोलनेवाला कौशिक तापस मरकर नरकमें गया हैं । जूठ बोलकर जीवों को बचानेवाला श्रावक स्वर्गमें गया हैं ।

इसी संदर्भमें कलिकाल सर्वज्ञ आचार्यश्री कुमारपाल कहां छुपाया हैं ? यह जानते हुए भी 'मैं नहीं जानता' ऐसा कहकर जूठ बोले थे । जिससे जीव बचे वह सत्य ! जिससे जीव का हित हो वह सत्य ! इससे विपरीत असत्य ।

आचार्यश्री द्रव्यसे मृषावाद बोले थे, किंतु भावसे सत्य ही बोले । मुख्य व्रत अहिंसा ही हैं । दूसरे व्रत पहले व्रतकी रक्षा के लिए ही हैं । यह टूट जाय तो दूसरे व्रत टूट ही जाते हैं । 'बाड़ धान्य के लिए हैं, बाड़ के लिए नहीं । अहिंसा के लिए सत्य हैं, सत्य के लिए अहिंसा नहीं हैं ।

अजीव के संदर्भ में सत्य या असत्य कुछ नहीं हैं, परंतु इस निमित्तसे मिथ्या भाषण से जीवका अहित होता हैं । सिर टकरायेगा तो खंभे को कुछ नहीं होगा, आपका सिर फूटेगा । अजीवकी सम्यक् प्ररूपणा से आखिर जीवका ही हित होगा ।

सिद्ध भगवंतोंकी प्ररूपणा अन्यथा करो तो उनका कुछ अहित नहीं होता, किंतु प्ररूपणा करनेवाले का अहित अवश्य होता हैं।

वनस्पतिमें जीव तो अभी जगदीशचंद्र बोझने कहा तब विज्ञानने माना, किंतु विज्ञान पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु आदिमें कहां जीव मानता हैं ? इसके लिए अनेक जगदीशचंद्र बोझ अभी होने बाकी हैं । वे कहेंगे तब विज्ञान मानेगा । किंतु हमें इतना इंतजार करने की जरुरत नहीं हैं । हमारे लिए तो सर्वज्ञ भगवान वैज्ञानिक ही हैं । उनका कहा हुआ हम सत्य मानकर चलें, यही हमारे लिए हितकर हैं ।

✱ हमारे जमानेमें गृहस्थ भी बहिर्भूमिके लिए बहार जाते थे । बिमार पड़े वही बाड़ेमें जाता था । आज तो साधुमहाराज भी वाड़ा हो तो बाहर शायद ही जाते हैं । वीर्याचार बिलकुल बाजुमें रख दिया हैं ।

एकबार हमारा चातुर्मास (वि.सं. २०२५) अहमदाबाद

विद्याशालामें था । मैं शामको बहिर्भूमि के लिए गया । वर्षा हुई । सामने पू.आ.श्री मंगलप्रभसूरिजी (उस समय पं.म.) सामने मिले । कपड़े भीगे हुऐ थे ।

मैंने पूछा : आपके जैसे ऐसे बारिसमें बाहर बहिर्भूमि के लिए जायें इसके बजाय वाड़ेमें जाय तो क्या तकलीफ हैं ?

उन्होंने कहा : 'देखो, बारिसमें भीगते जाना अच्छा, किंतु वाड़ेमें जाना अच्छा नहीं ! बारिसमें स्थावरकी विराधना हैं, जबकि वाड़ेमे त्रसकी विराधना हैं । फिर बुरी परंपरा पड़े वह अलग ।'

* बहुत गृहस्थ पैसे दे सकें ऐसे न हो तब दिवाला फूंकते हैं । उसी तरह कितनेक प्रायश्चित्त पूरा करने में असमर्थ हो वे आलोचना लेना ही बंद कर देते हैं ।

महानिशीथमें लिखा हैं : एक अनालोचित पाप भयंकर दुर्गतिमें ले जाता हैं । जिस पापकी आलोचना लेने का मन न हो, वह पाप-कर्म निकाचित समझें ।

हम तो स्थूल पापोंकी आलोचना लेते हैं, सूक्ष्म विचारों को तो बताते ही नहीं । अनालोचित पापवाले हमारा क्या होगा ?

उत्तम आत्मा शायद पाप करती हैं, किंतु बाद में उनको बहुत ही पश्चात्ताप होता हैं । जिसे पाप करने के बाद पश्चात्ताप का भाव जागृत नहीं होता, वह समझ लें : मेरा संसार अभी बहुत बाकी हैं ।

उपा. मानविजयजीकी तरह कह सकते हैं :

'क्युं कर भक्ति, करुं प्रभु तेरी ।
काम, क्रोध, मद, मान, विषयरस छांडत गेल न मेरी...'

उसकी आत्मा निकट मोक्षगामी समझें ।

इस छोटेसे स्तवनमें हमारी साधनामें रुकावट करते प्रायः सभी दोष आ गये हैं ।

पुराने संगीतकार (दीनानाथ बगैरह जैसे) ऐसे गीतोंको बहुत ही पसंद करते थे ।

ये दोष भक्तिके लिए विघ्न हैं । इन्हें दूर किये बिना भक्ति आत्माके साथ नहीं जमेगी ।

मानविजयजी कहते हैं : हम परनिंदा और स्वप्रशंसा करते हैं । अब इसे बदल दो । दूसरे की प्रशंसा और स्व-निंदा करो ।

मात्र थोड़ीसी दिशा बदलो तो विराधनाका मार्ग आराधनाका मार्ग बन जायेगा । जिस मार्ग से दुर्गतिनगरी आनेवाली थी, उसी मार्ग से पीछे लौटते सद्गतिनगरी आयेगी ।

आत्मारामजी म. जैसे उत्कृष्ट प्रभावक पुरुष भी भगवान के पास आकर रोये हैं, अपनी बड़ाई नहीं रखी ।

हमारे जितने दोष दुनिया जाने उतना अच्छा ! जितनी हमारी निंदा होगी उतना अच्छा । उतने ज्यादा कर्मोकी निर्जरा होगी । बिना पैसे यह धोबी आपके कपड़े धो दे वह कम बात हैं ?

पू. कलाप्रभसूरिजी : वह बेचारा कर्म बांधेगा उसका क्या ?

पूज्यश्री : महाराजा जा रहे थे और आमको मारने के लिए फेंका हुआ पत्थर राजाको लगा । महाराजाने उस लड़के को १००० सुवर्ण मुद्राओं का इनाम दिया ।

मंत्रीने कहा : कल आपको हजार पत्थर खाने पड़ेंगे । क्योंकि सबको इनाम मिलेगा, ऐसी आशा होगी !

आपका प्रश्न भी ऐसा ही हैं ।

महाराजाने कहा : मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूं कि ऐसे मारनेवाले को इनाम दूं । जिनका इरादा ऐसा हो उनको तो सजा ही करूंगा. किंतु इस बालकका इरादा कोई मुझे मारने का नहीं था, फल लेने का था ।

एक वृक्ष भी पत्थर मारनेवाले को फल देता हैं, तो मैं मनुष्योंमें भी मैं राजा और इसे सजा दूंगा ? मैं वृक्षसे भी गया ?

राजाका यह ऐंगल था ।

प्रत्येकका ऐंगल समझना चाहिए ।

हमें समाधि रखने के लिए यह ऐंगल हैं : निंदक उपकारी हैं । इसके स्वयंका एंगल अलग हैं : इसे तो ऐसे ही विचारना चाहिये : (यदि यह विचार सके ऐसा हो तो)

'निन्द्यो न कोऽपि लोके ।'

'विश्वमें किसी की भी निंदा से मेरा क्या होगा ?'

दोनों के अपने-अपने एंगल-दृष्टिकोण होते हैं । इस तरह अपनायें तो दोनों सच्चे ! दूसरेका दृष्टिकोण स्वयं अपना लें तो दोनों जूठे !

* दिवार के साथ आप टकराएंगे तो दिवार को कुछ नहीं होगा, किंतु आपका सिर फूटेगा । उसी तरह धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय या जीवास्तिकाय के विषयमें आप विपरीत प्ररूपणा करो तो उनका कुछ नहीं बिगड़ेगा, परंतु आपका जरुर बिगड़ेगा । उसी तरह आप सम्यक् प्ररूपणा करो तो उनको भले कुछ हो या न हो, किंतु आपका हित तो जरुर होता ही हैं ।

* दिमागको विकसित करने के लिए ज्ञानमें प्रयास करते हैं उसी तरह कायाको विकसित करने के लिए वीर्याचारमें प्रयास करना चाहिए । एकके उपर टूट न पड़ें, तीनों नौकरोंको (मन, वचन, काया को) समान काम दीजिए ।

⌘ ⌘ ⌘

कहाँ से मिले ?

स्वातिनक्षत्रमें छीपमें पड़ा हुआ पानी मोती बनता हैं, उसी प्रकार मानव के जीवनमें प्रभु के वचन पड़े और परिणाम प्राप्त करे तो अमृत बनते हैं । अर्थात् आत्मा परमात्म-स्वरूप प्रकट होती हैं । परंतु संसारी जीव अनेक पौद्गलिक पदार्थोंमें आसक्त हैं, उसे ये वचन कहाँ से शीतलता देंगे ? अग्नि की उष्णतामें शीतलता का अनुभव कहाँ से होगा ? जीव मन को आधीन हो वहाँ शीतलता कहाँ से मिले ?

स्वाध्याय मग्नता

२०-९-२०००, शनिवार
अश्विन शुक्ल - ३

(१३) लोगपईवाणं ।

✱ अंधेरेमें टकराते हुए हमारे लिए प्रभु-वचन प्रकाश बनते हैं । जिन-वचन प्रकाशरूप तब लगते हैं, जब हम स्वयं अंधेरेमें टकरा रहे हैं, ऐसा लगे ।

तीर्थ रहे तब तक प्रभु-वचन प्रकाश देते ही रहेंगे । भोजनशालाका स्थापक भले मृत्यु पा जाय, फिर भी जहां तक वह भोजनशाला चले वहां तक वह स्थापककी ही गिनी जाती हैं । यह तीर्थभी आत्माकी भोजनशाला ही हैं ।

✱ आज भगवतीमें ऐसा पाठ मिला, जिसे मैं बरसों से ढूंढ रहा था । पू.पं. भद्रंकर वि.महाराजने खास कहा था : पंचास्तिकाय परस्पर सहायक बनते हैं ऐसा कोई पाठ मिले तो ढूंढीए । आज वैसा ही पाठ मिला हैं ।

परस्पर उपकार करना, यह तो धर्म हैं । उपकार नहीं करना यह अपराध हैं । इस अपराधकी ही सजा के रूपमें ही हमें दुःखमय संसार मिला हैं ।

✱ प्रकाशका थोड़ा ही सहारा मिलने पर अंधेरेमें घाटमें पड़ते

बच जाते हैं । प्रकाश का यह थोड़ा उपकार हैं ?

दो धातुवादी भयंकर अंधकारपूर्ण गुफामें मशाल लेकर गये हो और बीचमें मशाल बुझ जाय तो क्या होगा ? आसपास कहीं प्रकाश नहीं हैं । चलना कैसे ? जाना कैसे ? वही समस्या हो जाय । अंदर बहुत ज़हरीले प्राणी फिरते हो उसका डर हों । ऐसी ही हालत हमारी थी । श्रुतज्ञानका दीप न मिला होता तो हमारी हालत ऐसी ही होती । श्रुतज्ञानकी किंमत कितनी ? यह आप ही विचारीए ।

किंतु निशाचरको अंधेरेमें ही फिरना अच्छा लगता हैं । प्रकाश आते ही आकुल-व्याकुल हो उठते हैं । हमें अज्ञानके अंधकारकी आदत नहीं पड़ गयी न...?

मेरी ही बात करुं : थोड़ी देर प्रभुके वाक्य भूल जाउं तो मैं आकुल-व्याकुल हो जाता हूं । आनंदघनजी की भाषामें कहूं तो :

'मनडुं किमही न बाजे हो कुंथुजिन ।'

हे कुंथुनाथजी ! मेरा मन ठिकाने पर नहीं रहता ।

'अध्यातम रवि उग्यो मुज घट, **मोह-तिमिर हर्युं** जुगते ।'

ऐसा कहनेवाले रामविजयजीने अनुभवसे ही कहा हैं । निष्काम भक्तिके प्रभावसे ही निजघटमें प्रकाश फैलता हैं ।

भगवान श्रुतज्ञानसे प्रकाश करते हैं, ऐसा नहीं कहते, यहां तो कहते हैं : भगवान स्वयं ही जगतके दीपक हैं । **लोगपईवाणं** ।

✱ भगवान कभी हमको नहीं भूलते, हम भगवान को भूल गये हैं । उसे याद करना हैं । भगवान हमें भूल गये हैं, वह भ्रम हैं । इस भ्रम को तोड़ना रहा ।

✱ उमास्वाति म. आधारपाठ के बिना कभी लिखते ही नहीं । उन्होंने ही **'परस्परोपग्रहो जीवानाम् ।'** लिखा । उसका आधार होना ही चाहिए । इसका मूल भगवतीके ४६१वें आजके सूत्रमें आप देख सकते हो ।

जीव, जीवास्तिकायको क्या मदद करता हैं ?

आकाश सभीको जगह देता हैं । जीव जीवास्तिकायको अनंत मतिज्ञान-श्रुतज्ञानके पर्याय देता हैं । (दूसरा शतक, अस्तिकाय उद्देशके सभी पाठ यहां जोड़ दें ।)

जीवका लक्षण ही उपयोगमय हैं । '**उपयोगो लक्षणम् ।**' इसका आधार यहां हैं । जिसका उपयोग हो, उसका परस्पर उपग्रह होता ही हैं । इसमें सभी जीव आ गये ।

✱ सभी ज्ञान तीर्थंकर से अनंतर या परंपर मिलता हैं । आपको जो ज्ञानादि मिले हैं, वह दूसरो को दें ।

जीव को ही ज्ञान दे सकते हैं, अजीव तो ले ही नहीं सकता । आप न आओ तो मैं खंभे को वाचना दे सकता हूं ?

अब प्रस्तुतमें आते हैं ।

प्रश्न : अजीवका अहित होता ही नहीं । तो भगवान अजीव के हितकारी कैसे हो सकते हैं ? अजीव को तो कोई पाप लगनेवाला ही नहीं हैं ।

उत्तर : हम अजीव-विषयक असत्य बोलें तो हमें माया और मिथ्यात्व लगता हैं न ? द्रव्योंमें प्राणातिपातमें **छसु जीवनिकायेसु** लेकिन मृषावादमें '**सव्वदव्वेसु**' क्षेत्रमें '**लोए वा अलोए वा ।**' ऐसे पक्खिसूत्रमें लिखा है । सभी द्रव्यों का यथास्थित अस्तित्व स्वीकारना ही पड़ता हैं । कर्ताकी अपेक्षा से अजीवमें अयथार्थता आते उसे नुकसान हुआ । दिवारको पत्थर मारो तो उसे कुछ नहीं होता, किंतु शायद आपका सिर फूटे । दूसरों को गिराने खड्डा खोदो तो वह गिरे या न गिरे लेकिन आपके लिए कूंआ तैयार हो ही जाता हैं । धवल मारने गया, श्रीपाल भले न मरा, परंतु धवल सेठ स्वयं तो मर ही गया । यथार्थ प्रतिपादन न करने से जीवको यह बड़ा नुकसान होता हैं ।

सभी मूंग पक रहे हैं, उसमें कंकटूक मूंग भले न पके, परंतु वह पाककी क्रिया तो चालू ही रही न ? उसी तरह यहां अजीव विषयक भी समझें ।

अठारह हजार शीलांङ्गमें अजीव संयम भी बताया हैं । अजीव के प्रति भी जयणा रखनी हैं । ओघा अजीव हैं, फिर भी जीव-रक्षामें मदद करता हैं ।

✱ भगवान लोकके प्रदीप हैं । दीपक बाह्य प्रकाश देता हैं । भगवान आंतरिक प्रकाश देते हैं ।

छोटेसे बालकको हम सीखाते हैं और उसका ज्ञान धीरे-धीरे

विकसित होता जाता हैं । उसी तरह हम भी छोटे थे तब किसीने (गुरु आदिने) हमें सीखाया था, वह याद हैं न ? दूसरोंने हमें सीखाया हैं । तो हमें भी दूसरों को नहीं सीखाना ? दूसरों को सहायता करनी यही यहां सीखना हैं । ज्ञानका प्रकाश आये तब यह सब समझमें आता हैं ।

दीपक एकांतमें छोटीसी जगह पर न रखकर ऐसे स्थान पर रखते हैं कि जिससे उसका प्रकाश सर्वत्र फैलें । दीपक दीपक के लिये नहीं हैं, पदार्थों को प्रकाशित करने के लिए हैं । भगवान जगतके दीपक हैं ।

हम छोटे थे, तब फलोदीमें इलेक्ट्रीक नहीं थी । प्रत्येक गलीमें लालटन की व्यवस्था थी । लोग आकर रोज शामको लालटन लगा जाते थे ।

दीपक किरणोंसे प्रकाश फैलाता हैं, उसी तरह भगवान देशनारूपी किरणोंसे प्रकाश फैलाते हैं ।

यहां लोकसे सम्यग्दृष्टि संज्ञी जीव लेने हैं । देशनाकी किरण उसे ही प्रकाशित करती हैं जो सम्यग्दृष्टि संज्ञी जीव होता हैं । गाढ मिथ्यात्ववाले का हृदय भगवान प्रकाशित नहीं कर सकते । उल्लूको सूर्य कुछ बता नहीं सकता । हम यदि घोर मिथ्यात्वी बनकर प्रभुके पास गये हो तो भगवानके वचन हमें कुछ भी कर नहीं सकते । हमारे हृदयका अंधेरा अभेद्य ही रहता हैं । हमने प्रत्येक भवमें ऐसा ही किया हैं । इस भवमें भी शायद चालू ही हैं । मैं भी साथमें हूं ।

पूज्य हेमचंद्रसागरसूरिजी : आप ऐसा बोले वह शोभता नहीं । हम निराश हो जाते हैं ।

पूज्यश्री : यह एक पद्धति हैं । मुझे अभिमान न आये, वह मुझे नहीं देखना ?

जामनगरमें व्याख्यान शुरु किये उसके बाद शंखेश्वरमें पू.पं. भद्रंकर वि.म. बगैरह के साथ रहना – प्रवचन देना हुआ । व्याख्यान के बाद पू.पं. भद्रंकर वि.म. को पूछा : प्रवचनमें कुछ सुधारने जैसा ? पू.पं. भद्रंकर वि.महाराजने कहा : व्याख्यानमें 'आप' 'आप' के स्थान पर 'हम' शब्दका प्रयोग करना । तथा स्वयंकी तरफसे, स्वयंकी बुद्धिसे कुछ बोलना नहीं ।

तथा बेडा-लुणावा बगैरह स्थानों में वे प्रवचनमें कछ खामी हो तो कहते । व्यवहारकी खामी हो तो निश्चयकी, निश्चयकी खामी हो तो व्यवहारकी बात करते ।

मैंने जो भी पुस्तकादि लिखे हैं, उन सभीमें आप शास्त्र-पाठ देख सकोगे । अभी तो ऐसा आत्म-विश्वास हो गया हैं कि जो भी मैं बोलता हूं वह शास्त्र सापेक्ष ही होता हैं, शायद अभी शास्त्र पाठ न मिले तो बादमें भी मिल ही जाता हैं ।

मैंने बहुतबार पू. पंन्यासजी म.की तरफसे उपालंभ भी सुना हैं । उन्होंने एकबार कहा था : आपको ध्यान-विचार के उपर लिखना अच्छा लगता हैं, किंतु '**परस्परोपग्रहो जीवानाम् ।**' पर क्यों लिखने का मन नहीं होता ? लगता है : प्रथम विश्वयुद्ध के बाद आपका जन्म हुआ हैं । आज-कल के जीव ऐसे ही हैं : परोपकारकी बातें उन्हें पसंद ही नहीं आती ।

मैं जैसा बोलता हूं वैसा मेरा जीवन चौबीसों घण्टे नहीं होता । ऐसा जीवन जीया जाय तो काम हो जाय । मैं तो मानता हूं कि आप सभी के पुण्यका यह प्रभाव हैं कि मैं बोल सकता हूं । बाकी मुझे बोलना भी कहां आता हैं ?

⌘ ⌘ ⌘

आपकी तरफ से भेजी पुस्तक 'कहे कलापूर्णसूरि' मिल गयी हैं । पुस्तक भेजने के बदल आपका खूब खूब आभार । कई समय से पुस्तक प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे, बल्कि प्राप्त नहीं हो सकती थी, जो आपकी कृपा से हमें मिल गई हैं ।

– **महासती**

राजकोट

स्वाध्याय मग्नता

१-१०-२०००, रविवार
अश्विन शुक्ल - ४

✽ भगवान का श्रुत खजाना विपुल और अद्‌भुत हैं, आत्म-विकास का कारण हैं ।

जगत को सच्चा ज्ञान देनेवाले भगवान ही हैं । यही सबसे बड़ा उपकार हैं । बहरा और गूंगा आदमी प्रायः कभी उपकारक बन नहीं सकता या प्रसिद्ध नहीं हो सकता । क्योंकि ज्ञान के आदान-प्रदान के द्वार बंध हैं । **ज्ञान का आदान द्वार कान हैं और प्रदान द्वार जीभ हैं । जो आदान कर सकता हैं वही प्रदान कर सकता हैं । जो सुन सकता हैं वही सुना सकता हैं । इसीलिए ही पांचों इन्द्रियोंमें कान महत्त्वपूर्ण गिना हैं । आपने अगर सुना न हो तो कभी बोल नहीं सकते । छोटा बालक पहले सुनता हैं उसके बाद ही बोलता हैं । आज के डोकटर कहते हैं : जन्म से गूंगा बालक प्रायः बहरा ही होता हैं । जिसने कभी सुना नहीं वह बोल कैसे सकेगा ?**

इस कान से परनिंदा या स्वप्रशंसा सुनना वह कानका अपराध हैं । इस अपराध का सेवन जो नहीं करता वह महायोगी हैं ।

'निंदा-स्तुति श्रवण सुणीने, हर्ष शोक नवि आणे;
सो जोगीसर जगमें पूरा, नित चढते गुणठाणे ।'

– चिदानंदजी

जिन इन्द्रियों का दुरुपयोग करते हैं वह इन्द्रिय भवांतरमें हमें नहीं मिलती । जैसे दूसरों के लिए धर्म दुर्लभ बनायें तो हमारे लिए ही धर्म दुर्लभ बन जाता हैं ।

इन इन्द्रियों का सदुपयोग कीजिए । कान से परप्रशंसा, जीभ से गुण की प्रशंसा, आंख से जिन-दर्शन करते रहें, जिससे भवांतरमें वे इन्द्रियां तो मिलेगी ही, साथमें अनासक्ति भी मिलेगी ।

यह वाचना आपके लिए ही नहीं देता । मैं मेरे लिये भी देता हूं । स्व-कल्याण का लक्ष्य पहले चाहिए । भगवान भी जबरदस्ती किसी को मोक्ष नहीं दे सकते । तो हम किस वाड़ी के मूले ?

शास्त्र याने भगवान की देशना की टेप ! गायक भले मृत्यु पा गया हो, परंतु आप उसका गीत टेप के द्वारा सुन सकते हो ।

* महेसाणामें पढे हुऐ प्रज्ञा चक्षु आणंदजी पंडितजी बुद्धिमान थे । एक बार कंठस्थ किया हुआ कभी भूलते नहीं थे । २०-२५ वर्ष के बाद प्रतिक्रमणमें अजितशांति बोले तब पू. कनकसूरिजी वगैरह स्तब्ध हो गये थे । बुद्धि किसी के बाप की नहीं हैं । वि.सं. २०२० भुजपुर चातुर्मासमें छोटे दो मुनि (पू. कलाप्रभ-कल्पतरु वि.म.) को पढ़ाते हुऐ कहते : कुछ नहीं आता । बिलकुल ठोठ (बुद्धिहीन) ! ढबुके ढ ! ऐसे पंडितजी कच्छ के शोभारूप थे ।

अंधेके पास दीपक व्यर्थ हैं । उसी तरह मिथ्यात्वी के पास भगवान व्यर्थ हैं । दोष दीपक का नहीं, आंख नहीं हैं, उसका हैं ।

दोष भगवान का नहीं, सम्यक्त्व नहीं हैं, उसका हैं ।

मेरी बात आप बहरे हो और सुनाई न दें तो मेरा दोष ?

उल्लू को सूर्य दिखाई न दे उसमें सूर्य का दोष ?

समवसरणमें सभी को बोध नहीं होता । अभी भी नहीं होता । उसमें भगवान का दोष नहीं हैं । भगवान द्वारा भी सभी को बोध नहीं होता हो तो हमारी बात ही क्या ? कोई बोध न पाये तब

यह एंगल सामने रखें : भगवान की वाणी भी कितनेक को पीघला नहीं सकती तो हम कौन ?

हम तो ऐसे साहुकार कि यहां का कुछ मुकाममें ले नहीं जाते । सभी यहीं झाड़ कर रख जाते हैं । खानेपीने का कुछ अटकता नहीं हैं । फिर यह सिरफोड़ी किस लिए ? **'पठितेनाऽपि मर्तव्यम्, अपठितेनाऽपि मर्तव्यम् । किं कण्ठशोषणं कर्तव्यम् ?'** ऐसे जानकर ज्ञान से दूर नहीं भागना हैं, परंतु उसके लिये ज्यादा प्रयत्न करना हैं ।

✱ उपदेशमाला के मंगलाचरणमें ऋषभदेव को सूर्य और महावीरस्वामी को चक्षु कहे हैं । सूर्य आकाशमें हैं, परंतु आंख हमारे पास हैं, साथमें ही रहती हैं । ऐसा कभी बनता हैं कि आंख कहीं रह जाय और आप दूसरे कहीं पहुंच जाओ ? चश्मा रह जाय ऐसा फिर भी बनता हैं । परंतु आंख ? आंख तो चौबीसों घण्टे आपकी सेवामें उपस्थित हैं ।

अकेले सूर्य से नहीं चलता, आंख भी चाहिए । अकेली आंख से भी नहीं चलता, सूर्य भी चाहिए । भगवान हमारे लिए सूर्य ही नहीं बनते, आंख भी बनते हैं । भगवान जगत के चक्षु हो तो हमारे लिए वे चक्षु नहीं हैं ? हम जगतमें आ गये या नहीं ?

चक्षु की तरह भगवान हंमेशा साथीदार बनकर रहते हैं, अगर हम रखें तो ।

सूयगडंग सूत्र की वीर स्तुतिमें, स्मृति दगा न देती हो तो भगवान का यह 'जगच्चक्षु' विशेषण दिया हैं ।

मैं तो यह विशेषण पढकर नाचा हूं ।

✱ भगवान की भक्ति से ही विरति मिलती हैं । आपको चारित्र मिला हैं उसका कारण प्रभु-पूजा हैं । बचपनमें दीक्षा मिली हो तो पूर्व-जन्ममें प्रभु-पूजा-भक्ति बहुत हुई होगी, ऐसा अवश्य मानें ।

'दीक्षा-केवलने अभिलाषे, नित-नित जिन-गुण गावे ।'

देव भी दीक्षा-केवल को पाने की इच्छा से प्रभु-भक्ति करते रहते हैं । ऐसा स्नात्र पूजामें पं. वीरविजयजी फरमाते हैं ।

भगवान का यह विशिष्ट प्रभाव देखकर उसे ग्रहण करने का हमें मन होता हैं ।

✱ सम्यग्दृष्टि को जैसा भाव होता हैं, वैसा मिथ्यादृष्टि को नहीं होता । उसका कारण मिथ्यात्व के पुद्‌गल हैं । उन्हें घटाने का पुरुषार्थ करना हैं । 'सेवं भंते सेवं भंते' भगवती के प्रत्येक शतक के अंतमें आता यह पाठ भीतर सम्यग्दर्शन की सूचना करता हैं ।

भगवान व्यवहार से सभी के प्रदीप बनते हैं, किंतु निश्चय से तो सम्यग्दृष्टि संज्ञी जीवों के ही प्रदीप बनते हैं । भगवान का प्रभाव इससे कम नहीं होता । जीवों की योग्यता ही कम हैं । दुनियामें बहुत अंधे हैं, बहुत से उल्लू हैं, लेकिन उससे कोई सूर्य का प्रभाव घट नहीं जाता ।

भगवान इतने शक्तिशाली होने पर भी धर्मास्तिकाय या अधर्मास्तिकाय को जीव नहीं बना सकते । उससे कोई प्रभु शक्तिहीन नहीं गिने जाते । धर्मास्तिकाय आदिमें ऐसी योग्यता ही नहीं हैं। उसमें प्रभु क्या करेंगे ?

⌘ ⌘ ⌘

'कहे कलापूर्णसूरि' पुस्तक के करीबन ८७५ पेज पढे हैं, किंतु... इसमें से बहुत जानने मिलता हैं, जाने हुए पर श्रद्धा बढती हैं, भक्ति की उमंग जागृत होती हैं । थोड़ा-थोड़ा पढकर उस पर विचार कर, बराबर समझकर, जीवनमें लाने का प्रयत्न करता हूं । आपश्री का खूब-खूब उपकार ।

- रायचंद

बेंगलोर

पू. रत्नसुंदरसूरिजी आदि के साथ, सुरत, वि.सं. २०५५

२-१०-२०००, सोमवार
अश्विन शुक्ला - ५

* ध्यान-विचार :

सुन्न - कल - जोड़ - बिंदू,
नादो तारा लओ लवो मत्ता ।
पय - सिद्धी परमजुया,
झाणाई हुंति चउवीसं ॥

ध्यान विचार किसके आधार पर लिखा गया हैं वह तो आगमधर जाने, परंतु है अद्भुत ! पक्खिसूत्रमें कथित '**झाण विभत्ति**' जैसे किसी ग्रंथमें से उद्धृत हुआ हो, ऐसा लगता हैं ।

खास करके पू.पं. भद्रंकरविजयजी म. की प्रेरणा से ही इस ग्रंथ का अभ्यास प्रारंभ किया था । वह पत्र पुस्तकमें प्रकाशित भी हुआ हैं ।

आगमिक ग्रंथ हमारे पास पड़ा हुआ (पाटण, हेमचन्द्रसूरि - ज्ञानभंडार) होने पर भी हमारी नज़र नहीं गई वह आश्चर्य हैं । सबसे पहले मुनि जंबूविजयजी द्वारा अनूदित होकर तथा धर्मधुरंधरविजयजी द्वारा संपादित होकर मूल पाठ के साथ साहित्य विकास मंडल द्वारा प्रकाशित हुआ था ।

मुझे इस के संबंधमें तीव्र रुचि थी । इसके बाद इनकी (पू.पं.म.) निश्रामें ही रहकर जो लेखन-नोट हुई हैं, वह इस ग्रंथ के रूपमें बाहर पडा हैं । किंतु एक बात कह दूं : मात्र पढने- सुनने से नहीं चलेगा, वह जीवनमें उतारेंगे तभी उसकी झलक देखने मिलेगी।

मूल पाठ बहुत छोटा हैं । यहां बैठे हुए सभी मुनि ज्यादा से ज्यादा सप्ताहमें कण्ठस्थ कर दे इतना छोटा हैं । अर्थात् कण्ठस्थ करना कोई बड़ी बात नहीं हैं, परंतु जीवनमें उतारना बड़ी बात हैं ।

लिखते - लिखते भगवान मानो कृपा करते हो ऐसा मुझे बहुत बार लगा हैं । लिखते समय एक अद्भुत स्तोत्र 'अरिहाण स्तोत्र' (वज्रस्वामी शिष्य भद्रगुप्तसूरि रचित) हाथमें आया ।

प्रारंभमें भले हम जीवनमें उतार न सकें, परंतु हमारे पूर्वाचार्य ध्यान के कितने हिमायती होंगे ? उस तरफ हमारा बहुमानभाव अगर जगे तो भी काम हो जाय । कुल चार लाख से अधिक ध्यान के भेद होंगे । इन सभी ध्यान के भेदोंमें से अरिहंत गुजरे हुए होते हैं ।

आज साधु-साध्वीजी के जीवनमें ध्यान की बहुत ही जरुरत हैं। उपमितिमें कहा : द्वादशांगी का सार क्या ? '**सारोऽत्र ध्यानयोगः ।**' अर्थात् द्वादशांकी का सार सुनिर्मल ध्यान हैं । ऐसा सिद्धर्षिने लिखा हैं । ५५७वीं गाथा, उपमिति सारोद्धार - प्रस्ताव ८ ।

मूल-उत्तरगुण वगैरह सभी बाह्य क्रियाएं हैं, ध्यानयोग को निर्मल बनानेमें सहायक हैं । मुख्य कार्य ध्यान हैं । कर्मक्षय हमारा ध्येय हैं । इस ध्येय से ही ध्यान सिद्ध होता हैं ।

ध्यान की सिद्धि प्राप्त करनी हो तो सब से पहले चित्तकी प्रसन्नता चाहिए । कर्म का संपूर्ण क्षय और आत्मशुद्धि की संपूर्ण अभिव्यक्ति दोनों साथ में ही होते हैं । इसके लिये ध्यान चाहिए । ध्यान के लिये प्रसाद चाहिए । प्रसन्नता के लिये मैत्री आदि भाव चाहिए । पातंजल योगदर्शनमें भी यम-नियम लिये हुये हैं । उसके बाद ध्यान आता हैं । हमने शुक्ल ध्यानमें ही समाधि समाविष्ट की हैं । ध्यान से समाधि अलग नहीं दी हैं ।

इस ग्रंथमें संपूर्ण विश्व के ध्यान के प्रकार आ जाते हैं ।

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : प्रसाद याने ?

पूज्यश्री : प्रसाद याने चित्त की प्रसन्नता ।

चित्त की तीन अवस्थाएं हैं : निर्मलता, स्थिरता और उसके बाद तन्मयता ।

जैनशासनमें प्रथम निर्मलता हैं । इसीलिए ही अहिंसा आदि को इतना महत्त्व दिया गया हैं । इससे निर्मलता मिलती हैं । निर्मलता मतलब प्रसन्नता ।

प्रीति - भक्ति - वचन - असंगमें से कौन से प्रकार का आपका अनुष्ठान हैं, वह भी देखना जरुरी हैं ।

* ध्यान के कुल २४ प्रकार इस गाथामें बताये हैं । ध्यान से धर्मध्यान लेना हैं । धर्मध्यानमें आज्ञाविचय ध्यान सबसे पहले आता हैं ।

प्रभु-आज्ञा के चिंतन से धर्मध्यान का प्रारंभ होता हैं ।

ध्यान विशिष्ट प्रकार का बनता हैं तब परमध्यान बनता हैं, जो शुक्लध्यान के अंशरूप बनता हैं ।

* द्रव्य से आर्त्त-रौद्र, भाव से धर्म, शुक्लध्यान हैं ।

द्रव्य का अर्थ यहां कारण नहीं करना, बाह्य करना हैं । इसीलिए ही प्रथम आर्त्त-रौद्र ध्यान का वर्णन करेंगे । अनादिकाल से इसीमें ही मन डूबा हुआ हैं, उसमें से पहले मुक्त होना हैं ।

* आर्त्त-ध्यान मात्र स्वयं की पीड़ा के विचार से होता हैं । इसकी जगह दूसरों की पीडाका विचार करो तो वह ध्यान धर्म-ध्यान बन जाता हैं ।

* **तत्र ध्यानं चिन्ता-भावनापूर्वकः स्थिरोऽध्यवसायः ।**

* **भगवान के शरणार्थी हम हैं, भगवान को हमने नाथ के रूपमें स्वीकारे हैं तो योग-क्षेम की भगवान की जवाबदारी हैं । हम ध्यान के अधिकारी न बने तो धंधेमें डूबे हुए गृहस्थ अधिकारी बनेंगे ?**

मन को इतना व्यग्र बना देते हैं कि ध्यान की बात से दूर, चिंतन भी कर नहीं सकते । इतनी सारी जवाबदारियां लेकर हम फिरते हैं ।

* यहां व्यक्त रूप से मंगल आदि न होने पर भी अव्यक्त रूप से हैं ही । ध्यान के अधिकारियों का भी निर्देश किया ही हैं । चतुर्विध संघ का योग्य सभ्य ध्यान का अधिकारी हैं ।

तीन चीजों के बिना लड्डु नहीं बनते, उसी प्रकार रत्नत्रयी के बिना ध्यान नहीं मिलता । चिंता में ज्ञान-दर्शन और भावनामें चारित्र आ गये हैं ।

आर्त्त-रौद्र ध्यान भी इसी तरह बनते हैं । सिर्फ वहां मिथ्यादर्शनादि तीन पड़े हुए हैं । अनादि के अभ्यास से वह सहज रूप से हो जाता हैं ।

पहले २४ ध्यान के भेदों को पढकर फिर उस पर विवेचन विचारेंगे ।

✱ द्रव्य से आर्त्त-रौद्र ध्यान हैं । भाव से आज्ञा विचयादि धर्मध्यान कहे जाते हैं । इसीका यहां अधिकार हैं । प्रारंभमें ऐसा (आज्ञा - विचयादि स्वरूप) धर्मध्यान भी आ जाये तो भी काम हो जाये । धर्म-शुक्ल ध्यान न ध्यायें तो अतिचार लगता हैं । जो रोज हम बोलते हैं । हम इससे विपरीत ही करते हैं । निषिद्ध करते हैं, विहित छोड़ते हैं । फिर जीत कैसे मिलेगी ?

इसकी कला जानने से २४ घण्टे चित्त धर्म-ध्यानमें रहता हैं । भावनाओं से भावित बनने से ऐसा हो सकता हैं । धर्म-ध्यानमें से चित्त नीचे आने पर (क्योंकि अंतमुहूर्त से ज्यादा चित्त एक ध्यानमें नहीं रह सकता ।) फिर चिंता-भावना का जोर देना हैं । इस तरह पुनः पुनः दीर्घकाल तक करना हैं ।

एक बार भी ऐसा आस्वाद मिलेगा तो कभी भूल नहीं सकोगे । रसगुल्ले खाने के बाद उसका आस्वाद भूल जाते हैं ? पांचों इन्द्रियों के आस्वादसे हम वंचित होकर, आत्मा के स्वाद से दूर रह जाते हैं ।

आत्मा को तो परमात्मा द्वारा ही आनंद आ सकता हैं, ये ही इसके सजातीय हैं । २४ घण्टे प्रभु-मुद्रा प्रसन्न हैं । इनका नाम लेते, भक्ति करते मन आनंद से भर जाता हैं । इनके नाम-मूर्ति वगैरह के आलंबन से भी ध्यान की भूमिका तैयार हो जाती हैं । ध्यान के पूर्व चित्त को यदि निर्मल न बनायें तो ध्यान का अधिकार मिल नहीं सकता । मन तो ऐसे भी बंदर हैं । उसमें भी मोह का शराब पीया हो फिर पूछना ही क्या ? दौड़ते मनको स्वाध्यायमें भावना (भावना का मतलब अभ्यास होता हैं । अभ्यास याने पुनः पुनः प्रवृत्ति । उदाः ज्ञानाभ्यास, दर्शनाभ्यास वगैरह) में जोड़ना हैं ।

संसार दुःखों का चिंतन भी मनको स्थिर करता हैं । अनंत भवभ्रमण पर का चिंतन भी एक अनुप्रेक्षा हैं ।

* क्षमा आदि चार गुण (जिसे ४ कषाय रोककर रखते हैं ।) उत्तमोत्तम कब होते हैं ? उत्तम क्षान्ति आदि पैदा होते हैं तब शुक्लध्यान का आरंभ होता हैं ।

योग-शास्त्र के ४थे प्रकाशमें मार्गानुसारी, सम्यक्त्व, देशविरति वगैरह बताकर इन्द्रिय-कषाय मन वगैरह के जय पर विशेष जोर दिया हैं ।

वीर्य शक्ति प्रबल उतना ध्यान प्रबल ! वीर्यशक्ति को प्रबल बनाने के लिए ही ज्ञानाचारादि हैं ।

ध्यान के लिए ज्ञान और क्रिया दोनों शक्तियां विकसित करनी चाहिए । एकांगी विकास ध्यान की पृष्ट भूमिका नहीं बन सकता ।

'हेम परीक्षा जिम हुएजी, सहत हुताशन ताप;
ज्ञान दशा तिम परखीएजी, जिहां बहु किरिया व्याप ।'

- उपा. यशोविजयजी ।

सच्चा ध्यान क्रिया को तो छोड़ता नहीं हीं हैं, किंतु उसे विशिष्ट प्रकार की बना देता हैं । सच्चे ध्यानी की सभी क्रियाएं चिन्मयी होती हैं । अर्थात् ध्यान के प्रकाश से आलोकित होती हैं । ये क्रियाएं ध्यान से विपरीत नहीं, पर ध्यान को ज्यादा पुष्ट बनानेवाली बनती हैं ।

अंतमें एक बात कह दूं : खोई हुई आत्मा को ढूंढना हो तो जिन्होंने इस आत्मा को प्राप्त कर लिया हैं ऐसे भगवान की गोदमें बैठ जाओ । भगवान को सर्व प्रथम पकड़ो । इसीलिए ही ध्यानमें सर्वप्रथम आज्ञा विचय ध्यान हैं । प्रभु की आज्ञा आई वहां भगवान आ ही गये । भगवान का ध्यान वह निश्चय से हमारा ही ध्यान हैं ।

**'जेह ध्यान अरिहंत कुं, सो ही आतम ध्यान;
भेद कछु इणमें नहीं, एहिज परम निधान ।'**

ध्यान के बहुत प्रपंचमें जाना नहीं इच्छते हो तो एक मात्र प्रभु को पकड़ लो । सब कुछ पकड़ा जायेगा ।

⌘ ⌘ ⌘

पदवी प्रसंग, सुरत, वि.सं. २०५५

३-१०-२०००, मंगलवार
अश्विन शुक्ला - ६

✱ ध्यानयोग को निकाल दें तो संयम - जीवनमें रहा ही क्या ?

इस ध्यान-विचार ग्रंथ के लिये क्षयोपशम, प्रज्ञा, योग्यता वगैरह चाहिए । वह न हो तो पकड़ नहीं सकते । **ध्यान अनुभूतिजन्य हैं । ध्यान करने से नहीं होता, यह प्रभु-कृपा से आता हैं, ऐसा मैंने मेरे जीवनमें अनुभव किया हैं ।**

संयम, गुरु-भक्ति वगैरह ध्यान की पूर्व भूमिका के मुख्य घटक हैं ।

✱ चिंता, भावना, ज्ञान, सविकल्प और निर्विकल्प ये पांच शब्द यहां मुख्य हैं ।

यहां करण और भवन शब्द आयेंगे । अपूर्वकरण आदिमें करण का अर्थ होता हैं : अपूर्व वीर्योल्लास ! निर्विकल्प समाधि । इसमें वृत्तिओं का संक्षेप होता हैं ।

(१) ध्यान :

जैनदर्शन का ध्यान याने आत्मानुभूति ! उस समय बहुत कर्मों की निर्जरा होती हैं । चित्तमें अत्यंत प्रसन्नता पैदा होती हैं ।

जिन्हें समय मिले वे सभी विवेचन पढ लें । मूल पाठ कण्ठस्थ करेंगे तो यहां की बातें जल्दी समझमें आयेगी ।

✱ ध्यान के वैसे तो चार ही भेद हैं : धर्म, शुक्ल, आर्त्त और रौद्र । आर्त्त-रौद्र से छूटकर धर्म-शुक्लमें प्रवेश करना यही मुख्य बात हैं । आर्त्त-रौद्र ध्यान चित्त को अस्वस्थ बनानेवाले हैं । खास तो इस से छूटना हैं ।

ये २४ प्रकार तो ध्यान के मार्ग के भेद हैं । मतलब मार्ग अलग हैं, पर पहुंचना तो एक ही स्थान पर हैं । इन चौबीसों प्रकारों द्वारा आखिर धर्म-शुक्ल ध्यानमें ही प्रतिष्ठित होना हैं ।

✱ समता से चित्त निर्मल होता हैं तब अंदर रहे हुए प्रभु दिखते हैं । यह समता अनंतानुबंधी आदि कषायों के विगम से आती हैं । ज्यों ज्यों कषायों का ह्रास होता जाये त्यों त्यों अंदर की समता प्रकट होती जाती हैं । गुणस्थानकोंमें आगे बढते जायें त्यों त्यों परमात्मा ज्यादा से ज्यादा शुद्ध रूपमें प्रकट होते जाते हैं ।

✱ दूसरी वाचनाओं की तरह यह सिर्फ सुनने के लिए नहीं हैं, किंतु इसे जीवनमें उतारेंगे तो ही कुछ लागु पड़ेगा ।

✱ वाचना, पृच्छना आदि ४में से पसार होने के बाद ही धर्मकथा आ सकती हैं । पर हमने इसे प्रथम क्रमांक दे दिया हैं । लोगों के द्वारा साधुवाद मिलता हैं न ?

✱ द्वादशांगी का सार ध्यान हैं । हमारे संयम-जीवन का वरराजा ध्यान हैं, किंतु हम इसे भूल गये हैं । बिना दुल्हे की बारात बन गई हैं ।

✱ धर्मध्यान के चार प्रकार : आज्ञा, अपाय, विपाक और संस्थान ।

चलचित्त के तीन प्रकार : चिंता, भावना और अनुप्रेक्षा ।

✱ हमारे पास स्वाध्याय की विपुल सामग्री हैं । यही बड़ा पुण्य हैं ।

द्वादशांगी हमारे पास हैं न ? शायद द्वादशांगी पूरी न हो तो जो हैं वह द्वादशांगी ही हैं । अरे... चार अध्ययन अंतमें बचेंगे वे भी द्वादशांगी ही कहे जायेंगे । कुछ याद न रहे तो नवकारमें

भी द्वादशांगी आ गई । इसीलिए ही २४ ध्यान के भेदोंमें अंतिम चार जितने भेद नवकार को मिलते-जुलते हैं, जो महत्त्वपूर्ण हैं । मैं बादमें बताऊंगा ।

इस ध्यानमें आगम, मूर्ति, संयम या जाप, कुछ भी छोड़ना नहीं हैं । आज्ञा-विचय ध्यानमें यह सब आ ही गया हैं । देहमें फिरते मन को देवमें जोड़ देना, यही ध्यान का काम हैं ।

(२) परम ध्यान :

धर्मध्यान के ११ द्वार बताकर ध्यान शतकमें विस्तार से सब बताया हैं ।

ध्यान से वस्तुतः मन को पकड़ना हैं, परंतु उसके पहले वचन और काया को पकड़ना पड़ेगा । काया और वचनकी स्थिरता के लिए ही पांच समिति हैं । इसलिए ही समिति के सम्यग् अभ्यास के बिना गुप्ति का पालन नहीं हो सकता, मनका निग्रह कर नहीं सकते ।

क्रमशः ही यह ध्यान सूक्ष्म बनता हैं ।

विकल्पात्मक ध्यान सुगम हैं । यह कला सिद्ध हो जाने के बाद ही निर्विकल्पात्मक ध्यानमें जा सकते हैं । सीधे ही निर्विकल्प करने गये तो गड़बड़ हो जायेगी ।

विक्षिप्त, यातायात, सुश्लिष्ट औ सुलीन चार अवस्थाओं में से गुजरा हुआ मन ही निर्विकल्प ध्यान के लिए योग्य बनता हैं ।

इस ध्यान को जीवनभर टिकाकर परलोकमें भी साथमें ले जाना हैं ।

आज की अन्य दर्शनीयों की ध्यान-शिबिरें तंबू जैसी हैं । तंबू जलदी खड़ा हो जाता हैं, पर पवन से उड भी जलदी जाता हैं । परंतु हमारे यहां पूर्वभूमिका का ध्यान पक्का मकान हैं, नींव खोदकर खड़ा किया हुआ हैं । बनाते समय यद्यपि समय लगता हैं, पर झंझावात से यह धराशायी नहीं बनेगा ।

✱ **शुक्लध्यान के ४ लक्षण :** शुक्लध्यान प्राप्त हो गया हो उसे अव्यथा, असंमोह, विवेक और व्युत्सर्ग प्राप्त हो गये होते हैं ।

अव्यथा : देवादि उपसर्गोमें व्यथा नहीं होती ।

असंमोह : सैद्धांतिक पदार्थों से अमूढता ।

विवेक : देह से आत्मा की भिन्नता की समझ ।

व्युत्सर्ग : निःसंदेहपूर्वक देह और उपधि का त्याग ।

शुक्लध्यान का प्रथम भेद 'पृथक्त्व वितर्क सविचार' है, यहां अभी भी विचार हैं ।

योगविंशिकामें उपा.म. लिखते हैं : इस काल में भी शुक्लध्यान के प्रथम भेद की झलक मिल सकती हैं । उस समय लोकोत्तर अमृत का आस्वाद मिलता हैं । आत्मा के आनंद का आस्वाद वही लोकोत्तर अमृत हैं । यहां विषय की विमुखता होती हैं ।

उपा. महाराजने यह प्रवचन-सार के आधार पर लिखा हैं । स्वयं की बुद्धि से नहीं लिखा ।

'जो जाणदि अरिहंतं दव्वत्त-गुणत्त-पज्जवत्तेहिं ।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु तस्स जादि लयं ॥ १/८० ॥

- प्रवचनसार

यहां जितने परमध्यान आयेंगे, वे सब स्व-आत्मद्रव्यमें घटाने हैं ।

'भेद-छेद करी आतमा, अरिहंतरूपी थाय रे ।'

हम जुदाई रखते हैं, भक्त कभी भगवान के साथ जुदाई नहीं रखता । हम सब हमारे पास रखते हैं, भगवान को कुछ सौंपते नहीं हैं । सच्चा भक्त सब कुछ भगवान को सौंप देता हैं ।

'द्रव्यादि चिंताए सार, शुक्लध्याननो लहीए पार;
ते माटे एहि ज आदरो, सद्गुरु बिन मत भूला फिरो ।'

हेमचन्द्रसूरिजी जैसे भी कहते हैं : शुक्लध्यान की हमको पूरी प्रक्रिया नहीं मिली हैं, फिर भी जितना मिला हैं उतना बताते हैं ।

शुक्लध्यान का ध्याता एकदम सत्त्वशाली होता हैं, उसका मन निस्तरंग बना होता हैं ।

(३) शून्य ध्यान :

मनको विकल्पविहीन बनाना वह हैं । शरीर को खुराक न दो तो उपवास होता हैं । मन को विचार न देकर मन का उपवास नहीं करा सकते ?

मन को विचारों से रहित बनाना हैं, उपयोगरहित नहीं ।

पू. हेमचन्द्रसागरसूरिजी : विचार और उपयोगमें क्या अंतर हैं ?

पूज्यश्री : बहुत बड़ा अंतर हैं । विचार याने विकल्प और उपयोग याने जागृति । हमारा उपयोग अन्य विचारों से रहित बने तो ही भगवान उस उपयोग में पधारते हैं ।

भगवान को हम सात राजलोक दूर या महाविदेहमें मानते हैं, अतः दिक्कत खड़ी हुई है । पर भगवान भक्ति को आधीन है। भक्ति का विमान आपके पास है, तो दूर रहे हुए भगवान को भी आप यहां बुला सकते हैं ।

भक्ति के लिए पर की प्रीति को प्रभु की प्रीतिमें ले जाना पड़ेगा । शरीर के नाम-रूप की प्रीति न छूटे तो भगवान की प्रीति कैसे जमेगी ? ऐसा प्रेमी भगवान के नाम को ही सर्वस्व गिनता हैं, अपना नाम प्रभु-नाममें डूबा देता हैं । अपना रूप प्रभु-रूपमें डूबा देता हैं ।

उपयोग भगवान को कब सौंप सकते हैं ? निर्विकल्प बनता हैं तब । हमारे उपयोगमें विकल्प भरे हुए हैं, इसीलिए ही प्रभुको सौंप नहीं सकते । विकल्प जायेंगे, उसके बाद ही प्रभु को सौंप सकेंगे ।

'शब्द अध्यातम अर्थ सुणीने, निर्विकल्प आदरजो रे;
शब्द अध्यातम भजना जाणी, हाण ग्रहण-मति धरजो रे ।'

- पू. आनंदघनजी

शब्द अध्यातम मतलब आगम । आगम का अभ्यास करके मनको निर्विकल्प बनाना हैं और वह प्रभु को सौंपना हैं । बाकी १४ पूर्वी भी विकल्प करके थक जाते हैं, विकल्पों का कहीं अंत नहीं हैं । आखिर निर्विकल्पमें ठहरना ही पड़ेगा। परंतु आप निर्विकल्प शब्द से किसी भी मार्गमें चले न हो जाओ इसीलिए ही बार बार सूचना देता हूं । विकल्प ध्यान को महत्त्व देता हूं ।

विकल्प और उपयोगमें क्या अंतर ? उस विषय पर विशेष अवसर पर ।

⌘ ⌘ ⌘

इंदरचंदजी 'नेताजी' पूज्यश्री के पास, वि.सं. २०५४, राजनांदगांव

४-१०-२०००, बुधवार
अश्विन शुक्ला - ७

✱ द्वादशांगी धारक श्री श्रमण संघका मिलन पूर्व के महापुण्योदय की निशानी हैं ।

पंचसूत्रमें इसके लिए प्रार्थना की हैं : **होउ मे एएहिं संजोगो ।**

प्रभु-शासन को जिसने प्राप्त किया हैं ऐसे का इस कालमें संयोग होना यह भाग्य की पराकाष्ठा मानें ।

प्रभु-मूर्ति मौन भगवान हैं । आगम बोलते भगवान हैं । भगवान इस तरह हमारे पास आकर मानो कह रहे हैं : आप मेरे जैसे बन सकते हो । क्यों नहीं बनते ?

भगवान का विशेषण हैं : **स्वतुल्यपदवीप्रदः ।**

✱ यह ध्यानविचार ग्रंथ सबसे पहले पू.पं.श्री भद्रंकर वि.म. द्वारा मुझे मिला, तब मुझे लगा : साक्षात् भगवान मिले । गौतमस्वामी को भगवान मिले, मुझे ग्रंथ के रूपमें मिले हैं ।

भगवान को हम आधीन बने इतनी ही जरुरत हैं । उसके बाद आपके लिए आवश्यक सूत्र भी ध्यान के लिए उपयोगी बनेंगे ।

इस ध्यानविचार के वृत्तिकार कोई जिनभद्रगणि से भी प्राचीन होने चाहिए, ऐसा इसकी शैली देखकर तज्ज्ञों को मालूम होता हैं ।

गहन ग्रंथ समझने के लिए आज भी मेरी अनुभूति छोटी पड़ती हैं । अतः मैंने भोले भावसे लिखा हैं : किसी को कोई त्रुटि लगे तो बतायें । उसके बाद किसीने बताया नहीं हैं । इसका अर्थ यह हुआ : किसीने गहराइ से अध्ययन शायद नहीं किया हो ।

✱ योगप्रदीपमें निराकार शुक्लध्यान का वर्णन हुआ हैं, जिसके द्वारा सिद्धों के साथ मुलाकात हो सकती हैं । भले श्रेणिगत प्रथम पाया (शुक्लध्यान का) न मिल सके, पर उसका कुछ अंश आज भी सातवें गुणस्थानकमें मिल सकता हैं, ऐसा उपा. यशो. वि.म.ने योगविंशिकामें कहा हैं ।

इस झलक को प्राप्त करने का मन नहीं होता ?
योगप्रदीप की टीप पढ लेना ।
योगप्रदीप के कर्ता का नाम नहीं हैं ।
योगसार के कर्ता का नाम भी कहां मिलता हैं ?

✱ सिद्धाचल पर हम द्रव्यसे जाते हैं । सिद्धाचल में मात्र पर्वत का नहीं, सिद्धों का ध्यान करना हैं । उसके द्वारा आत्मा का ध्यान करना हैं । गिरिराज की महत्ता इस पर सिद्ध हुए अनंत मुनिओं के शुभभाव पड़े हैं उसके कारण हैं । उसके पवित्र परमाणु यहां पर संगृहीत हुए हैं । इसका संस्पर्श करना हैं ।

✱ ग्रंथि का भेद न हों वहां तक सूक्ष्म पदार्थ समझमें नहीं आते । आपको यहां के पदार्थ समझमें नहीं आते हो तो समझें : अब तक ग्रंथि का भेद नहीं हुआ हैं ।

उपयोग रहता हैं, विचार नहीं रहते, ऐसी स्थिति हमें समझमें नहीं आती । क्योंकि वैसी अनुभूति नहीं हैं ।

✱ वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा – ये चार वाणी के प्रकार जानते होंगे । भगवान की वाणी उत्क्रम से आती हैं, परामें से पश्यन्ती होकर वैखरी (मध्यमा की भगवान को जरुरत नहीं हैं ।) के रूपमें बाहर आती हैं ।

✱ सूक्ष्म मन को पकड़ने के लिए सूक्ष्म बोध चाहिए । मन पकड़ा जाय तो सूक्ष्म बोध से पकड़ा जाता हैं ।

मन को वशमें करने के लिए योग का पांचवां अंग (प्रत्याहार)

उपा. महाराजने पकड़ा : '**प्रत्याहृत्येन्द्रियव्यूहं**' यहां प्रत्याहार हैं। क्योंकि योगीओं को यमादि चार अंग सिद्ध ही होते हैं। प्राणायाम अपने आप हो ही जाता हैं, अगर आप व्यवस्थित कायोत्सर्ग करते रहो ।

आर्त्त-रौद्र को हटाने के लिए शुभ-विचारों को प्रवेश करवाइए । शुभ विचार मजबूत हो जाये, उसके बाद उनको दूर करते समय नहीं लगता ।

✱ मध्यमामें विकल्प होते हैं, पश्यन्ती मात्र संवित् रहती हैं । संवित् मतलब उपयोग । उपयोग के दो प्रकार : साकार - निराकार ।

✱ **मेरे पास आनंदघनजी आदि की चोबीशियां हैं, आगम के पाठों का ढेर नहीं हैं । यह मेरी मर्यादा हैं ।**

'निराकार अभेद संग्राहक, भेदग्राहक साकारो रे;
दर्शन ज्ञान दु भेद चेतना, वस्तु-ग्रहण व्यापारो रे ।'

- पू. आनंदघनजी । १२वां स्तवन ।

✱ मतिज्ञानमें मन का प्रयोग हैं, उस प्रकार चक्षु-दर्शन के अलावा अचक्षु-दर्शनमें भी मनका प्रयोग हैं । उस समय (निर्विकल्प दशामें) अचक्षु दर्शन होता हैं । आत्मा उपयोग लक्षण कभी नहीं छोड़ती हैं । अग्नि जलाने का नहीं छोड़ती, उस प्रकार आत्मा उपयोग कभी नहीं छोड़ती । विकल्प तो कार्य-चेतना के हैं, उपयोग ज्ञान-चेतना का हैं ।

'सुख-दुःख रूप कर्म-फल जाणो, निश्चे एक आनंदो रे;
चेतनता परिणाम न चूके, चेतन कहे जिनचंदो रे ।'

- पू. आनंदघनजी । १२वां स्तवन ।

✱ गुण वे ही कहे जाते हैं जो साथमें रहते हैं । जो साथमें रहे उसे हम भूल जाते हैं । और साथमें नहीं रहनेवालों के साथ (दुर्विचारो) मैत्री करते हैं ।

✱ **पूर्यन्ते येन कृपणास्तदुपेक्षैव पूर्णता ।**

कृपण लोग जिससे (भौतिक पदार्थों से) भरे जा सके उसकी उपेक्षा वही पूर्णता हैं ।

यहां आकर अगर ज्ञान, शिष्य, भक्त वगैरह से बड़ाई मानें तो हमारे अंदर और गृहस्थोंमें कोई फर्क नहीं ।

अपेक्षावाला कभी ऐसा ध्यान कर नहीं सकता । ऐसी भक्ति द्रव्य से शून्य बन सकती हैं, भाव से शून्य नहीं बन सकती ।

मंत्रविद् भी मानते है कि परामें से पश्यन्ती आये तब सफलता समझें । इसके पहले आनंद की अनुभूति नहीं होती ।

का अरई ? के अणाणंदे ? साधु को अरति क्या ? अनानंद क्या ?

एरंडी का तेल मल को निकालकर स्वयं निकल जाता हैं, उसी तरह शुभ विकल्प निर्विकल्पमें ले जाकर स्वयं निकल जाता हैं । सीढ़ियों जैसे शुभ विकल्प हैं । जो उपर जाने के लिये सहायक बनते हैं । अंतमुहूर्त वहां रहकर फिर विकल्प के सोपान के सहारे नीचे योगीको आना पड़ता हैं । विकल्प का संपूर्ण त्याग कर नहीं सकते ।

उपयोग आत्मा का स्वभाव हैं । विचार मन का स्वभाव हैं ।

द्रव्य-मन गया, भाव-मन उपयोग के समय रहता हैं ।

द्रव्य मन से विकल्प होते हैं ।

* द्रव्य-शून्य के १२ प्रकार : क्षिप्त, दीप्त, मत्त, राग, स्नेह, अतिभय, अव्यक्त, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला, स्त्यानर्द्धि ।

द्रव्य-शून्य तो तद्दन सरल हैं ।

शराब पीकर भी आप द्रव्य से शून्य बन सकते हो । शराब पीनेमें कौन सा आनंद हैं ? निद्रामें आनंद क्यों आता हैं ? क्योंकि उस समय विचार नहीं होते । **विचार नहीं होते तब मन को आराम मिलता हैं । यह आराम वही आनंद । इसीलिए ही मनुष्य बार बार दारु पीने के लिए ललचाता हैं या नींद करने के लिए ललचाता हैं । आत्म-जागृति आ जाय तो द्रव्यशून्यमें से भावशून्यमें जा सकते हैं, किंतु भावशून्यमें जाना बहुत कठिन हैं । क्योंकि मन दो ही दिशा जानता हैं : या तो विचार करना अथवा जड़तामें - नींदमें सरक जाना । इसलिए ही आप देखते होंगे : विकल्प जाने पर तुरंत ही नींद आती हैं । कभी मैं भी ठगा जाता हूं ।**

क्षिप्त प्रथम और थीणद्धि अंतिम ली हैं । उसमें क्रमशः ज्यादा से ज्यादा जड़ता और ज्यादा से ज्यादा सुषुप्ति रहती हैं ।

विचारों की मार खाकर अर्धमृत हुई आत्मा शून्यमें सरक जाती हैं वह द्रव्यशून्य ।

✱ मनको खींचना नहीं, बालक की तरह समझाना । खींचने से टूट जाता हैं । मन को चिन्मात्रमें विश्रान्ति देनी हैं । विचार हो वहां तक विश्रान्ति नहीं हैं । सच्चा विश्राम आत्मामें हैं । हम काया और वचन को विश्रान्ति देते हैं, मनको नहीं देते । ध्यानमें मनको विश्रान्ति देनी होती हैं । आत्मा के आत्मस्वरूप का निर्णय मात्र संवेदन रहे तब होता हैं ।

यतो वाचो निवर्तन्ते, न यत्र मनसो गतिः ।
शुद्धानुभवसंवेद्यं तद्रूपं परमात्मनः ॥

ऐसा यह प्रभु का स्वरूप हैं ।

मन के चारों प्रकारों (विक्षिप्त आदि)में से पसार होने के बाद ही निर्विकल्प दशा आती हैं ।

विक्षिप्त, यातायात, सुश्लिष्ट और सुलीन - मनकी ये चार अवस्थाएं हैं ।

विक्षिप्त : याने चलचित्त । चंचलता हो वहां तक चिंतन करना, माला गिननी । फिर मन शांत हो तब ध्यान हो सकता हैं ।

मन को शांत बनाने के उपाय भक्ति, मैत्री आदि भावनाएं हैं ।

यातायात : याने स्थिर और अस्थिर ।

यातायात से थक जाने के बाद आज्ञाकारी बनकर मन आपकी बात माने वह सुश्लिष्ट अवस्था ।

सुलीन मन बन जाये तब परम आनंद होता हैं । उसके बाद शून्य बन सकता हैं ।

जैन दृष्टि से ध्यान प्राप्त करने के लिए अपार धैर्य चाहिए । विहित क्रिया छोड़नी तो नहीं ही, प्रस्तुत ज्यादा पुष्ट बनानी । ध्यान से यह सीखना हैं ।

पू.पं. भद्रंकर वि.म. खास करके कायोत्सर्ग की प्रक्रिया बताते, धुरंधर वि. को नवस्मरण गिनने को कहते । कक्षा के अनुरूप वे मार्ग बताते थे । कभी उन्होंने ध्यान की बात नहीं की । मेरे पास भी ध्यान की बात नहीं की । मैंने पूछा भी नहीं ।

आप भूमिका तैयार करो तो ध्यान की मांग पूरी करने, जरूरी वस्तु देने भगवान बंधे हुए हैं । भगवान योग - क्षेमंकर नाथ कहे गये हैं, उसका यही अर्थ होता हैं ।

मुनि धुरंधरविजयजी म. : जरूरी वस्तु कौन सी ? भगवान को लगे वह या हमको लगे वह ?

पूज्यश्री : हम तो अज्ञानी हैं, हमारे लिए हितकारी क्या हैं वह भी हम नहीं जानते हैं । इसलिए ही पंचसूत्रमें कहा हैं : मैं हित-अहित का जानकार बनूं ।

भगवान बहुत कसौटी करते हैं । इस कसौटीमें से पार हो जायें उसके बाद ही भगवान खुश होते हैं ।

दक्षिणमें बिमारी आई तब, मैं गुजरातमें आकर वाचना दूंगा - ऐसा कहां संभवित था ? भगवान को सब करवाना था न ? सब करवानेवाले भगवान बैठे हैं ।

✱ शून्य याने हम समझते हैं वैसा शून्य नहीं, परंतु उपयोग तो होगा ही, संपूर्ण जागृति तो होगी ही । ऐसे तो नींदमें या शराब-पानमें भी शून्यता आती हैं, पर वह द्रव्य शून्यता हैं ।

इस शून्यता की अनुभूति शब्दातीत और मनोतीत हैं । ऐसा वर्णन कर सकते हैं ।

इसका आनंद लूटना हो तो पहले सविचार ध्यान करें । उसके बाद ही निर्विचारमें जाने का विचार करें ।

✱ मन को अत्यंत संक्षिप्त बनाने के पहले त्रिभुवनव्यापी बनाना पड़ता हैं । केवली समुद्घात के ४थे समय का स्वरूप मनको त्रिभुवनव्यापी बनाने में उपयोगी हो सकता हैं । यह अनुभूत प्रक्रिया हैं । सर्वप्रथम यह अनुभव हुआ उस समय मैंने इसे शब्दस्थ भी किया । यह लेख मैंने पू. पंन्यासजी म. पर भेजा था । पश्चात् वह लेख पं. चंद्रशेखर वि. के पुस्तकमें प्रकाशित भी हुआ हैं । वह पढें ।

✱ **प्रश्न :** प्रार्थना और अपेक्षामें क्या अंतर ?

पूज्यश्री : अशुभ भावों को पैदा करे वह अपेक्षा ।

शुभ भावों की वृद्धि करे वह प्रार्थना ।

⌘ ⌘ ⌘

ऊटी में पूज्यश्री, वि.सं. २०५३

५-१०-२०००, गुरुवार
अश्विन शुक्ला - ८

✽ सोपान-पंक्ति उपकारी जरुर हैं, पर वह कोई साथमें लेकर उपर नहीं जा सकते । मन, वचन, काया साधन हैं, आत्मा प्राप्त करने के लिए उनको कोइ साथमें ले जा नहीं सकते । विचारों को भी आत्मघरमें आने की मना हैं ।

✽ इन सबके द्वारा मोह को मारना हैं । मोह को न मारो वहां तक मन थोड़ी देर स्थिर होकर फिर चंचल बनेगा, मोहग्रस्त बनेगा ।

सचमुच, मनको नहीं मारना हैं, मोह को मारना हैं ।

मोह के कारण ही मन चंचल बनता हैं । इसीलिए ही मोह को मारते मन स्थिर बन जाता हैं । कुत्ते की तरह लकड़ी को नहीं मारना हैं, सिंह की तरह लकड़ी से मारनेवाले को मारना हैं । मन को नहीं मारना हैं, किंतु मन को चंचल बनानेवाले मोह को मारना हैं ।

मोह के कारण ही संसार बढा हैं ।

मोह के कारण विकल्प होते हैं । मोह मरते ही विकल्प रवाना होने लगते हैं ।

विकल्प निकल जाये, फिर भी उपयोग तो रहेगा ही ।

विकल्प और उपयोग एक नहीं हैं, इतना याद रखें ।

अध्यवसाय और उपयोग एक ही हैं, यह भी याद रखें ।

(४) परम शून्य ध्यान :

चित्त को त्रिभुवनव्यापी बनाकर उसके बाद एक सूक्ष्म परमाणु पर संकुचित बनाकर वहां से भी हटाकर आत्मामें स्थिर करना हैं ।

वास्तविक यह ध्यान १२वें गुणस्थानकमें आता हैं; जहां मोह का संपूर्ण क्षय हो गया हैं । किंतु यह सामर्थ्य एक ही क्षणमें पैदा नहीं हुआ । इसके पहले कितना ही पुरुषार्थ, अनेक जन्मों से हुआ हैं ।

* बिल्ली को कूदना हो तो पहले संकोच करना पड़ता हैं । उसी तरह मन को सूक्ष्म बनाना हो तो पहले विस्तृत बनाना पड़ता हैं ।

द्रव्य-भाव से संकोच करना वही नमस्कार हैं । वचन-काया का संकोच सरल हैं, मन का संकोच करना कठिन हैं ।

पू.पं. भद्रंकर वि. महाराजने अपनी निर्मल प्रज्ञा और साधना से इन सब पदार्थों को बहुत ही सुंदर ढंग से खोले हैं ।

पू.पं.म. के भाव-संकोच के २-३ उदाहरण देता हूं । द्रव्य से वृद्धि, गुण से एकता, पर्याय से तुल्यता ।

वि.सं. २०२६, नवसारीमें यह बात समझमें न आते पूज्यश्री को पत्र के द्वारा पूछाया था ।

द्रव्य, गुण, पर्याय का स्वरूप पक्का करने के बाद यह समझमें आयेगा ।

गुणपर्यायवद् द्रव्यम् ।
सहभाविनो गुणाः ।
क्रमभाविनः पर्यायाः ।

- तत्वार्थ ।

द्रव्य से वृद्धि : पांच परमेष्ठी द्रव्य से विशुद्ध और निर्मल हैं । तीनों काल के अरिहंत अनंत हैं । अरिहंत के ध्यान से द्रव्य की वृद्धि हुई न ? हमारा आत्मद्रव्य अनंत आत्मद्रव्य के साथ मिल जाते वृद्धि हुई न ? एक दीपक के साथ दूसरे अनेक दीपक मिलते प्रकाश की वृद्धि हुई न ?

(२) गुणों से एकता ।

भगवान के गुण कितने ?

सर्व द्रव्य प्रदेश अनंता, तेहथी गुण पर्यायजी;
तास वर्गथी अनंतगणुं प्रभु-केवलज्ञान कहायजी ।

- पू. देवचंद्रजी ।

हमारे ज्ञेय के पदार्थ प्रभु के ज्ञान के पर्याय हैं । जगत के सर्व पदार्थ नास्तिरूप से हमारे अंदर हैं ।

भगवान के केवलज्ञान की अवगाहना कितनी ?

आवश्यक - निर्युक्ति - टीका में केवलज्ञान की अवगाहना लोकव्यापी बताई हैं । ऐसे चिंतन में पूर्वों के पूर्वों निकल जाते हैं ।

अभी भी केवली समुद्घात करते हैं । अभी भी हमारी आत्मा केवली से संपृक्त होती ही हैं । हर छः महिने केवली सर्व जीवों को मिलने आते हीं हैं । फिर भी हम जगते ही नहीं हैं ।

ऐसा ही मानो कि हर छः महिने विश्व का शुद्धिकरण करने के लिए वे पधारते हैं ।

संख्ययाऽनेकरूपोऽपि गुणतस्त्वेक एव सः ।

- योगसार

भगवान संख्या से अनेक हैं, पर गुण से एक हैं ।

हमारे गुण प्रभुमें मिश्रित हुए वह एकता हो गई ।

पर्याय से तुल्यता : भगवान का और हमारा पर्याय वैसे भिन्न हैं ।

प्रशस्त भाव भक्ति : भगवान अष्टप्रातिहार्य युक्त हैं, ऐसा भाव ।

शुद्ध भाव भक्ति : भगवान क्षायिकभाव युक्त हैं, ऐसा भाव ।

प्रभु भले अनंत हैं । प्रभुता एक हैं । उसमें लीन बनते तुल्यता प्रकट होती हैं ।

शुद्ध स्वभावमें लीन बनी हुई हमारी चेतना परम रसास्वाद प्राप्त करती हैं ।

भगवान भले पूर्ण बन गये, पर स्वयं की पूर्णता हमारे आलंबन के लिए रखकर गये हैं ।

गुण से प्रभु त्रिभुवन व्यापी हैं । गुण की दृष्टि से भगवान सर्वत्र सर्वदा उपस्थित हैं । **केवलज्ञानेन विश्वव्यापकत्वात् ।**

पर्याय का अर्थ यहां कार्यता हैं ।

वृद्धि : दूधमें पानी = पानी की दूध के रूपमें वृद्धि होती हैं, उसी तरह जीवकी प्रभु के रूपमें वृद्धि होती हैं ।

एकता : दूधमें शक्कर = दूध और शक्कर की मधुरता अलग नहीं रहते; उसी तरह जीव और प्रभु अलग नहीं रहते ।

तुल्यता : स्वाद एक समान ।

ऐसी विचारणा से चित्त त्रिभुवन-व्यापी बनता हैं ।

उसके बाद प्रभुमें स्वयं को देखना और स्वयंमें प्रभु को देखना ।

✱ मन हो और विचार न हो तो जी नहीं सकते ? नौकर के बिना सेठ जी नहीं सकते ?

✱ भगवान केवलज्ञान से देखते हैं, हमें श्रुतज्ञान से देखना हैं ।

✱ प्रभु शुद्धरूप से सर्व को देखते हैं । हम दूसरों को दोष नजर से देखते हैं ।

✱ मेरी आत्मा भी अनंत पंच परमेष्ठी जैसी हैं । ऐसे भाव से संकोच होता हैं । अनंत परमेष्ठीओं का संकोच एक स्व आत्मामें हुआ ।

✱ इन्द्रिय और मनकी सीमा हैं । आत्मा असीम हैं ।

✱ दिव्यचक्षु से आत्मा का दर्शन होता हैं । ऐसा होने से समाधि प्रकट होती हैं ।

✱ अंतरात्मामें स्थिरता के लिए बहिरात्मामें से निकलना पड़ता हैं । उसके बाद परमात्म-दशा प्रकट होती हैं ।

(५) कलाध्यान :

अन्यों को इसके लिए हठयोग करना पड़ता हैं ।

जैन मुनि को सहज रूप से कुंडलिनी का उत्थान हो जाता हैं ।

हमें हठयोग नहीं करना हैं, सहजयोगमें जाना हैं । प्राणायाम करने की मना हैं । स्वाध्याय वगैरहमें मन, प्राण आदि की शुद्धि होती ही रहती हैं । अत्यंत ध्यान की सिद्धि होते स्वयमेव कुंडलिनी खुलती हैं । कुंडलिनी अर्थात् ज्ञान-शक्ति ।

यहां आचार्य पुष्पभूति का उदाहरण दिंया हैं ।

ज्ञान-शक्ति का आनंद लूटने आचार्य पुष्पभूति, एक उत्तरसाधक (शिथिल होने पर भी इस विषयमें जानकार) मुनि को बुलाकर

समाधिमें बैठ गये । देखनेवाले को मृतदेह ही लगे । दूसरों को अंदर नहीं जाने देने से अगीतार्थोंने राजा को फ़रियाद की : हमारे आचार्य को इस आगंतुकने मार डाले हैं ।

राजा स्वयं आया । अतः अंगूठा दबाने पर आचार्यश्री समाधिमें से बाहर आये ।

ऐसी भी कलाएं हमारे पास थी ।

एक मुनि राणकपुरमें कुंडलिनी साधना करने गये तो पागल हो गये । इसीलिए आलतु-फालतु बाबाजी को पकड़कर इसमें पड़ना मत ।

इस सब सिरफोड़ीमें पड़ने से अच्छा है कि भगवान को पकड लें । भगवान के मोह का क्षय हो गया हैं । इनका आश्रय लेनेवाले के मोह का क्षय होता ही हैं ।

अक्षय पद दीये प्रेम जे, प्रभुनुं ते अनुभव रूप रे;
अक्षर स्वर गोचर नहीं, ए तो अकल अमाप अरूप रे...
अक्षर थोड़ा गुण घणा, सज्जनना ते न लखाय रे;
वाचक 'जस' कहे प्रेमथी, पण मनमांहे परखाय रे...

- पू. उपा. यशोविजयजी ।

⌘ ⌘ ⌘

'कहे कलापूर्णसूरि' पुस्तक का पठन शुरु किया हैं । बहुत ही आनंद आता हैं । पठन आगे बढता हैं त्यों त्यों प्रसन्नतामें वृद्धि होती हैं । ऐसी अच्छी-उत्तम पुस्तक भेजने के लिए आपके पास मेरा नम्र कृतज्ञता-भाव व्यक्त करता हूं ।

परमात्मा को अक्षर-देह देकर, इन अक्षरों को मोक्ष की पंक्तिमें बिठा दिये हैं ।

- ललितभाई
राजकोट

कोइम्बत्तूर चातुर्मास प्रवेश, वि.सं. २०५२

५-१०-२०००, गुरुवार
अश्विन शुक्ला - ८

दोपहर ४.०० बजे : पू. देवचंद्रजी की चोवीसी

* हरिभद्रसूरिजीने प्रीति भक्ति आदि चार अनुष्ठान बताये हैं । उसका अनुसरण करके देवचंद्रजी आदि महात्माओने चोवीसी का प्रथम स्तवन प्रीति विषयक ही बनाया हैं ।

हम सबकी तरफ से पू. देवचंद्रजी का सवाल हैं : दूर रहे हुए भगवान के साथ प्रीति करनी कैसे ? बातचीत के बिना तो प्रेम हो ही कैसे सकता हैं ?

बातचीत न हो, पत्र न लिख सकें, किसी संदेशवाहक को भेज न सके, ऐसे व्यक्ति के साथ प्रीति हो ही कैसे सकती हैं ?

रागी के साथ रागी की प्रीति लौकिक हैं, परंतु अरागी के साथ प्रीति लोकोत्तर हैं, यही यहां करनी हैं ।

श्रेणिक के खून के एकेक बूंदमें भगवान थे । वीर... वीर... वीर का रटण था । यह लोकोत्तर प्रीति हैं ।

मैत्री आदि चार से द्वेष का जय होता हैं, किंतु राग का जय करना हो तो राग ही चाहिए । कांटे से कांटा निकलता हैं, उसी तरह वीतराग के राग से ही राग को निकाल सकते हैं ।

राग दो प्रकार के हैं : प्रशस्त और अप्रशस्त ।

प्रशस्त राग मुक्ति का मार्ग है ।

सराग संयम से देवगति के आयुष्य का बंध होता हैं ।

काम – स्नेह – दृष्टि राग ये तीन त्याज्य हैं, पर भक्ति राग आदरणीय हैं ।

प्रभु के राग के बिना प्रभु के साथ संबंध नहीं होता ।

मैत्री का दूसरा पर्याय हैं : स्नेह परिणाम ।

मैं तो वहां तक कहूंगा : वीतराग को भी प्रीति होती हैं।

पन्नवणा सूत्रमें गौतमस्वामी के सवाल के जवाबमें भगवानने कहा हैं : **'हंता गोयमा' 'हंत'** संमति सूचक अव्यय हैं ।

संमति सूचक प्रीति भगवान को भी होती हैं ।

सामाचारी प्रकरण (उपा. यशो. वि. का) में आप यह देख सकते हो । इस पाठ को हमने लिखा भी हैं । पर नोट अभी पासमें नहीं हैं ।

प्रीति अनादि से हम करते ही हैं, पर वह विषभरी हैं । विषभरी प्रीति तोड़ने के लिए पर पदार्थों की प्रीति तोड़नी पड़ेगी । जो तोड़ता हैं वही भगवान के साथ प्रीति जोड़ सकता हैं ।

मुनि भाग्येश वि. : पहले जोड़नी या तोड़नी ?

पूज्यश्री : दीक्षा के समय क्या किया ? दोनों साथ ही हुए न ? संसार छूटा और संयम मिला । दोनों साथ हुए । उसी तरह भगवान के साथ प्रीति जुड़ते ही संसार के प्रति निर्वेद जागृत होता हैं । दोनों अन्योन्य अनुस्यूत हैं ।

भगवान की सच्ची भक्ति वही हैं, जहां सांसारिक पदार्थों की आशंसा नहीं हैं । आशंसा हो वहां सच्ची भक्ति ही नहीं होती ।

(प्रभु की तस्वीरों को दिखाकर ।)

मुनि भाग्येश वि. : आपके चारों तरफ भगवान हैं ।

पूज्यश्री : एक यहां (छाती पर हाथ रखकर) भगवान नहीं हैं । यहां नहीं है तो कहीं नहीं हैं ।

मुनि भाग्येश वि. : आपको तो हैं ही, हमारे अंदर नहीं हैं । स्वयं को माध्यम बनाकर हम सबको पूज्यश्री कह रहे हैं ।

✱ प्रेम के बिना कभी तन्मयता आती ही नहीं । एकता राग की उत्कटता ही हैं । प्रीति-भक्ति आदि चारों अनुष्ठानोंमें क्रमशः बढती जाती प्रीति ही हैं । पहले प्रभु नाममें प्रीति थी, फिर मूर्तिमें, आगममें (वचन) प्रीति होती गई ।

सिद्धोंमें भी प्रीति होती हैं, प्रीति की पराकाष्ठा होती हैं ।

सकलसत्त्वहिताशयं चारित्रं सामायिकादिक्रियाऽभिव्यज्यम् ।

सामायिक आदि क्रियाओं से अभिव्यक्त होता चारित्र सकल जीवों पर हितके आशयवाला होता हैं ।

तीर्थंकरमें इसकी पराकाष्ठा होती हैं ।

सकल जीवों के हिताशय की पराकाष्ठा के प्रभाव से ही सकल जीवों के योग-क्षेम करने की ताकत भगवानमें प्रगट होती हैं ।

आपके शिष्य बढते हैं तो आपको आनंद होता हैं न ? आप मानते हैं कि हमारा परिवार बढा । समग्र जीव भगवान का ही परिवार हैं । इसे देखकर भगवान को आनंद नहीं होता ?

✱ भगवान की प्रभुता का आलंबन लेने से 'अविचल सुखवास' मिलता हैं । यह 'अविचल वास' हमारी आत्मामें ही हैं ।

✱ आज्ञा पाले वह भक्त । आज्ञा का उच्छेद करे वह अभक्त । भगवान को स्वयं की आज्ञा का पालन करवाने का या पूजा करवाने का शौक नहीं हैं । पर उनकी आज्ञा सर्व के हित के लिए हैं ।

✱ आत्म-स्वरूपमें स्थिर बनना वह संवर ।

आत्म स्वरूप से च्युत बनना वह आश्रव ।

दूसरा स्तवन :

ज्ञानादिक गुण संपदा रे...

✱ प्रभु के साथ प्रेम जगा हो तो उनका ऐश्वर्य देखकर भक्त को आनंद होता ही हैं । जैसे किसी का अच्छा बंगला देखकर दूसरे को वह प्राप्त करने का मन होता हैं ।

भगवान के ऐश्वर्य की रुचि पैदा हुई अर्थात् मोक्षमार्ग शुरु हुआ । रुचि हो तदनुसार ही हमारा वीर्य चलता हैं । 'रुचि अनुयायी वीर्य ।'

रुचि पैदा हुई हैं, इसलिए ही कहता हूं : हे प्रभु ! दीन दयाल ! आप मुझे तारें ।

✱ प्रभु मोक्ष के पुष्ट निमित्त कारण हैं । उपादान कारण आत्मा हैं । यह सच हैं, पर उपादान कारणमें रही हुई कारणता भगवानरूप निमित्त के बिना प्रकट ही नहीं होती । कुम्हार जमीनमें से खोदकर मिट्टी न निकाले वहां तक मिट्टीमें उपादान कारणता प्रकट नहीं होती ।

एक भी जीव अरिहंत के निमित्त प्राप्त किए बिना मोक्षमें गया नहीं हैं । एक भी घड़ा कुम्हार की मदद के बिना बना हो तो कहना ।

मरुदेवी माता को भी प्रभु का आलंबन मिला ही था ।

⌘ ⌘ ⌘

मैत्री आदि भावना माता स्वरूप हैं

मां को संतान के प्रति वात्सल्य भाव होता हैं, वह मैत्रीभावना । मां को संतान के विवेक आदि गुणों के प्रति प्रमोद भाव होता हैं । मां को संतान के दुःख के प्रति करुणा उत्पन्न होती हैं वह करुणा भावना हैं । संतान यदि स्वच्छंदी बने तो मां माफ कर देती हैं वह माध्यस्थ्य भावना । जगत के सर्व जीवों के प्रति ऐसा भाव बनाना हैं ।

मनफरा - कटारिया संघ, वि.सं. २०५६

६-१०-२०००, शुक्रवार
अश्विन शुक्ला - ९

सुबह ७.१५ से ८.००

ध्यान विचार :

✱ ऐसा कोई काल नहीं हैं जब तीर्थंकर नहीं होते । तीर्थंकर हो वहां चतुर्विध संघ रूप तीर्थ होता ही हैं । तीर्थ हो वहां तीर्थंकर की शक्ति सक्रिय होती ही हैं ।

मोक्ष की इच्छा उत्पन्न करनेवाले भगवान हैं । जन्म से ही स्व को बकरी समझने वाले सिंह का सिंहत्व याद करानेवाला सिंह हैं । मोहराजारूपी चरवाहा हमेशा रखवाली करता हैं : यह जीव कहीं स्वयं के सिंहत्व (प्रभुता) को पहचान न ले ।

✱ अजैन कुंडली-भेद कहते हैं, उसे हम ग्रंथिभेद कहते हैं । ३॥ चक्करवाली कुंडली याने ३॥ कर्म समझें ।

✱ परमात्मा की भक्ति और जीवों की मैत्री दोनों एक साथ ही प्रकट होते हैं ।

✱ ४२ वर्ष पहले (सं. २०१४) सबसे पहले पू.पं. भद्रंकर वि.म. की मुलाकात हुई । उन्होंने मुझे योगबिंदु वगैरह ग्रंथों को पढने की सलाह दी थी ।

ज्ञानी ज्ञानी को मात्र मौन से पहचान लेता हैं ।

उसके बाद साथमें रहना हुआ । २०३१में पू.पं.श्री राता महावीर तीर्थमें मिले । सर्वप्रथम १५ दिन तक मुझे उन्होंने सुना । मुझे खाली किया । फिर साधना का अमृत परोसा । ध्यान-विचार पर लिखने की प्रेरणा उन्होंने ही दी थी । उनकी निश्रामें ही लिखने की शुरुआत की । उस समय '**परस्परोपग्रहो जीवानाम्**' के उपर क्यों नहीं लिखते ? ऐसा उपालंभ भी सुनने को मिला ।

✱ द्रव्य से नाड़ी दबाने से भी समाधि लग जाती हैं । (रामकृष्णने अमुक नस दबाकर विवेकानंद को समाधि दी थी ।) पर यह द्रव्य समाधि समझें, भाव समाधि अलग चीज हैं ।

✱ मन से प्राण भी वशमें होते हैं । उन्मनी भाव प्राप्त किया हुआ मन हो तब प्राण स्वयं शांत बन जाते हैं, ऐसा १२वें प्रकाशमें (योगशास्त्र) लिखा हैं ।

मंत्र से मन वशमें आता हैं । मंत्र वही हैं जिसका मनन करने से आपका रक्षण करे । मन शुद्ध होते आत्मा शुद्ध होती हैं ।

तीनों शुद्ध होते मंत्रदाता गुरु और ध्येय भगवान के साथ संधान होता हैं ।

मंत्रात्मक अक्षरों का ध्यान करने से मन का रक्षण होता हैं ।

✱ चित्त को त्रिभुवनव्यापी बनाने के बाद अत्यंत सूक्ष्म (वालाग्र भाग से भी सूक्ष्म) बनाकर वहां से हटाकर आत्मामें स्थिर करना वह परमशून्य ध्यान हैं ।

✱ मेरा बाहर पड़ा हुआ साहित्य मेरा नहीं हैं, पू.पं. भद्रंकर वि.म. का हैं । मेरा तो प्रकाशन करने का मन ही नहीं था, पर उन्होंने ही प्रकाशित करवा दिया, ऐसा कहूं तो चले ।

एक बार हीराभाईने पूछा : 'अनाहत देव' क्या हैं ?

मैंने उस पर चिंतन करके अनाहत पर लिखा : वह लेख कापरड़ाजी तीर्थ के विशेषांकमें छपा ।

अनाहत देव का पूजन लब्धिपूजन से पहले हैं । जो मंत्र-शक्ति ध्वन्यात्मक बनी वह पूजनीय बनी । अनाहत नाद का अनुभव किया हो ऐसे ही मुनिओं को लब्धि प्रकट होती हैं । अनाहत सेतु हैं, जो अक्षरमें से अनक्षरमें ले जाता हैं ।

* कुंडलिनी साधने की नहीं हैं, मात्र ज्ञातादृष्टाभाव के रूपमें देखनी हैं । प्राण द्वारा ज्ञान शक्ति आती हैं, उपयोग उंचाई पर जाता हैं, जब उर्ध्वगामी बनती हैं, फिर वह चेतना नीचे आती हैं । इस प्रकार आरोहण अवरोहण होता रहता हैं ।

* **चलते समय कभी माईलस्टोन आने पर भी ध्यान न जाये तो कोई मंझिल नहीं आती ऐसा नहीं हैं । इसी तरह हमारी साधना में नाद, बिंदु, कला, वगैरह न दिखे तो चिंता मत करना, प्रभु के पास नाद आदि के बिना भी पहुंच सकते हैं ।**

'जे उपाय बहुविधनी रचना, जोगमाया ते जाणो रे;
शुद्ध द्रव्य गुण पर्याय ध्याने, शिव दीये प्रभु सपराणो रे ।'

– पू. उपा. श्रीयशोविजयजी

(६) परमकला

योगशास्त्र के प्रथम प्रकाशमें आचार, चौथेमें कषाय–इन्द्रिय मनोजय के उपाय, पांचवे प्रकाशमें प्राणायाम, उसके बाद प्राणायाम की निरर्थकता बताकर अन्य ध्यान के उपाय बताये हैं ।

अभ्यास अत्यंत सिद्ध हो जाने के बाद अपने आप ही समाधि जागृत होती हैं ।

१४ पूर्वधरों को जो महाप्राणायाम – ध्यानमें होता हैं वह परमकला हैं । जिसे भद्रबाहुस्वामीने सिद्ध किया था ।

इस कालमें कुंडलिनी के अनुभव चिदानंदजी के पदोंमें देखने को मिलते हैं । उनका एक पद देखें :

**सोहं सोहं सोहं सोहं सोहं सोहं रटना लगीरी;
इंगला पिंगला सुषमना साधके, अरुणपतिथी प्रेम पगीरी...**

अरुणपति = सूर्य । सूर्य अर्थात् शुद्ध आत्मा ।

**वंकनाल षट् चक्र भेद के,
दशम–द्वार शुभ ज्योति जगीरी;
खुलत कपाट घाट निज पायो,
जनम जरा भय भीति भगीरी ।**

बिना अनुभव ऐसा लिखने की इच्छा ही नहीं होती । बिना अनुभव की वाणी देखते ही पता चल जाता हैं । आप सहजता

से बोलते हो या तैयार करके बोलते हो, वह तुरंत ही पता चल जाता हैं । बहुत ऐसे वक्ता देखे हैं : १५ मिनिट होते ही रुक जाते हैं । अंदर की टेप पूरी हो गई न ?

पू. पंन्यासजी महा. पूछते : व्याख्यान के बाद ऐसा होता हैं कि ऐसे बोले होते तो अच्छा ?

'नहींजी । कुछ ऐसा नहीं होता ।'

'कोई पूर्व तैयारी करते हो ?'

'भगवान को समर्पित बनकर बोलता हूं ।'

पू. धुरंधरविजयजी म. : यहां भगवान ही नहीं आते ।

पूज्यश्री : माईक यों ही पड़ा हैं । बोलनेवाला कोई नहीं ।

पू. धुरंधरविजयजी म. : बिजली चली गई हैं ।

देखो, आनंदघनजी कहते हैं :

'तुज-मुज अंतर-अंतर भांजशे, वाजशे मंगल तूर;
जीव सरोवर अतिशय वाधशे रे, आनंदघन रसपूर ।'

पू. धुरंधरविजयजी म. : यहां जीव सरोवर क्यों लिखा ?

पूज्यश्री : सब बताता हूं । पर पहले आप भगवान के साथ संधान करने के लिए तैयार हो तो ।

पू. धुरंधरविजयजी म. : भगवान संधान करेंगे न ?

पूज्यश्री : आपको संधान करना पड़ेगा न ?

पू. पंन्यासजी महाराजने कम प्रयत्न किये हैं ?

✱ 'वाजशे मंगल तूर' यह अनाहत नाद हैं । संगीत साधनों से रहित 'अंदर का संगीत' ।

परमकला अर्थात् अंदर अनेक बाजे बजते हो और उसमें सब पहचान सकते हैं ।

✱ **यह अनाहत, कला, बिंदु, वगैरह भी माईलस्टोन हैं । मंझिल मिल जाने पर तो मात्र दो ही रहते हैं : आत्मा और परमात्मा । सचमुच तो दो भी नहीं रहते, आत्मा और परमात्मा एक ही हो जाते हैं ।**

जीव सरोवर अर्थात् समतामय आत्मा !

✱ पू. पंन्यासजी म. का उपयोग इतना तीक्ष्ण था कि १० मिनिटमें एक हजार लोगस्स गिन सकते थे । एक श्वासमें १०८

नवकार गिन सकते थे । अक्षर कोइ रह न जाय, उपयोग अत्यंत तीक्ष्ण रूप से चलता ।

✱ अब बाकी रहा हुआ चिदानंदजी का पद देखें :

काच शकल तज चिंतामणि लइ,
कुमति कुटिलकुं सहज ठगीरी;
व्यापक सकल स्वरूप लख्यो इम,
जिम न भमे मग लहत खगीरी ।
'चिदानंद' आनंद मूरति निरख,
प्रेमभर बुद्धि थगीरी ।

(७) ज्योति ध्यान

सूर्य-चन्द्र वगैरह द्रव्य ज्योति हैं ।

ध्यानाभ्यास से लीन बने हुए मनवाले को त्रिकाल विषयक ज्ञान वह भाव-ज्योति हैं ।

द्रव्य ज्योति का ध्यान भाव ज्योति के ध्यानमें आलंबनभूत बनता हैं ।

✱ **स्वयं के पास पूंजी न हो तो दूसरों के पास से लोन लेकर आदमी व्यापार करता हैं उसी तरह जहां तक शुद्ध आत्मा प्रकट न हो वहां तक प्रभु - शक्ति प्राप्त करके साधना करनी हैं ।**

आगमेनाऽनुमानेन योगाभ्यासरसेन च ।
त्रिधा प्रल्पयन् प्रज्ञां लभते तत्त्वमुत्तमम् ॥

आगम, अनुमान और योग के अभ्यास का रस - इन तीन उपायों से प्रज्ञा को परिकर्मित बनानी हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

मान सरोवर का हंस गंदे पानीमें मुंह नहीं डालता, वह मोती चुगता है, उसी तरह साधक-ज्ञानी संसार के व्यावहारिक प्रयोजन करने पड़े तो ही करते हैं, परंतु उसे प्राधान्य नहीं देते, परंतु ज्ञानी के मार्ग पर चलते हैं, जिनाज्ञा को अनुसरते हैं ।

ऊटी में पूज्यश्री, वि.सं. २०५३

६-१०-२०००, शुक्रवार
अश्विन शुक्ला - ९

दोपहर ४.०० बजे : पू. देवचंद्रजी की चोबीसी
स्तवन - ३

✱ भगवान मोक्ष के कर्ता नहीं हैं तो भगवान के पास मोक्ष की याचना क्यों ? भगवान भले मोक्ष के कर्ता न हो, परंतु मोक्ष के पुष्ट निमित्त जरुर हैं ।

पू. देवचंद्रजी पुष्ट कारण को ही कर्ता के रूपमें मानकर स्तवन करते हैं । ऐसा उन्होंने ही कहा हैं ।

हम इसे मात्र उपचार से मानते हैं, यही तकलीफ हैं । उपचार नहीं, यही वास्तविकता हैं ।

भूख लगी । हमने भोजन (निमित्त कारण) किया । हम भोजन को भूलकर स्वयं को प्रधानता दे देते हैं, पर सोचो : भोजन नहीं होता तो हम क्या करते ?

प्रभु को संसार का सृष्टि-कर्ता भले हम न मानें, पर हमारे मोक्षकर्ता तो हैं ही । हम भी पहले यह औपचारिक रूप से ही मानते थे । पर पू.पं.म. के संसर्ग से ही इस औपचारिकता की मान्यता पूर्ण रूप से नष्ट हुई ।

✱ हमारी विशुद्धि का प्रकर्ष बढता जाय त्यों त्यों प्रभु ज्यादा से ज्यादा स्पष्ट होते जाते हैं ।

समता बढती जाय वैसे आनंद बढता जाता हैं ।

✱ योगसार में भगवान को '**स्वतुल्यपदवीप्रदः**' कहे हैं । भगवान मोक्ष के दाता औपचारिक होते तो ऐसा विशेषण नहीं होता । इससे भी आगे बढकर नमुत्थुणं की **स्वतुल्यपदवीप्रद** संपदामें भगवान की 'जिणाणं जावयाणं' इत्यादि विशेषणों से स्तुति की हैं, वह भी इसी बात का सूचक हैं : भगवान मात्र जीतनेवाले नहीं, जीतानेवाले भी हैं ।

बुद्ध ही नहीं, बोधक भी हैं ।

मुक्त ही नहीं, मोचक भी हैं ।

✱ सांसारिक सुखोंमें सुखका आरोप करके हम भ्रमणामें पड़े हुए हैं । प्रभु-प्राप्ति से ही यह हमारी भ्रमणा टूटती हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

अपार्थिव आस्वाद

भव्यात्मन् ! भोजन के षड्रस पौद्गलिक पदार्थ जीह्वा के स्पर्श से सुखाभास उत्पन्न करते हैं । कंठ के नीचे चले जाने के बाद उसका आस्वाद चला जाता हैं, जबकि आत्मामें रहा हुआ शांतरस सर्वदा सुख देनेवाला हैं । उसमें पौद्गलिक पदार्थों की जरुरत नहीं होती । वह आत्मामें छुपा हुआ हैं । आत्मा द्वारा ही प्रकट होता हैं ।

ऊटी में पूज्यश्री, वि.सं. २०५३

७-१०-२०००, शनिवार
अश्विन शुक्ला द्वि. - ९

सुबह

ध्यान विचार :

✱ रत्नत्रयी परम ज्योति हैं । पूर्ण रत्नत्रयीवाले पूर्ण ज्योतिर्धर हैं । इसीलिए ही गणधरोंने उनको 'उज्जोअगरे' 'उद्द्योत करनेवाले' कहे हैं । परम ज्योतिवाले भगवानने गणधरों को ज्योति दी । हमारी योग्यता और क्षयोपशम के अनुसार हमको भी ज्योति की प्राप्ति होती हैं ।

यह गंभीर कृति हैं । इसके लिए योग्य बनेंगे तो ही समझेंगे । साधना के बिना यह समझ में नहीं आता ।

धर्मध्यान से ध्यान का प्रारंभ होता है । उसमें भी आज्ञाविचय प्रथम प्रकार हैं ।

इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान की आज्ञा से ही ध्यान का प्रारंभ होता हैं ।

२४ ध्यान के अधिकारी मुख्यरूप से देश-सर्वविरतिधर हैं । इसके अलावा सम्यग्दृष्टि वगैरह में बीजरूप योग हो सकता हैं । हमारा नंबर उसमें लगे ऐसी प्रार्थना करें ।

भगवान की साधना और सद्‌गुणों की याद आये, तो विचार आता हैं । हमारे जीवनमें ऐसा कब आयेगा ?

✱ **'उपेत्य करणं करणं'** जानकर प्रयत्न करना वह करण ।

करणमें पुरुषार्थ मुख्य हैं : इसका उत्कृष्ट उदाहरण तीर्थंकर हैं ।

भवनमें सहजता मुख्य हैं । इसका उत्कृष्ट उदाहरण मरुदेवी हैं ।

सहजतामें भी प्रभु और प्रभु का आलंबन तो हैं ही । पर वीर्योल्लास स्वयं प्रकट होता हैं ।

उस समय विकल्पजन्य ध्यान नहीं होता । मात्र आनंद की अनुभूति होती हैं । उत्कट वीर्योल्लास से आनंद की मात्रा बढी हुई होती हैं ।

धर्म-शुक्ल का प्रथम भेद ध्यान-परम ध्यानमें आ गया हैं । आगे के भेद दूसरे ध्यान के प्रकारोमें आते हैं ।

ये २४ ध्यान क्रमशः नहीं हैं, इसमें से कोई भी ध्यान के भेद से परमात्मा तक पहुंच सकते हैं ।

ज्योतिर्ध्यान के प्रयत्न से परम ज्योति मिलती हैं ।

परम ज्योति ध्यान समझने के लिये परम ज्योति पंचविंशिका ग्रंथ समझने जैसा हैं । जीवन्मुक्त महात्मा को यह होता हैं । वे जीते जी भी इसका अनुभव करते हैं ।

देह होने पर भी देहातीत, मन होने पर भी मनोतीत अवस्था इनकी होती हैं । तीनों योग होने पर भी जीवन्मुक्त तीनों से पर होता हैं । ऐसा योगी ही **'मोक्षोऽस्तु वा माऽस्तु'** ऐसे कह सकता हैं । यह मोक्ष का आनंद यहीं पर प्राप्त कर सकते हैं ।

'मुक्तिथी अधिक तुज भक्ति मुज मन वसी'

ये परमज्योति दशा के उद्‌गार हैं । समाधि अवस्थामें उनको 'मैं प्रभु की गोदमें बैठा हूं ।' ऐसा अनुभव होता हैं ।

इस कालमें ऐसा अनुभव क्यों न प्राप्त करें ? सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना मरना नहीं हैं, इतना तय कर लो ।

इसे प्राप्त करने की रुचि उत्पन्न हो तो भी बड़ी बात हैं । ऐसा जानकर विराधना न करें, यह भी बड़ी सिद्धि होगी ।

'ज्योतिशुं ज्योत मिलत जब ध्यावे,
होवत नहीं तब न्यारा;'

ऐसा ध्यान धरनेवाला भगवान को अलग नहीं गिन सकता ।

'बांधी मूठी खुले भव माया, मिटे महा भ्रम भार ।'

बहिरात्मदशा दूर हुई, अंतरात्मदशा प्राप्त हुई ।

परमात्मदशा प्रकट होने पर बिंदु सिंधुमें मिल जाता हैं । फिर सिंधुमें बिंदु कहां दिखेगा ? फिर 'मैं' मिट जाता हैं । यह तलाश करने से नहीं मिलता । घी ढल गया, पर खीचड़ी में ।

✱ प्रसन्नचन्द्र राजर्षि सूर्य के सामने अपलक नजर से देख रहे थे । यह तारक ध्यान हैं । उगते सूर्य का ध्यान आज भी धर सकते हैं ।

भगवान को गणधरोंने भी द्रव्यज्योति की उपमा दी हैं :

चंदेसु निम्मलयरा ।

यह क्या हैं ? द्रव्य प्रकाश की उपमा के बिना हम कैसे समझ सकें ?

यहां सभी द्रव्य, भावको समझने में सहायक बननेवाले हैं ।

भाव-उद्योत अर्थात् ज्ञान-उद्द्योत । भगवानका उद्द्योत सूर्य जैसा तो हमारा दीपक जैसा, पर हैं तो प्रकाश ही न ? लाख पावर का प्रकाश उनका हैं तो हमारा पांचका पावर हैं ।

हमारी दीपिका (छोटा दीपक) को केवलज्ञानकी महाज्योति के साथ जोड़ दें तो काम हो जाय । क्षयोपशम भाव के गुण क्षायिक गुणोंमें जोड़ दें तो काम हो जाय । सिद्ध हमारे उपर सदा काल के लिए हैं । विहरमान भगवान सदाकाल के लिए हैं । मात्र हमें अनुसंधान करने की जरूरत हैं ।

एक आकाश प्रदेशमें अनंत आत्मप्रदेश होते हैं, ऐसा भगवतीमें अभी आया । इसमें भी ध्यान के रहस्य हैं । सिद्धशिलामें सिद्ध हैं उस तरह समग्र ब्रह्मांडमें भी अनंत जीव हैं । निश्चय से ये जीव भी सिद्ध-समान ही हैं ।

आतम सर्व समान, निधान महासुख कंद,
सिद्धतणा सार्धमिक, सत्ताए गुणवृंद ।

- पू. देवचंद्रजी

अभी ज्ञान हैं, पर संवेदन नहीं हैं ।

अभी ज्ञान लेते हैं वह देने के लिये, स्वयं के लिये नहीं । ऐसा उद्देश होने के कारण ही यह लागु नहीं पड़ता ।

इसलिए ही इन सिद्धांतों को सुनने के अधिकारी सम्यग्दृष्टि हैं । हमारी तकलीफ यह हैं कि सीधे ही सातवें (?) गुणस्थानक पर आ गये हैं । अभिमान का पारा एकदम ऊंचे चढ़ गया है । इसलिए ही साधना मुश्किल बनी हैं ।

समता के बिना कोई ध्यान लागू नहीं पड़ता । सामायिक के लिए चउविसत्थो आदि चाहिए । ऐसी बातें इसलिए करनी पड़ती हैं कि आप यह सब भूल न जायें ।

ज्ञानज्योति बढती हैं वैसे गंभीरता बढती हैं । नहीं तो समझें : अज्ञान ही बढा हैं । जिससे मान बढें उसे ज्ञान कैसे कह सकते हैं ? आत्म-स्वभाव की रमणता न हो या राग-द्वेष की मंदता न हो उसे ज्ञान या दर्शन मानने के लिए यशोविजयजी तैयार नहीं हैं । मात्र वहां जानकारी होती हैं, ज्ञान की भ्रमणा होती हैं, सच्चा ज्ञान नहीं होता ।

आत्मा की अनुभूति होने के बाद कर्म का डर नहीं रहता । सिंहत्व पहचानने के बाद बकरे का या चरवाहे का भय नहीं रहता ।

'गइ दीनता अब सबही हमारी'

- उपा. यशोविजयजी

साध्यालंबी बने बिना आत्मा साधनामें सक्रिय बन नहीं सकती । सम्यग्दर्शन मिल जाने के बाद चेतना आत्मतत्त्व की ओर मुड़ती हैं ।

इन्द्र चन्द्रादिपद रोग जाण्यो,
शुद्ध निज शुद्धता धन पिछाण्यो;
आत्मधन अन्य आपे न चोरे,
कोण जग दीन वळी कोण जोरे ?

- पू. देवचंद्रजी

इन्द्रत्व या चक्रवर्तित्व रोग के अलावा क्या हैं ?

आत्म-धन दिखते ही यह रोग ही लगता हैं । आत्म-धन ऐसा हैं, जिसे कोई लूंट नहीं सकता, जो कभी कम नहीं हो सकता । यह मिलने के बाद दीनता कैसी ?

पू. देवचंद्रजी म. की आत्मानुभूति के बाद आई हुई यह मस्ती हैं । खुमारी हैं । ये शब्द पढ़ते आज भी हृदयमें मस्ती प्रकट हो सकती हैं ।

*** हमारी मंद ज्योति तेजस्वी ज्योति (प्रभु की)में मिलने पर हमारी ज्योति अखूट बन जाती हैं । लोगस्स सूत्र ज्योति का ही सूत्र हैं ।**

ऐसे परम ज्योतिर्धर प्रभु के पास गणधरोंने तीन चीजों की (आरोग्य, बोधि, समाधि) याचना की हैं ।

परम आरोग्य मोक्ष हैं । इसके मुख्य दो कारण बोधि और समाधि हैं । ये तीनों (चीजें) मिलेंगी तो भगवान के प्रभाव से ही मिलेंगी ।

भगवान पर और भगवान की आज्ञा पर बहुमान बढेगा उतने प्रमाणमें विशुद्ध प्रकार की बोधि-समाधि मिलेगी ।

भाव विभोर होकर प्रभु-गुण गाने से कर्म की निर्जरा होते अपूर्व आनंद बढता हैं ।

ऐसे ध्यान के लिए खास पूर्वभूमिका तैयार करनी पड़ेगी ।

लब्धिधर सभी मुनि परमज्योति ध्यान के अभ्यासी होते हैं ।

लब्धि एक शक्ति हैं । इसे प्रकट करनेवाले ऐसे ध्यान हैं ।

यह ज्योति हमारे अंदर भी प्रकट हो इसलिए गणधरोंने लोगस्स के अंतमें कहा हैं :

'चंदेसु निम्मलयरा' (सम्यग्-दर्शन) **'आइच्चेसु अहियं पयासयरा'** (सम्यग्-ज्ञान) **'सागरवरगंभीरा'** (सम्यग्-चारित्र) ।

ऐसे सिद्धों का ध्यान करें तो कुछ उनकी झलक हमारे अंदर भी आयेगी ।

(९) बिन्दु ध्यान :

योगशास्त्र का ८वां प्रकाश

तदेव च क्रमात् सूक्ष्मं ध्यायेत् वालाग्रसन्निभम् ।
क्षणमव्यक्तमीक्षेत, जगज्ज्योतिर्मयं ततः ॥
प्रच्याव्य मानसं लक्ष्यादलक्ष्ये दधतः स्थिरम् ।
ज्योतिरक्षयमत्यक्षमन्तरुन्मीलति क्रमात् ॥

- योगशास्त्र, ८वां प्रकाश

ज्योति का ध्यान धरने से संपूर्ण जगत ज्योतिर्मय लगता हैं। उस समय अक्षय ज्योति प्रकट होती हैं ।

आगे अरिहाण स्तोत्रमें षोडशाक्षरी मंत्र का ध्यान बिंदुपूर्वक का आयेगा । एकेक अक्षर को वहां चमकते देखने हैं ।

द्रव्य से बिंदु : पानी की बुंद ।

भाव से कर्म-बिंदु का झरना ।

मंत्रोंमें बिंदु का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं : 'नमो अरिहंताणं' यहां बिंदु हैं न ?

'ओंकारं बिंदु-संयुक्तं' कुछ लोग 'ओकारं' बोलते हैं, वह गलत हैं ।

'सिढिलीभवंति असुहकम्माणुबंधा' इस ध्यान से कर्म ढीले बनकर झड़ जाते हैं ।

राजस्थानमें शुद्ध घी इतना जम जाता हैं कि हाथ से भी उखड़ता नहीं है । अग्नि का ताप लगते वह ढीला बन जाता हैं, फिर प्रवाही बनता हैं । ध्यान की अग्नि से कर्म भी ढीले होकर झरने लगते हैं ।

कर्म ज्यों ज्यों क्षीण होते जाते हैं त्यों त्यों प्रसन्नता बढती जाती हैं । यही उनकी निशानी हैं । दूसरे किसी को बताने के लिए नहीं, गुप्त रखकर समझना हैं । मंत्र वगैरह जाहिर करने से, उससे होती लब्धि बताने से उसका विकास अटक जाता हैं । उदाः स्थूलभद्र ।

जैनेतरोंमें बिंदुनवक की बात आती हैं, उस विषय पर अवसर पर बात करेंगे । **अजैनोंमें भी जो शुभ हैं वे यहीं से ही उडे हुए बिन्दु हैं, ऐसा समझें ।**

⌘ ⌘ ⌘

ऊटी में पूज्यश्री, वि.सं. २०५३

७-१०-२०००, शनिवार
अश्विन शुक्ला द्वि. - ९

व्याख्यान के समय पृथ्वीराज, मणिबहन, कंचनबहन, कल्पनाबहन, शांताबहन, चारुलताबहन के दीक्षा मुहूर्त के प्रसंग पर पूज्यश्री के द्वारा मुमुक्षुओं को हितशिक्षा ।

चारित्रधर्म दुर्लभ हैं । देशविरति भी दुर्लभ हो वहां सर्वविरति की क्या बात ? गुरु वाणी के श्रवण के बाद विषयों से वैराग्य जगता हैं, हृदय बोलता हैं : संसार छोड़ने जैसा हैं । संयम ही स्वीकारने जैसा हैं ।

ऐसा होने के बाद मुमुक्षु गुरु के पास ज्ञानादि की तालीम लेता हैं और वैराग्य पुष्ट बनाता हैं । क्योंकि वह समझता हैं :

पशु की तरह विषयोंमें ही रक्त बनकर पूरा करने के लिए यह जीवन नहीं हैं । संयम से ही इस मानव जीवन की सफलता हैं । भले यह कठिन हो, किंतु आत्मा के लिए हितकारी हैं ।

दीक्षा लेने के बाद भी योग्यता को विकसित करनी हैं । प्रभु-भक्ति, गुरु-आज्ञापालन, मैत्री आदि भावों के सेवन से योग्यता विकसती हैं ।

आप सब स्वाध्याय, संयम, सेवा, गुरु-भक्ति करें । गुरुभाईओं के साथ स्नेह से वर्तन करें । ऐसा करेंगे तो परलोकमें तो स्वर्ग-अपवर्ग का सुख मिले तब मिले, आपका यही जीवन स्वर्गीय सुख से भी ज्यादा सुख से छलक उठेगा ।

(दीक्षा मुहूर्त : मृगशीर्ष शुक्ल ५,
शुक्रवार, ता. १-१२-२०००)

⌘ ⌘ ⌘

गुरु-कृपा उन पर बरसे

ई.स. १९९९में पूज्यश्री को हैद्राबादमें वंदनार्थ जाना हुआ। वहाँ साधना की बातें हुई, फिर मैंने पूछा कि 'साहेबजी ! अब परदेश नहीं जाना हैं । स्व-आराधना करनी हैं ।'

पूज्यश्री : 'परदेश साधु नहीं जा सकते, आप वहाँ के धर्मजिज्ञासुओं को पोषण दो । यह स्व-पर श्रेय की प्रवृत्ति हैं । तत्त्वज्ञान ले जाओ, वहाँ पूरे प्रेम से दो । कम पड़े तो वापस ले जाना ।' निर्दोष हास्य-भरे ये वचन आशीर्वाद थे ।

मानो पूज्यश्री के शुभाशिष मिले हो वैसे वहाँ के जिज्ञासु व्रत, नियमों का पालन, सामायिक, घरमें ही छोटे मंदिरों को रखकर दर्शन, नवकार मंत्र का जाप करने लगे हैं । व्यसन और अभक्ष्याहार तो उन्हें स्पर्श भी कर नहीं सकता । परंतु वैसे मित्रों को भी वहाँ से पीछेहठ कराने जैसी शक्ति के वे धारक हुए हैं ।

पू. पंन्यासजीश्री भद्रंकरविजयजी का ग्रंथ 'आत्मउत्थाननो पायो'ने प्रायः पांचसौ जितने परिवारमें प्रसार प्राप्त किया हैं । उसके स्वाध्याय की सैंकड़ो कैसेट घर-घरमें गूंज रही हैं । ऐसे हजारों मील दूर श्री महावीर भगवान के सच्चे अनुगामीओं को पूज्यश्री की वात्सल्यनिधि और तत्त्वलब्धि का प्रदान यह महासद्भाग्य हैं । जो उससे वंचित हैं उन पर अनुकंपा करें । गुरुकृपा उम पर बरसे।

– **सुनंदाबहन वोरा**

मनफरा - कटारिया संघ, वि.सं. २०५५

७-१०-२०००, शनिवार
अश्विन शुक्ला द्वि. - ९

दोपहर : पू. देवचंद्रजी चोवीसी
स्तवन दूसरा ।

✱ 'परमात्मा और मैं एक हैं, तो उनका सुख भी मेरे अंदर पड़ा हुआ ही हैं ।' ऐसा साधक को विश्वास उत्पन्न होता हैं । विश्वास उत्पन्न होते ही उस तरफ की रुचि जगती हैं ।

एक शाश्वत नियम हैं : जिस तरफ हमारी रुचि हुई, उस तरफ हमारी ऊर्जा गतिमान होती हैं । ऊर्जा हंमेशा रुचि का अनुसरण करती हैं ।

✱ परकर्तृत्व का अभिमान हमारे अंदर इतना पड़ा हुआ हैं कि हमारी आत्मा इससे भिन्न हैं, वह कभी समझमें ही नहीं आता । भीतर परमात्मा प्रकट होते वह अभिमान मिट जाता हैं । अंदर की रुचि जगते ही हमारे ग्राहकता, स्वामिता, व्यापकता, भोक्तृता, श्रद्धा, भासन, रमणता, दानादि गुण आत्मसत्ता के रसिक बनते हैं । बाहर जाती ऊर्जा केन्द्र की ओर लौटती हैं। बाहर जाती ऊर्जा व्यर्थ जाती हैं । स्वकेन्द्रगामी ऊर्जा शक्तिशाली बनाती हैं ।

✱ इसीलिए ही भगवान निर्यामक हैं, महामाहण हैं, वैद्य हैं, गोप हैं, आधार हैं, सुख सागर को उल्लसित करनेवाले चंद्र हैं, भावधर्म के दाता हैं ।

स्तवन तीसरा

✱ भगवान का स्वरूप कल्पना न कर सकें वैसा हैं इसलिए भगवान अकल हैं । कला रहित भी अकल कहा जाता हैं । संसार की सभी कलाएं भगवानमें अस्त हो गई हैं, डूब गई हैं ।

✱ भगवान जगत के जीवों के सुख के लिए अविसंवादी (अवश्य सत्य बननेवाले) निमित्त हैं । भगवान पर बहुमान जगे तो उनके गुण, उनकी ऋद्धि मिलती ही हैं । बहुमान ही गुणों का द्वार हैं । जो भगवान का बहुमान करता है उसे भगवान मिलते ही हैं ।

✱ **हमारी आत्मा उपादान कारण जरूर हैं । पर पुष्टालंबन तो भगवान ही हैं । किंतु उस उपादान कारणमें कारणता प्रकट करनेवाली भगवान की ही सेवा हैं । जो कारण स्वयं कार्य बन जाये वह उपादान कारण कहा जाता हैं । उदाः मिट्टी स्वयं ही घड़ा बन जाती हैं । इसलिए मिट्टी घड़े के लिए उपादान कारण हैं । जीव स्वयं ही शिव बन जाता हैं, इसलिए जीव उपादान कारण हैं ।**

भगवानमें भी पुष्ट कारणता तब प्रकट होती हैं जब जीवमें उपादान कारणता प्रकट होती हैं । दोनों सापेक्ष हैं ।

अभव्य जीव उपादान कारण जरुर हैं, पर उसमें उपादान कारणता कभी प्रकट नहीं होती । इसलिए ही भगवानमें उसके लिए कभी भी पुष्ट निमित्तता प्रकट नहीं होती ।

⌘ ⌘ ⌘

खीचन प्रतिष्ठा प्रसंग, वि.सं. २०५८

८-१०-२०००, रविवार
अश्विन शुक्ला - १०

✱ ध्यान विचार :

✱ **ध्यान के विभाग अलग-अलग भले हो, पर सबकी मंझिल एक हैं । सबकी नियति अलग अलग होती हैं, इसलिए ध्यान की भी अलग-अलग पद्धतियां अलग-अलग व्यक्तिओं को लागू पड़ती हैं ।**

✱ कम्मपयडि, पंचसंग्रह वगैरह का अभ्यास भी यहां जरूरी हैं । बृहत्संग्रहणी, क्षेत्रसमास वगैरह भी जरूरी हैं । मेरी पहले ऐसी समझ थी कि ध्यानमार्गमें इन सबकी क्या जरूरत ? पर ध्यानविचार पढते समझ आई : ये सब ग्रंथ ध्यान के लिए अत्यंत जरूरी हैं । क्योंकि इस ध्यानमें सभी दृष्टियां होनी जरूरी हैं । सचमुच तो ध्यानमें प्रवेश करने के बाद ही कर्मग्रंथादि के रहस्य समझमें आते हैं ।

कर्मग्रंथ तो पढे पर उसका संबंध ध्यान के साथ क्या हैं ? वह समझना हो तो ध्यान-विचार जरुरी हैं । सब कर्म-भेदों का ज्ञान हमारी वीर्य-शक्ति विकसित करता हैं । और विकसित वीर्य-शक्ति से ध्यानशक्ति उत्पन्न होती हैं ।

नाद, कला, बिंदु आदि द्वारा आत्म-शक्तियां विकसित करनी हैं । इसके द्वारा पहुंचना है आखिर भगवान तक, परम विशुद्ध हुए आत्मा तक ।

इसलिए ही कहता हूं : इस ध्यान-विचार का संबंध सभी आगमों के साथ हैं । गणधर या गणधर के शिष्य नित्य सूत्रों का स्वाध्याय क्यों करते हैं ? क्योंकि उससे ध्यान के गहन रहस्य प्रकट होते रहते हैं । ध्यान के कोष्ठकमें बंद होने के बाद ही अंदर के रहस्य समझमें आते हैं ।

ध्यान-विचार ग्रंथ तो मैंने लिखा, पर उसका प्रयोग कौन कितना करता हैं ? वह अब देखना है ।

(१०) परम बिंदु ध्यान :

बरसों पहले मेरा चिंतन था : गुणस्थानकों में जितने करण (अपूर्वकरण आदि) हैं, वे सब समाधिवाचक हैं । अभी स्पष्ट समझमें आता हैं : सचमुच, ऐसा ही हैं ।

यथाप्रवृत्तिकरण भवचक्रमें हमने अनंतीबार किया हैं । अभव्य भी करते हैं । सभी कर्मप्रकृतियां अंतःकोड़ाकोड़ी की स्थितिमें आ जाये तब यथाप्रवृत्तिकरण होता हैं । अनंत यथाप्रवृत्तिकरण व्यर्थ गये, ऐसा मत मानें, वे भी पूरक हैं ।

किसी भी ध्यान का प्रकार आने के बिना कर्म-निर्जरा नहीं होती । अशुभ कर्म के बंधमें भी ध्यान हैं ही । किंतु वह आर्त्त-रौद्र ध्यान हैं । मोक्षमें प्रथम संघयण जरुरी हैं, उस तरह सातवीं नरकमें भी वह जरुरी हैं । मोक्षमें ध्यान जरुरी हैं, उस तरह सातवीं नरकमें भी ध्यान जरुरी हैं । फर्क मात्र शुक्लध्यान और रौद्रध्यान का हैं । दोनों शुभ-अशुभ ध्यान की पराकाष्ठा हैं । एक मोक्षमें ले जाता हैं, दूसरा सातवीं नरकमें ले जाता हैं ।

कर्मग्रंथ कर्मप्रकृति द्वारा कर्मक्षय बताते हैं । आध्यात्मिक ग्रंथ गुणश्रेणि (गुण-प्राप्ति) बताते हैं । बात दोनों एक ही हैं । कर्मक्षय के बिना गुणप्राप्ति कैसे ?

बिंदु ध्यानमें थोड़े-थोड़े कर्म बिंदु-बिंदु के रूप में झड़ते हैं । परम-बिंदु ध्यानमें बड़े पैमानेमें कर्म झड़ते हैं ।

सम्यक्त्व से लेकर बारहवें गुणस्थानक तक जो गुणश्रेणि प्राप्त होती हैं, वह परमबिंदु ध्यान हैं । उसके बाद तो केवलज्ञान हो जाता हैं । यह ध्यान छद्मस्थों के लिए हैं ।

गुणश्रेणि अर्थात् ? बहुत लंबे काल में जिन कर्म-दलिकों का वेदन करना हो उनका अल्पकालमें वेदन करना उसे गुणश्रेणि कहते हैं । अर्थात् उपरकी स्थिति के कर्म-दलिकों को नीचे के स्थानमें डालना वह गुणश्रेणि ।

*** देव गुरु धर्म के उपर की श्रद्धा वह तो व्यवहार समकित हैं । निश्चय से तो ध्यान दशामें वह प्रकट होता हैं । व्यवहार से समकित गुरु-महाराज द्वारा लोन के रूपमें देने में आया हैं । वह ऐसे भरोसे से कि भविष्यमें वह अपना समकित प्राप्त कर लेगा । लेकिन हम तो 'लोन' को भी खा जाने वाले पैदा हुए ।**

* भगवान की वास्तविक सेवा गुण से होती हैं । प्राथमिक गुण हैं : अभय, अद्वेष और अखेद । ये आने के बाद ही वास्तविक प्रभु-सेवा हो सकती हैं ।

प्रभु को, गुरु को दूर रखकर गुणों को प्राप्त नहीं कर सकते । मात्र ज्ञानसे अभिमान - आवेश बढेगा । बढते हुए अभिमान और आवेश दोषों की वृद्धि के सूचक हैं ।

* प्रभु मिलते ही स्थिरता मिलती हैं ।

प्रभु जाते ही अस्थिरता आती हैं । प्रभु ! आपका मात्र मेरे चित्तमें प्रवेश ही नहीं, प्रतिष्ठा भी होनी चाहिए ।

पू. धुरंधरविजयजी : भगवान रहते तो एतराज क्या था ?

पूज्यश्री : भगवान को एतराज नहीं था । हमें एतराज था । हमें उल्टे-सीधे काम करने थे इसलिए भगवान को जाने दिये ।

भगवान को रखेंगे तो मोक्ष मिलेगा । भगवान को छोड़ेंगे तो निगोद मिलेगी । क्योंकि बीचमें कहीं भी ज्यादा समय रह नहीं सकते ।

* अध्यात्मसारमें प्रथम गुणश्रेणिमें सात प्रकार की अवान्तर गुण श्रेणियों (अध्यात्मिक क्रियारूप) का निम्नलिखित उल्लेख क्रमशः किया हुआ हैं ।

(१) धर्म संबंधी जिज्ञासा : धर्म क्या हैं ? ऐसी बुद्धि । जानने की मात्र इच्छा (यह इच्छा स्व-कल्याण के लिए होनी चाहिए । दूसरों को दिखाने के लिए नहीं, इतना स्पष्टीकरण कर देता हूं ।)

(२) उसका स्वरूप पूछने का मन होता हैं ।

(३) पूछने के लिए सद्गुरु के पास जाने की इच्छा होती हैं ।

(४) औचित्य, विनय और विधिपूर्वक धर्मस्वरूप पूछना ।

(५) धर्म की महिमा जानने के बाद समकित प्राप्त करने की इच्छा ।

(६) समकित के प्रकीटकरण की अपूर्व क्षण ।

(७) समकित प्राप्त करने के बाद उसका उत्तरोत्तर विकास ।

द्वितीय गुणश्रेणिमें अवान्तर तीन गुणश्रेणियां होती हैं ।

(१) देशविरति - धर्म को प्राप्त करने की इच्छा ।

(२) देशविरति - धर्म की प्राप्ति ।

(३) देशविरति - प्राप्ति के बाद की अवस्था ।

इस तरह तृतीय गुणश्रेणिमें भी अवान्तर तीन गुणश्रेणियां होती हैं ।

(१) सर्वविरति धर्म प्राप्त करने की इच्छा,

(२) उसकी प्राप्ति और

(३) तद् अवस्था ।

चतुर्थ गुणश्रेणिमें अवान्तर अवस्थाएं

(१) अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ की विसंयोजना (क्षय) करने की इच्छा ।

(२) उसका क्षय और

(३) क्षय के बाद की अवस्था ।

पांचवी गुणश्रेणिमें अवान्तर - अवान्तर अवस्थाएं

(१) दर्शन मोह-दर्शनत्रिक को क्षय करने की इच्छा

(२) उसका क्षपण और

(३) क्षयके बाद की अवसथा ।

छट्ठी गुणश्रेणिमें मोहनीय कर्म की २१ प्रकृतिओं के उपशमका प्रारंभ होता हैं । उसे 'मोह-उपशामक' अवस्था कहते हैं ।

सातवीं गुणश्रेणिमें उपर के तरह की मोहनीय कर्म की २१ प्रकृतियां उपशांत होती हैं, उसे 'उपशान्त-मोह' अवस्था कहते हैं ।

आठवी गुणश्रेणिमें शेष मोहनीयकर्म की २१ प्रकृतिओं के क्षय का प्रारंभ होता हैं, उसे 'मोह-क्षपक' अवस्था कहते हैं ।

नौंवी गुणश्रेणिमें ये ही शेष मोहनीय कर्म की प्रकृतिओं का अर्थात् मोह का सर्वथा क्षय होता हैं, उसे 'क्षीण-मोह' अवस्था कहते हैं ।

(११) नाद (१२) परमं नाद ध्यान :

खाली पेट हो तब कानमें अंगुली डालने पर जो आवाज सुनाई देती हैं वह द्रव्य-नाद हैं ।

अंगुली के बिना स्वयं विविध वाजिंत्रों की स्पष्ट अलग आवाज सुनाई देती हैं वह परम-नाद हैं ।

संकल्प-विकल्प हो वहां तक नाद सुनाई नहीं देता, मन अत्यंत शांत अवस्थामें हो तब अनाहत नाद सुनाई देता हैं ।

किंतु यह साध्य नहीं हैं, मंझिल नहीं हैं, मात्र माईलस्टोन हैं, यह मत भूलना । यहां अटकना नहीं हैं । **परमात्मदेव को मिले बिना कहीं भी नहीं अटकना हैं । हमारी आत्म-विशुद्धि हुई उसके ये चिन्ह जरुर हैं, आपका मन भगवानमें लीन बन जाने पर इन नादों की आवाजें बंद हो जाती हैं । मंदिरमें घण्टनाद अनाहत का ही प्रतीक हैं । प्रारंभमें घण्टनाद करना, उसके बाद घण्टनाद छोड़कर प्रभुमें डूब जाना ।**

✱ नाद का संबंध प्राण के साथ हैं ।

भगवान बोलते हैं तब परा वाणी से क्रमशः वैखरीमें आते हैं । साधक की साधना वैखरी से परा तक की हैं ।

✱ यह जानने के बाद कोई भी अनुष्ठान या आपकी आराधना न छोड़ें । उसे इन प्रक्रियाओं के द्वारा विशिष्ट बनाने का प्रयत्न करें ।

⌘ ⌘ ⌘

पू. मुनिश्री कंचनविजयजी

८-१०-२०००, रविवार
अश्विन शुक्ला - १०

दोपहर

वर्धमान संस्कृति केन्द्र मुंबई के द्वारा आयोजित प्रभु - जन्म - महोत्सव।

* **पूज्य आचार्यदेव कलापूर्णसूरीश्वरजी महाराज :** कर्म से मुक्ति मिले तो गुण-संपत्ति मिलती हैं । दुनिया बाह्य संपत्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं, पर साधक गुण संपत्ति प्राप्त प्राप्त करने का प्रयत्न करता हैं । उसका उपाय गणधरों को भी भक्तिमें दिखा हैं । वे भी कहते हैं : तित्थयरा मे पसीयंतु ।

ऐसी भक्ति हृदयमें बस जाये तो काम हो जाये । **मुक्ति से भक्ति ज्यादा अच्छी लगी - ऐसा कहनेवाले सचमुच तो भक्ति से ही मुक्ति मिलती हैं, ऐसा कह रहे हैं । तृप्ति महत्त्व की हैं या भोजन ? भोजन मिलेगा तो तृप्ति कहां जायेगी ? मुक्ति का उपाय भक्ति हैं । भक्ति होगी तो मुक्ति कहां जायेगी ?** भक्ति से मुक्ति का सुख यहीं पर अनुभव कर सकते हैं । जिन्होंने यह अनुभव किया हैं उन्होंने अपनी कृतिमें यह दिखाया हैं ।

प्रभु का यह जन्म-महोत्सव भक्ति रूप ही हैं । जब भी भगवान का जन्म होता हैं तब जगतमें प्रकाश-प्रकाश फैल जाता हैं ।

ऐसे भगवान पर भक्ति उमटनी चाहिए । उनकी आज्ञा के

पालन से उत्कृष्ट भक्ति होती हैं । प्रीति और भक्ति के अनुष्ठान से वचन-अनुष्ठानमें आना हैं ।

पूज्य धुरंधरविजयजी म. : पू. कलापूर्णसूरिजीने भक्ति के विषयमें उपा. यशोविजयजी को याद किये, जो महान भक्त थे । पहले महान तार्किक थे । उनके ही उद्‌गारों को पूज्यश्रीने फरमाये । **'सारमेतन्मया लब्धम्'** । प्रभु-भक्ति समस्त श्रुत सागर की अवगाहना का सार हैं । परम-आनंद की संपदा का मूल स्रोत हैं । सर्व प्रवृत्ति का हेतु आनंद ही हैं । आनंद-सागर प्रभु की भक्ति के बिना आनंद नहीं ही मिल सकता । जो जहां होता हैं वहीं से प्राप्त करना पड़ता हैं । संसार से मुक्ति वही आनंद । संसारमें कोई आनंद मिल सकेगा नहीं । सांसारिक पदार्थों से आनंद नहीं मिलता ।

'चित्त प्रसन्ने रे पूजन फल कह्युं'

- आनंदघनजी

अंतमें बिखरनेवाले पदार्थ शोक ही देते हैं । पर इन्हीं पदार्थों को भगवान को समर्पित करो तो आनंद देते हैं । प्रभु-चरणमें समर्पित किये हुए पदार्थों को आनंद देने की फरज पड़ती हैं ।

भगवानने जो आगम दिये, उसमें हम डूबें, यही हमारी भक्ति । आप आपके द्रव्य को भगवान को सौंपो वही आपकी भक्ति । इसके द्वारा ही आनंद मिल सकता हैं ।

जो मिला हैं वह भगवान को सौंपीए । फल-नैवेद्य वगैरह सब कुछ । जिन चीजों को प्राप्त करने के लिए हम परतंत्र हैं वे चीजें भगवान को सौंपे तो उन चीजों के लिए दीन होना नहीं पड़ता । प्रभु जगत के वृक्ष का मूल हैं । इस मूल को अगर सिंचो तो फल प्राप्त किये बिना न रहो । प्रभु को जो कुछ समर्पित करते हो, वे सफल हुए बिना नहीं रहते । भावपूर्वक भक्ति करो तो वे समग्र प्रकृति (पवन, वायु, जल आदि) को बदल देते हैं।

प्रभुमें डूबो । प्रभुमय बनो । प्रभु बनो ।

पूज्य हेमचंद्रसागरसूरिजी : क्या बोलूं ? बोलो ।

कृष्णने बहुत महेनत की, किसी भी तरह दुर्योधन समझ जाय और युद्ध अटके, पर यह नहीं हो सका । 'सुई के नोक जितनी भी जमीन मैं नहीं दूंगा' दुर्योधन के अंतिम जवाब से युद्ध हुआ ही । इस युद्धमें अंध धृतराष्ट्र दूर हैं । संजय को पूछता हैं :

'युधिष्ठिर क्या कर रहा हैं ?'

'शांत हैं ।'

'भीम क्या कर रहा हैं ?'

'गदा साफ कर रहा हैं ।'

'सहदेव-नकुल क्या कर रहे हैं ?'

'नकुल-सहदेव शून्य मनस्क हैं ।'

'अर्जुन क्या कर रहा हैं ?'

'ठंडे पानी से नहा लो । क्योंकि अर्जुन बदल चूका हैं । श्रीकृष्ण और अर्जुन की जुदाइ की दिवाल टूट गई हैं । कृष्ण के स्थान पर ही अर्जुन आ गया हैं ।'

भगवान के साथ जो भक्त अभेद साधे उसे कोई हरा नहीं सकता ।

यहां कोई नाटक नहीं हैं । ध्यान की प्रक्रिया हैं । जन्म-कल्याणक के समय किस तरह ध्यान करना ? उसका यह दृश्य हैं । वस्तुतः हृदयमें प्रभु का जन्म करना हैं । ऐसा हो तो दुनिया की कोई भी शक्ति परास्त नहीं कर सकती ।

प्रभु के साथ सभी अभेद साधो यही अपेक्षा हैं ।

पूज्य कलाप्रभसूरिजी : प्रभु-भक्ति के महोत्सवमें यहां बैठे हुए श्रावकों को सुनने का नहीं, देखने का रस हैं । ऐसी भयंकर गरमीमें भी मंडप के नीचे हजारों की पब्लिक ३-३ घण्टे से भक्ति से खुश हो रही हैं । यह भगवान का पुण्य-प्रकर्ष हैं । हम सबके पीछे भगवान की शक्ति हैं । क्योंकि भगवान अचिंत्य शक्तिशाली हैं । आज इस स्नात्र-महोत्सवमें माता-पिता बनने वाले विजयवाडावाले धर्मीचंदजी परम आनंदमें हैं ।

वे विचार रहे हैं : 'अचानक ही यह ल्हावा मिला हैं । तो मैं आजीवन चतुर्थ व्रत स्वीकार लूं ।'

अभी वे पूज्यश्री के पास आयेंगे और ४थे व्रत का स्वीकार करेंगे ।

(कार्यक्रम के बाद जामनगर से आये हुए डोकटरों की टीम का सन्मान ।)

डोकटरोंने कहा : हम प्रत्येक चातुर्मासमें स्वेच्छा से इस तरह पालीताणा सेवा के लिए आना चाहते हैं ।)

⌘ ⌘ ⌘

तीर्थमाल, शंखेश्वर, वि.सं. २०३८

९-१०-२०००, सोमवार
अश्विन शुक्ला - ११

ध्यान विचार :

✱ रत्नत्रयी के मार्ग पर चलने के लिए अहिंसा, संयम, तप, दान आदि का पालन जरुरी हैं ।

प्रभु के ध्यानमें रत्नत्रयी समायी हुई हैं ।

'ताहरुं ध्यान ते समकितरूप,
तेहिज ज्ञानने चारित्र तेह छे जी ।'

- उपा. यशोविजयजी

ध्याता ध्येय स्वरूप बन जाये तब ज्ञानादिकी एकता हो जाती हैं । वहां तक पहुंचने से पहले विविध ध्यान द्वारा जो अनुभव होते हैं, वे यहां व्यक्त करने में आये हैं ।

✱ सुविकल्प या कुविकल्प दोनों शांत हो जाने के बाद नादका प्रारंभ होता हैं । आलंबन ध्यान छूट गया हैं, अनालंबन बाकी है - उन दोनों के बीच का सेतु नाद हैं ।

जहां तक अक्षर या पदमें ही मन हो वहां तक सविकल्प ध्यान होता हैं । उसके बाद अक्षर-पद छूट जाते मात्र ध्वनि रहने पर नाद प्रकट होता हैं ।

यह नाद मात्र साधक ही सुन सकता हैं, पासमें रहा हुआ दूसरा भी नहीं सुन सकता ।

साधक कोई संगीत सुनने के लिए नहीं निकला हैं, यह तो प्रभु को मिलने निकला हैं । बीचमें होता नाद-श्रवण तो मात्र माईलस्टोन हैं । साधक को वहां रुकना नहीं हैं ।

(१३) तारा, (१४) परमतारा :

मनकी तरह काया और वचन की स्थिरता भी जरुरी हैं । मात्र मानसिक ध्यान नहीं हैं, वाचिक, कायिक, ध्यान भी हैं । '**ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं**' यह पाठ इसी बात का सूचक हैं ।

द्रव्यसे तारा, वर-वधू की आंखों का मिलन (तारा मेलक) वह ।

भाव से कायोत्सर्गमें निश्चल दृष्टि ।

पूर्व के ध्यानोंमें से गुजरे हुए साधक की दृष्टि निश्चल बनी होती हैं ।

कोई भी भगवान छद्मस्थ अवस्थामें कायोत्सर्गमें ही रहते हैं ।

* ध्यान अर्थात् ज्ञान की सूक्ष्मता - तीक्ष्णता हैं ।

अर्थात् चारित्र और ध्यान एक ही हैं ।

'ज्ञानની तीक्ष्णता चरण तेह ।'

पू. धुरंधरविजयजी म. : कायोत्सर्गमें निश्चल दृष्टि कहां ? बाहर या अंदर ?

पूज्यश्री : चैत्यवंदन के समय प्रतिमामें, गुरु सामने हो तब वहां अनिमेष दृष्टि रखनी ।

कायोत्सर्ग जिनमुद्रामें व्यवस्थित होता है तब दृष्टि निश्चल होने पर मनकी निश्चलता आती हैं । **दृष्टि और मन, दोनों की चंचलता और निश्चलता परस्पर सापेक्ष हैं । अर्थात् दृष्टि निश्चल बनती हैं तब मन निश्चल बनता हैं । मन निश्चल बनता हैं तब दृष्टि निश्चल बनती हैं ।**

कायोत्सर्ग का महत्त्व बहुत ही हैं । मात्र १०० कदम आप बाहर गये और आपको कायोत्सर्ग करना अनिवार्य हैं । क्या कारण होगा वहां ?

सकल जीवराशि के साथ हम जुडे हुए हैं । उसमें किसी की भी उपेक्षा नहीं चलती । इसीलिए ही बार बार इरियावहियं द्वारा, सर्व जीवों के साथ प्रेम-संबंध जोड़ना हैं; जो पहले टूट गया था ।

समग्र जीवराशि के साथ क्षमापना हो तो ही मन सच्चे अर्थमें शांत बनता हैं । किसी का भी अपमान करके आप निश्चल ध्यान नहीं कर सकते । सभी जीव भगवान का परिवार हैं । एक भी जीव का अपमान करेंगे तो परमपिता भगवान खुश नहीं होंगे ।

जीवास्तिकाय के रूपमें हम सब एक हैं, एक मानने के बाद जीवों को परिताप उपजायें तो बड़ा दोष हैं । इसीलिए ही इरियावहियं द्वारा इन सबके साथ क्षमापना करनी हैं ।

* कायोत्सर्गका उद्देश क्या ?

पाप कर्मों का क्षय । '**पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए ।**'

* विषय-कषाय की मलिनता दूर किये बिना उज्ज्वलता प्रकट नहीं होती । और वहां तक प्रभु नहीं मिलते ।

पू. धुरंधरविजयजी म. : मलिन आत्मा को नहलाने का काम भगवान का नहीं हैं ?

पूज्यश्री : अब आप बडे हुए । छोटे नहीं हैं । हां, प्रभु आपको गुणरूपी पानी की व्यवस्था कर देंगे ।

'तुम गुण गण गंगाजले, हुं झीलीने निर्मल थाऊं रे ।'

- उपा. **यशोविजयजी**

* गणधरोंने तो मात्र भगवान का कहा हुआ नोट किया हैं । नोट करनेवाले कभी स्वयं का दावा नहीं करते । वे तो मात्र ऐसे ही कहते हैं, 'त्ति बेमि' मैंने जो सुना हैं, वह कहता हूं ।

* गणधर भी छद्मस्थ हो वहां तक प्रतिक्रमण करते हैं ।

* **ताव कायं ठाणेणं** से स्थान, **मोणेणं** से वर्ण, **झाणेणं** से अर्थ - आलंबन - अनालंबन ।

काया से स्थानयोग ।

वचन से वर्णयोग ।

मौन से वर्णयोग । यहां वैखरी वाणी बंध हैं । अंतर्वाणी बंध नहीं है । अंतर्जल्प चालु ही हैं ।

ध्यान से अर्थादि तीनों योग लेने हैं ।

सुदर्शन सेठ सूली पर चढनेवाले हैं, ऐसे समाचार मिलते ही मनोरमाने कायोत्सर्ग किया था ।

यक्षा साध्वीजी को महाविदेहमें निर्विघ्न पहुंचाने के लिए चतुर्विध संघने कायोत्सर्ग किया था ।

आज भी छोटे बालक को भी हम कायोत्सर्ग सीखाते हैं । पू.पं. भद्रंकर वि.म. कायोत्सर्ग पर बहुत जोर देते थे ।

कायोत्सर्ग के रहस्य समझकर उसका प्रचार करने जैसा हैं । परस्पर का इससे संक्लेश दूर होगा, मैत्रीभरा वातावरण जमेगा ।

अध्यात्मयोगमें प्रतिक्रमण, मैत्री आदि भाव हैं ।

कायोत्सर्गमें ध्यान और अनालंबन योग हैं । एक कायोत्सर्गमें ध्यान के सभी भेदों का समावेश हो सकता हैं । एक मात्र भगवानमें आपका मन लगना चाहिए ।

(१५) लय, (१६) परम लय :

द्रव्य से वज्रलेप । पूर्व कालमें वास्तुशास्त्र के अनुसार वज्रलेप तैयार होता था । आज के सिमेन्ट से चढ जाये वैसा वज्रलेप बनता । उससे तैयार होते मंदिर बरसों तक टिक सकते थे ।

भाव से अरिहंतादि चारमें चित्त लगाना ।

भगवान के साथ हमारे चित्तका वज्रलेप हो जाना चाहिए । गुणमें लय प्राप्त किये हुए भगवान हैं । उसमें हमारे मन का लय हो जाये तो काम हो जाये ।

✱ अरिहंत के साथ सिद्ध तो ठीक, परंतु साधु कहां बैठ गये ? साधु अरिहंत के उपासक हैं । साधु-साध्वीजी अरिहंत से अलग हो ही नहीं सकते । हो तो द्रव्य साधुत्व समझें, मात्र आजीविकारूप साधुत्व समझें ।

हमने चार की शरण कहां ली हैं ? मात्र अहं की शरण ली हैं ।

'त्वमेव शरणं मम ।' ऐसा हमारी जीभ बोलती हैं ।

'अहमेव शरणं मम ।' ऐसा हमारा हृदय बोलता हैं ।

मोटाना उत्संगे बेठाने शी चिन्ता ?

– पू. देवचंद्रजी

'जिन तेरे चरण की शरण ग्रहुं,
हृदय कमलमें ध्यान धरत हूं, शिर तुज आण वहुं ।'

हृदयमें भगवान और सिर पर भगवान की आज्ञा हो तो दूसरी किस वस्तु की जरुरत हैं ?

मैं यह बोलता हूं वह मैं करता हूं । करके (जीकर) बोलता हूं । तो ही आपको असर होगा न ?

* काया को तपसे तपाएं नहीं, मात्र मन ही जोड़ने का प्रयत्न करे तो भगवान ऐसे भोले नहीं हैं कि आ जाये ।

* अपनी आत्मामें ही लीन बने हुए आत्मा देखना वह परमलय हैं ।

* अरिहंत की एक ही शरण पकड़ लें तो भी दूसरे तीनों आ जाते हैं । 'सिद्धर्षिसद्धर्ममयस्त्वमेव' भगवान सिद्ध, ऋषि और धर्ममय हैं ।

**पुलीस का अपमान वह सरकार का ही अपमान हैं ।
साधु का अपमान वह भगवान का ही अपमान हैं ।
क्योंकि अपेक्षा से दोनों अभिन्न हैं ।**

⌘ ⌘ ⌘

काल का बम पड़ेगा तब ?

भूतकालमें बाहरी आक्रमण से बचने राजा किल्लों का निर्माण करते थे । अब बम पड़ने लगे तो लोगोंने बंकर बनाये । परंतु जब यह काल का बम पड़ेगा तब किसकी शरण लेंगे ? भौतिक विज्ञान के पास इसका जवाब नहीं हैं । बम पड़ा होता हैं उस धरती को अतिश्रम से कोई पल्लवित करता हैं । घावग्रस्त व्यक्ति की परिचर्या करता हैं, परंतु मृत्यु के पास वह क्या कर सकता हैं ?

धर्म ही मानव को स्वाधीनता और सुख देगा ।

मनफरा - कटारिया संघ, वि.सं. २०५६

१०-१०-२०००, मंगलवार
अश्विन शुक्ला - १२

ध्यान विचार :

✱ परमलय :

परमलयमें आत्मा और परमात्मा दूध और पानी की तरह एक हो जाते हैं ।

दूधमें रहा हुआ पानी स्वयं को दूध के रूपमें देखता हैं, उस तरह प्रभुमें लीन बनी हुई आत्मा स्वको परमात्मरूप देखती हैं ।

जहां तक ऐसा अनुभव न हो वहां तक इसके लिए अभ्यास चालू रखें ।

इसके लिए चारकी शरण स्वीकारें, इसका भी संक्षेप करना हो तो एक अरिहंत को पकड़ लें । यद्यपि, अरिहंत भी एक नहीं हैं, अनंत अरिहंत हैं । सिद्ध और साधु भी अनंत हैं, पर उनका धर्म एक हैं ।

✱ आनंदघनजी जैसे की स्तुति उपा. यशोविजयजी जैसेने की हैं । इनकी चोवीसीमें पूरा साधनाक्रम (मोक्ष तक का मार्ग) प्रभुदास पारेखने घटाया हैं ।

'विमल जिन ! दीठा लोयण आज' सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के समय ये भाव प्रकट हुए हैं ।

दुःख-दौर्भाग्य गये । सुख-संपत्ति मिली, सिर पर मजबूत मालिक हैं । अब अन्यत्र कहां फिरना ?

जिस लक्ष्मीको मैं ढूंढ रहा था वह तो हे प्रभु ! तेरे चरणमें बैठी हुई दिखाई दी । मेरा मन भी तेरे चरणमें गुण-मकरंद का पान करने के लिए लालायित हो रहा हैं ।

* हमारे भाव को भगवान को सौंप देना हैं ।

भगवान को संपूर्ण समर्पण करना, वह प्रीतियोग । पत्नी जैसे पतिको संपूर्ण समर्पित हो जाती हैं । स्वयं के बालक के पीछे नाम भी पति का ही लगाती हैं । भक्त भी स्वयं का नाम भगवानमें डूबा देता हैं ।

प्रभु के गुणोंमें हमारी चेतना का निवेश करना, इसके आनंद का अनुभव करना, वह परमलय हैं ।

दो दिन छुट्टी हैं । ध्यान विचारमें विवेचन पढ जायें । पढ जायेंगे तो पदार्थ खुलेंगे ।

यहां बैठे हुये पंडितों को भी ये सभी पदार्थ ख्यालमें आ जाये तो वे भी इसका खूब ही प्रचार कर सकेंगे । एक पू.पं. भद्रंकर वि. महाराजने नवकार का कितना प्रचार किया ? कितने लोगों को नवकार के प्रेमी बनाये ?

* चार शरणमें नौओं पद समाविष्ट हैं । (१) अरिहंत, (२) सिद्ध, (३) साधु, (४) धर्म ।

साधुमें आचार्य, उपाध्याय, साधु । धर्ममें दर्शन, ज्ञान, चरित्र और तप.

* हिमालय के बड़े-बड़े योगी नवकार को सुनाते हैं तब सानंद आश्चर्य होता हैं । अरिहंत किसी एक के नहीं, समग्र विश्व के हैं ।

(१७) लव, (१८) परम लव :

द्रव्य से लव : औजार वगैरह से घास वगैरह काटना वह द्रव्य लव ।

शुभ ध्यान रूप अनुष्ठानों से कर्मों को काटना वह भाव लव ।

उपशम-क्षपक श्रेणिमें परम लव होता हैं ।

✱ ज्ञानादि तीनों मिले तो ही वास्तविक ध्यान लगता हैं । उसके पहले भावना, चिंता वगैरह होते हैं, पर ध्यान नहीं होता । निर्वात स्थिर दीपक जैसा स्थिर अध्यवसाय ध्यान हैं ।

(१९) मात्रा :

उपकरण आदि की मात्रा वह द्रव्य मात्रा ।

समवसरणस्थ तीर्थंकर की तरह स्व आत्मा को देखना वह भाव मात्रा हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

परमतत्त्व का चिंतन

परमतत्त्व का या परमात्मा का चिंतन शुद्ध भाव का कारण बनता हैं । अग्निमें डाला हुआ सुवर्ण प्रतिक्षण अधिक-अधिक शुद्ध होता जाता हैं, उसी तरह साधक परमात्मा की भक्तिमें उनके गुण-चिंतन की अखंड धारा रखता हैं तो उसकी आत्मा भी ज्यादा से ज्यादा शुद्ध होती जाती हैं । प्रभुभक्ति का यह योगबल सर्वत्र और सर्वदा जयवंत हैं ।

– पू.आ.श्री विजय कलापूर्णसूरिजी

पालिताना सामुदायिक प्रवचन, वि.सं. २०५६

११-१०-२०००, बुधवार
अश्विन शुक्ला - १३

✱ मुनिश्री अमितयशविजयजी के मासक्षमण का पारणा तथा पू. जगवल्लभसूरिजी के निश्रावर्ती धर्मचक्र के तपस्वीओं के अंतिम अट्ठम के पच्चक्खाण ।

पूज्य आचार्यदेवश्री कलापूर्णसूरिजी :

विघ्न टळे तप-गुण थकी,
तपथी जाय विकार;
प्रशंस्यो तप-गुण थकी,
वीरे धन्नो अणगार ।

✱ सिद्धाचल की गोदमें विपुल संख्यामें आराधक आराधना कर रहे हैं ।

सिद्धाचल की यात्रा करनी अर्थात् सिद्धों की यात्रा करनी, ऐसी भावना प्रकट न हो वहां तक बार बार सिद्धाचलकी यात्रा करते रहो ।

यहां मासक्षमण, ५१ उपवास वगैरह अच्छी संख्यामें हुए ।

हमारे मुनिश्री अमितयशविजयजीने अश्विन महिने की ऐसी गरमीमें मासक्षमण पूरा किया हैं । पहले जोग (योगोद्वहन) होने के कारण नहीं कर सके ।

देव और गुरुकी कृपा के बल पर ही ऐसी शक्ति प्रकट होती हैं । दृढ संकल्प से यह मासक्षमण हुआ यह सही, पर दृढ संकल्प के पीछे भी भगवान की शक्ति काम कर रही हैं, ऐसा मानें ।

ऐसे भगवान का संयोग बारबार हो, इस प्रकार भव्यात्मा निरंतर प्रार्थना करता रहता हैं ।

मैं यदि भगवान और भगवान की आज्ञा को नहीं स्वीकारूं तो मेरा जीवन बेकार जाय, ऐसा लगना ही चाहिए ।

भगवान पर बहुमान बढो, भगवान की ऐसी प्रार्थना किसी जन्ममें सफल हो, ऐसी भावना निरंतर भाते रहो ।

भगवान अनेक स्वरूपमें, अनेक नाम से हैं ।

नामादि चार रूप भगवान सर्वत्र, सर्वदा और सर्वमें हैं। ऐसे भगवान मिलने के बाद यत्किंचित् आराधना हो वह जीवन का सार हैं ।

इसके साथ धर्मचक्र के तपस्वीओं (८२ दिन के इस तपमें ४३ उपवास आते हैं ।) का अंतिम अट्ठम हैं ।

ऐसे तपस्वीओं से शासन जयवंत हैं । तप, जप, ध्यान द्वारा भगवान की शक्ति हमारे अंदर काम करती हैं ।

* द्रव्य का संक्रमण नहीं होता, पर भावका होता हैं । एक तपस्वी को देखकर दूसरे को तप करने का भाव होता हैं न ? यह भावका संक्रमण हुआ ।

ऐसे तपस्वीओं को शत-शत धन्यवाद देते हैं, अनुमोदना करते हैं । भगवान महावीरने स्वयं १४ हजारमें धन्ना अणगार की प्रशंसा की थी । श्री जगवल्लभसूरि स्वयं भी तपस्वी हैं । धर्मचक्र तपके आराधक हैं । स्वयं जीवनमें कर के अन्यों के पास करा रहे हैं ।

पूज्य यशोविजयसूरिजी : अनुमोदना का स्वर्णिम अवसर देने बदल मुनिश्री और धर्मचक्र तपस्वीओं के हम ऋणी हैं ।

अनुमोदना पर प्रार्थना का मुलम्मा चढाकर प्रभुको धरें । लंबी तपस्या की ताकत प्रभु ! आपने उन्हें दी तो हमें क्यों नहीं ? इस प्रकार प्रभु के पास मांगो । मांगेंगे तो मिलेगी ही ।

प्रार्थना की शक्ति सर्वत्र स्वीकृत हुई हैं ।

यह शताब्दी प्रार्थनाकी शताब्दी हैं । निःशंक मैं कहता हूं कि यह शताब्दी योग और प्रार्थना की हैं ।

प्रार्थना विषयक कितनी सुंदर पुस्तकें प्रकट हो रही हैं ?

रेट फिलीप द्वारा लिखित प्रार्थना की एक पुस्तक की ५० लाख नकलें बिक गइ हैं ।

प्रार्थना विषयक इस पुस्तक पर लेखक लिखता हैं :

'यह पुस्तक मैंने नहीं, परम चेतनाने मुझसे लिखवाइ हैं । इस्राइल के प्रवासमें रात को प्रकाश भी नहीं मिलता, ऐसा स्थान था, पर भव्यता इतनी कि प्रभु-चेतना नीचे उतर आये, किंतु लिखना कैसे ? दूर-दूर पब्लिक टोयलेट की लाइटमें लिखा ।'

ऐसा वैश्विक प्रार्थना का लय विश्वमें घूम रहा हैं । प्रार्थना के ही उद्गाता पूज्यश्री हमारी समक्ष हैं, यह हमारा सद्भाग्य हैं ।

यह चातुर्मास हमारी नई पेढी के लिए तथा सबके लिए अविस्मरणीय बना रहेगा । क्योंकि यहां एक ही मंच पर सभी विराजमान होते रहे थे ।

पूज्य जगवल्लभसूरिजी :

'करण, करावण ने अनुमोदन, सरिखा फल नीपजाया ।'

पूज्यश्री की निश्रामें पूज्यश्री के शिष्यने भयंकर गरमीमें मासक्षमण की तपश्चर्या की । उसके साथ आज से धर्मचक्र के तपस्वीओं को अंतिम अट्ठम भी हैं ।

साधना हर कोई नहीं कर सकता । पूज्यश्री जैसी भक्ति तो जीवनमें आनी बहुत मुश्किल हैं, किंतु अनुमोदना द्वारा भक्ति का आदर प्राप्त करें । अनुमोदना से ही यह गुण आयेगा ।

प्रार्थनातः इष्टफलसिद्धि ।

- पू. हरिभद्रसूरिजी

जिसकी प्रार्थना करते हैं वह मिलता ही हैं ।

पूज्यश्री देने के लिए ही बैठे हैं ।

मेरे जैसे रांक को लेना नहीं आता । पूज्यश्री के पास भक्ति का अखूट खजाना हैं, पर मैं प्राप्त नहीं कर सक रहा हूं । आ नहीं सक रहा हूं ।

✱ ऐसी गरमीमें मुझे तो अंतिम चार दिन से शाम को

पानी-पानी होता हैं । कहीं मैंढक न बनूं - ऐसा लग रहा हैं । ऐसी भयंकर गरमीमें मुझे पानी की प्यास लगती हैं, अतः पूज्यश्री की वाणी सुनने की इच्छा पूर्ण नहीं कर सकता हूं ।

मेरा सिर लज्जासे झुक जाता हैं : ऐसे मासक्षमण के और धर्मचक्र के तपस्वीओं को देखकर ।

पूज्यश्री के पास करण, करावण और अनुमोदना का ढेर हैं । पू. यशोविजयसूरिजी भी इतने ही साधना-संपन्न हैं ।

पू. अरविंदसूरिजी को लंबी ओली चल रही हैं । जिसका पारणा कार्तिक (राज. मृग.) वदि १ को हैं । आप सब वहां अवश्य पधारेंगे, ऐसी भावना हैं ।

नड़ियाद, निपाणी वगैरह स्थलोंमें नीकले हुए वरघोड़ेमें धर्मचक्रवर्ती भगवान का स्वागत मुसलमानोंने भी किया था । वरघोड़े की यह महिमा हैं । हमें वरघोड़ा देखना नहीं हैं, वरघोड़ेमें आना हैं ।

सुरतमें सिन्धी समाजने वरघोड़े के समय बाजार बंध रखी थी । ऐसे विशिष्ट भाव स्व-हृदयमें भी प्रकट करने हैं । इस वरघोड़ेमें सभी को पूज्यश्री के स्वजन-परिजन बनकर जुड़ना हैं ।

पूज्यश्री के 'आगे **BAND** और पीछे **END**' ऐसा नहीं होना चाहिये । पूज्यश्री के पीछे श्रावक-वर्ग उसके बाद रथ, साध्वीजीयां, श्राविका-वर्ग-इस प्रकार क्रमशः जुड़ेंगे तो शोभा बढेगी ।

पूज्य कलाप्रभसूरिजी : पूज्य गुरुजीने इस प्रसंग पर तपयोग के बारेमें मार्गदर्शन दिया हैं ।

जैनदर्शन का तपयोग कितना प्रभावशाली हैं, वह प्रत्यक्ष देख सकते हैं । विद्युत्-शक्ति से भी उसमें ज्यादा शक्ति हैं । विद्युत्-शक्ति बाहर के सर्व पदार्थों को जला देती हैं, जैन की तप-शक्ति हमारे आत्मप्रदेशोंमें रही हुई कर्म की मलिनता को जला देती हैं ।

जैनशासन का यह तपयोग लोगों को आश्चर्यमें डाल दे ऐसा हैं ।

पू. जगवल्लभसूरिजीने वरघोड़े का वर्णन किया, यह वरघोड़ा धर्म-बीज का अद्भुत अनुष्ठान हैं । वरघोड़े से ही हजारों-लाखों के हृदयमें प्रशंसा का भाव उत्पन्न होता हैं ।

भोजनलंपट जमानेमें तपयोग के प्रति लोगोंमें आदरभाव खड़ा कराना हैं ।

क्रिकेट वगैरहमें कोई भी जीते, पर तपमें तो जैन ही जीतते हैं । लोगों को आश्चर्य होता हैं : जैन लोग यह तप कैसे कर सकते होंगे ?

भगवान महावीरने १२॥ वर्ष के साधना कालमें मात्र ३४९ ही पारणे किये हैं । ऐसे महान आदर्श हमारे सामने हैं । फिर तप कैसे नहीं होता ?

हमारे यहां ऐसी मनोवृत्ति हैं : पर्युषण के बाद तप वगैरह बंध ! पर सिद्धाचल की इस भूमि पर पर्युषण के बाद भी तप चालु रहे हैं ।

हमें तो आशा थी : मुनि अमितयशविजयजी ४५ उपवास करेंगे, किंतु दूसरी बार अवश्य ४५ उपवास करेंगे ।

ऐसी गरमीमें उग्र तपस्या की बहुत अनुमोदना ।

पूज्य धुरंधरविजयजी : सब आचार्य भगवंत इतना सारा बोल गये हैं कि मेरे लिए कुछ बचा ही नहीं । क्या बोलना ?

३-३ महिने से चातुर्मास प्रवेश से एक समान तप की आराधना चालु हैं । मासक्षमणों की लाइन चालु हैं । ३ दिन के बाद फिर एक मासक्षमण का पारणा होगा ।

यह साल तप का हैं । बरसात कम होती हैं, उस साल तप ज्यादा दिखता हैं । मैंने लगभग ऐसा देखा हैं ।

तप की ताकात हैं : बरसात से भी अधिक शीतलता देने की । तप से पुण्य के बादल तैयार होते हैं और वर्षा होती हैं ।

तपते हैं तपस्वी, पर पुण्य बरसता हैं सर्वत्र ।

ये सभी तप करते हैं, इससे बरसता पानी सभी पीते हैं । धरती तपती हैं तो उसमें दरार पड़ती हैं । पानी हो तो दरार नहीं पड़ती । तपागच्छमें दरारें पड़ी हैं । वे दरारें तप से मिट जाये, ऐसी हमारी अपेक्षा हैं ।

पर्युषण के पहले हम मिलते रहे, पर्युषण के बाद भी मिलना होता ही रहा हैं । किसी न किसी निमित्त से ।

पालीताणामें ही नहीं, यह साथ मिलने का कार्य सर्वत्र संघमें छा जायेगा, ऐसी श्रद्धा हैं ।

✱ **मुनि अमितयशविजयजी :** पुण्योदय से मिले जीवन को सफल बनाने के लिए धर्म की ज़रुरत हैं । जिसके जीवनमें अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म हैं उसे देव भी नमते हैं ।

ऐसा धर्म हृदयमें बस जाये तो कल्याण हो जाय ।

तप की अनुमोदना के लिए हम सब एकत्रित हुए हैं । इस साल मैं मासक्षमण करूंगा ऐसा मनमें भी नहीं था, पर प्रभु आदिनाथ दादा, अध्यात्मयोगी पू. गुरुजी तथा पू. कलाप्रभसूरिजी की कृपा काम कर गई । पू. कलाप्रभसूरिजी रोज कहते थे : 'हो जायेगा । हो जायेगा । तूं कर दे ।' इनके इतने प्रेरक वचन मेरा उत्साह बढा देते थे ।

पधारे हुए पूज्य आचार्य भगवंतों का मैं ऋणी हूं ।

आये हुए आप सब कंदमूल, रात्रिभोजन को तिलांजलि देना ।

कम खाना, गम खाना, नम जाना – ये तीन सूत्र याद रखें ।

सभी महात्मा मेरे उपर कृपा-दृष्टि बरसायें, जिससे मैं ज्यादा से ज्यादा तप कर सकूं । वर्धमान तप की १०० ओली जल्दी पूरी करूं – ऐसी पूज्यश्री के पास आशिष मांगता हूं ।

⌘ ⌘ ⌘

आत्म-साधक अल्प होते हैं ।

लोकोत्तरमार्ग की साधना करनेवालोंमें भी मोक्ष की ही अभिलाषावाले अल्पसंख्यक होते हैं । तो फिर लौकिकमार्ग या जहाँ भौतिक सुख की अभिलाषा की मुख्यता हैं, वहाँ मोक्षार्थी अल्प ही होंगे न ? जैसे बड़ी बाज़ारोंमें रत्न के व्यापारी अल्पसंख्यक होते हैं वैसे आत्मसाधक की संख्या भी अल्प होती हैं ।

पदवी प्रसंग, वि.सं. २०५७, मार्ग शु. ५

११-१०-२०००, बुधवार
अश्विन शुक्ला - १३

दोपहर ४.००
पू. देवचंद्रजी - स्तवन
स्तवन - पांचवां

* अभी विशिष्ट ज्ञान लुप्त क्यों हो गया है ? क्योंकि वैसी गभीरता आदि योग्यता लुप्त हो गई हैं । थोड़ा ज्ञान मिलता हैं और हम उतावले हो जाते हैं । यदि अयोग्य अवस्थामें ज्यादा ज्ञान मिले तो हमारी क्या हालत हो ? दूसरों के दोष देखने में, दूसरे की टीका-टिप्पणी करने में ही हमारा समय पूरा हो जाये ।

*** ज्यों ज्यों भक्ति बढती जाती हैं त्यों त्यों साधना की पंक्तियां खुलती जाती हैं, साधना के अनुकूल नये-नये अर्थ निकलते जाते हैं ।**

यह मैं आपको नहीं समझाता, मेरी आत्मा को ही मैं समझाता हूं । इसमें मुझे परेशानी या थकान नहीं लगती । यह तो मेरे जीवन का परम आनंद हैं ।

* आत्मा के असंख्य प्रदेश होने पर भी वे एक साथ एक ही काम कर सकते हैं । एक ही समय थोड़े प्रदेश अमुक

काम करते हो, दूसरे प्रदेश दूसरा काम करते हो, ऐसा कभी हो नहीं सकता ।

इसीलिए ही जब मन भगवानमें जोड़ते हैं तब हमारी समग्र चेतना (असंख्य प्रदेशों सहित) भगवन्मयी बन जाती हैं ।

* बचपनमें मुझे भी ये पंक्तियां (पू. देवचंद्रजी की) समझमें नहीं आती थी, जितनी आज समझमें आती हैं, फिर भी मैं प्रेम से गाता था । अनुभूतिपूर्ण कृतिओं की यही खूबी हैं । आप कुछ न समझो, फिर भी बोलो तो वे आपके हृदय को झंकृत करती हैं, अस्तित्व की गहराइमें उतरती हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

आत्म-शक्ति

एक समर्थ महापुरुषमें जितनी शक्ति प्रकट हुई हैं, उतनी शक्ति सामान्य पुरुषमें भी होती हैं । परंतु उन समर्थ पुरुषोंने भौतिक जगत के प्रलोभनोंमें नष्ट होती शक्तिओं को अटकाकर आत्म-स्फुरणा द्वारा परमतत्त्वमें जोड़कर उन्हें प्रकट की । जब कि सामान्य मनुष्य की शक्तियां जमीनमें बीजारोपण के बाद जलसिंचन या स्वाद नहीं दिये अनंकुरित बीज जैसी हो जाती हैं ।

पंन्यास पद प्रसंग, वि.सं. २०५२, माघ शु. १३

१२-१०-२०००, गुरुवार
अश्विन शुक्ला - १४

दोपहर ४.००

पू. देवचंद्रजी के स्तवन

(सांतलपुर निवासी वारैया वखतचंद मेराज आयोजित
उपधान तप प्रारंभ : ३८० आराधक)

✱ औदारिक शरीर, भाषा और मनोवर्गणा के पुद्‌गलों का ग्रहण वह द्रव्ययोग (काया, वचन और मन) हैं, उसमें आत्मा का वीर्य जुड़े वह भावयोग हैं ।

✱ आत्मा की मुख्य दो शक्तियां हैं : ज्ञप्ति - शक्ति और वीर्य-शक्ति । स्वाध्याय वगैरह से ज्ञप्तिशक्ति, क्रिया वगैरह द्वारा वीर्य-शक्ति बढती हैं । बहुत ऐसे आलसी होते हैं कि शरीर को थोड़ी सी भी तकलीफ नहीं देते और ध्यान की ऊंची-ऊंची बातें करते हैं । सच्चा ध्यान वह कहा जाता हैं, जिसमें उचित क्रिया को धक्का न पहुंचे । प्रत्येक उचित क्रिया परिपूर्ण रूप से जहां होती हो वह सच्चा ध्यानयोग हैं । ध्यानयोग कभी कर्तव्यभ्रष्ट नहीं बनाता । अगर ऐसा होता हो तो समझें : यह ध्यान नहीं, ध्यानाभास हैं । पू.पं. भद्रंकरविजयजी के पास यही

खास शीखने मिला था ।

'उचियपडिवत्तीए सिया' – मैं उचितकार्य करनेवाला बनूं । – यों पंचसूत्रमें प्रार्थना की गई हैं ।

ध्यानमें जाना सरल हैं, पर जीवों के साथ मित्रता निभानी, उनकी सेवा करनी, उचित कर्तव्य करना, बहुत कठिन हैं । यह बात पू.पं. भद्रंकरविजयजी महाराजने बहुत ही घूंट-घूंटकर समझाई थी ।

✱ ग्रहण, परिणमन, अवलंबन और विसर्जन – इन चार के क्रम से भाषा – वर्गणा का उपयोग होता हैं ।

ग्रहण : सबसे पहले भाषा वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करना ।

परिणमन : उन पुद्गलों को उस रूपमें परिणाम प्राप्त कराना ।

उसके बाद अवलंबनपूर्वक छोड़ना । (विसर्जन)

इस क्रम से ही हम बोल सकते हैं । पर यह इतनी झड़प से होता हैं कि हमें पता भी नहीं चलता ।

✱ आत्मा के ज्ञान गुण वगैरह पर जिस तरह आवरण हैं, उसी तरह ग्राहकता, भोक्तृता, कर्तृता वगैरह शक्तिओं पर कोई आवरण नहीं हैं । ये शक्तियां कार्य कर ही रही हैं । मात्र उसकी दिशा उलटी हैं । उलटी दिशामें जानेवाली हमारी शक्तियां हमारा ही विनाश कर रही हैं । अब, प्रभुके आलंबन से इन शक्तिओं को विकास की तरफ घुमानी हैं, केन्द्रगामी बनानी हैं, बहिर्गामी शक्तिओं को अन्तर्गामी बनानी हैं ।

✱ 'मैंने इतने भोग भोगे । इतनी सत्ता प्राप्त की । इतना धन इकट्ठा किया' ऐसा मानकर कोई अभिमान करने की आवश्यकता नहीं हैं । इसमें तूने कौन-सा बड़ा काम किया ? सभी ऐसा ही कर रहे हैं ।

✱ हितशिक्षा के रूपमें ऐसा कह सकते हैं : हम परस्पर सहायता करें तो 'जीव' कहे जायें, सहायता न करें तो 'अजीव' के भाइ कहे जायेंगे ।

परस्परोपग्रहो जीवानाम् सूत्र से यह सीखना हैं ।

जीवास्तिकायमें से एक प्रदेश भी निकाल दें तो वह खंडित हो जाता हैं, जीवास्तिकाय ही नहीं कहा जाता । विचारो ! एक

भी आत्मप्रदेश का मूल्य कितना ? एक आत्मप्रदेशमें अनंत गुण हैं । इसकी उपेक्षा कैसे हो सकती हैं ? इसीलिए ही भगवतीमें गौतमस्वामी को भगवान कह रहे हैं : एक प्रदेश भी कम हो तो जीवास्तिकाय नहीं ही कहा जाता ।

✱ आत्म-रमणता का अर्थ हमें समझमें नहीं आता । क्योंकि भाव से चारित्र अब तक मिला नहीं हैं. आत्म-रमणता का आस्वाद लिया नहीं हैं । आत्म-रमणता के अनुभव के बिना उसका अर्थ समझमें नहीं आता ।

✱ **मन हताश हो तब विचारें : पुद्गलों का चाहे जितना संग किया फिर भी जीव पुद्गल नहीं ही हैं, पुद्गल के आधार पर टिका हुआ भी नहीं हैं, वस्तुतः उसका रंगी (अनुरागी) भी नहीं हैं, पुद्गल का मालिक भी (पुद्गल से शरीर, धन, मकान वगैरह सभी आ गया) नहीं हैं, जीवका ऐश्वर्य पुद्गलाधारित नहीं हैं ।**

इतना ही विचार हमें कितने आनंद से भर देता हैं ? क्या था वह चला गया ? क्या मेरा हैं वह चला जायेगा ? क्यों चिंतातुर बनूं ?

किसी भी प्रकार के संयोगमें ऐसी विचारणा हमारी हताशा को दूर करने के लिए पर्याप्त हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

तत्त्वदृष्टि - व्यवहारदृष्टि

तत्त्वदृष्टि ज्ञानस्वरूप हैं, जिसमें वस्तु का सत्स्वरूप प्रकाशित होता हैं । व्यवहारदृष्टि क्रिया स्वरूप हैं । उन क्रियाओं का मतलब हैं अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का आचरण । इसलिए तत्त्व का लक्ष करना और शक्य का प्रारंभ करना ।

मातुश्री भमीबेन देढिया

१३-१०-२०००, शुक्रवार
अश्विन शुक्ला - १५

ध्यान विचार :

✱ प्रभु-शासन और उसे पहचानने के बहुत साधन हमारे पास हैं । ध्यान-योग की योग्यता विकसित करने के लिए चतुर्विध संघको अनुष्ठान करने की परंपरा पूर्वजोंने टिकाकर रखी वह हमारा पुण्योदय हैं । ये क्रियाएं जीवनमें उतारकर जीवंत रखें ।

ध्यान की तरह आचार पालन की भी आवश्यकता हैं ।

(१६) मात्रा ध्यान :

अपनी आत्मा को तीर्थंकर की तरह समवसरणमें बैठकर देशना देती हो उस तरह इस ध्यानमें देखना हैं ।

योगशास्त्र की रचना हुई तब पू. हेमचंद्रसूरिजी के सामने यह ग्रंथ होगा, ऐसा लगता हैं ।

योगशास्त्र प्रकाश-८ श्लोक । १५-१६-१७ देखिये । आपको ख्याल आयेगा ।

अर्हं की पांचवी प्रक्रियामें यह बात हैं । यह प्रत (ध्यान विचार की) भी पाटणमें से ही मिली हैं । तो हेमचन्द्रसूरिजी ने यह न देखी हो - ऐसा कैसे हो सकता है ?

मन को विश्वव्यापी बनाकर फिर अत्यंत सूक्ष्म बनाकर आत्मामें लीन करना है, पर यह कहने में जितना सरल लगता हैं, उतना करना आसान नहीं हैं ।

*** जिसका ध्यान धरते हैं उस-मय बन जाते हैं । इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हम ही हैं । जड़का (देहका) ध्यान करने से देहमय नहीं बन गये ? अब प्रभुका ध्यान धरेंगे तो प्रभुमय बन नहीं सकेंगे ? पुद्गलमें से प्रेमको खींचकर परमात्मामें प्रेम जोड़ना यही प्रथम कर्तव्य हैं । हमारे प्रेम के बिंदु को प्रभु के प्रेम-सिंधुमें विलीन कर देना हैं ।**

(२०) परम मात्रा ध्यान :

परम मात्रा ध्यानमें २४ वलयों से आत्मा को वेष्टित करनी हैं ।

यह २४ वलयों का ही परिवार हैं ।

पांच वलय तो अक्षर के लिए हैं । माता-पिता उपकारी हैं । इसलिए उनके भी वलय हैं । मां का प्रेम ज्यादा होता हैं, इसलिए माताका वलय सर्वप्रथम हैं । माता में वात्सल्य की पराकाष्ठा होती हैं । माता के प्रति संतान को कितना पूज्यभाव हो ? वह भी सीखना हैं ।

(१) शुभाक्षर वलय : आज्ञा विचयादि धर्मध्यान के भेदों के २३ तथा 'पृथक्त्व वितर्कसविचार' ये १० अक्षर, कुल ३३ अक्षरों का न्यास (स्थापना) करना ।

पहले से ही अनक्षरमें नहीं, अक्षर से ही अनक्षरमें जा सकते हैं । पहले से ही अनक्षर तो एकेन्द्रियमें भी हैं । मनकी शक्ति मिली हैं, वह नष्ट करने के लिए नहीं, लेकिन इसकी शक्तिको इस तरह शुभमें लाकर शुद्धमें स्थापित करनी हैं ।

(२) अनक्षर वलय :

'ऊससियं निस्ससिअं, निच्छूढं खासिअं च छीअं च ।
निस्सिंघिअमणुसारं, अणक्खरं छेलिआईअं ॥'

- आवश्यक निर्युक्ति गा. २०

इन ३५ अक्षरों की स्थापना करें ।

इशारे इत्यादि करना वह भी अनक्षर होने पर भी श्रुत ही हैं ।

अनाहत की ध्वनि में भी कहां अक्षर होते हैं ?

(३) परमाक्षर वलय : अँ, अर्हं, अँ रिँ हँ तँ सिँ द्धँ आँ यँ रिँ यँ उँ वँ ज्झाँ यँ साँ हूँ नमः ॥

ये २१ अक्षर हैं । नवकार का अर्क यहां हैं ।

इसमें बहुत से मंत्राक्षर हैं । देखिये योगशास्त्र का ८वाँ प्रकाश । उसमें बहुत से मंत्राक्षर मिलेंगे ।

(४) अक्षर वलय : 'अ' से लेकर 'ह' तक के बावन अक्षर ।

(य् ल् व् ईषत् स्पृष्टतर लेने)

(५) निरक्षर वलय : ध्यान - परमध्यान को छोड़कर बाईस ध्यान - भेदों का चिंतन करना । क्योंकि ध्यान - परम ध्यान शुभाक्षरमें आ गये ।

(६) सकलीकरण : पाँच भूतात्मक । अरिहंत-जल, सिद्ध-तेज, आचार्य-पृथ्वी, उपाध्याय-वायु, साधु-आकाश तत्त्व हैं । (क्षि-प-ओं-स्वा-हा)

(७) तीर्थंकर मातृवलय : २४ तीर्थंकर अपनी माताओं को परस्पर प्रेमपूर्वक देखनेमें मग्न हो वैसे देखना ।

आज भी ऐसे पट्ट राणकपुर, मोटा पोसीना, शंखेश्वर इत्यादि स्थलोंमें देखने मिलेंगे । **यह ध्यान बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं । माता का वात्सल्य, भगवान का माता के प्रति भक्तिभाव - ये दोनों इसमें से समझने जैसे हैं । वात्सल्य और पूज्यभाव हमारे जीवनमें पैदा होने चाहिए, जिससे जगत के साथ योग्य संबंध बना रहे । मात्र ध्यानमें गये तो जीवन शुष्क हो जायेगा । ध्यानमें जगत के जीवों के साथ संबंध तोड़ना नहीं हैं ।**

✱ भगवान को जगत के जीवों को तारने की जितनी भावना थी उतनी भावना हमें अपनी आत्मा के लिए भी नहीं हैं । हमें हमारी चिंता हैं, उससे भगवान को ज्यादा हैं, ऐसा विचार कभी आता हैं ? जुआ खेलने की आदत पर चढे हुए पुत्रको देखकर पिताको दुःख होता हैं उससे कई गुना दुःख भगवानको हैं, ऐसा कभी विचार आता हैं ?

(८) तीर्थंकर पितृवलय : पिता-पुत्र (२४ तीर्थंकर) परस्पर अवलोकन कर रहे हैं, ऐसे देखना ।

(९) तीर्थंकर नामाक्षर वलय : तीनों चोवीसी के तीर्थंकरों के नामों के अक्षरों का वलय :

(१०) विद्यादेवी वलय : १६ रोहिणी आदि विद्यादेवी वलय

(११) २८ नक्षत्र

(१२) ८८ ग्रह

(१३) ५६ दिक्कुमारियां

(१४) ६४ इन्द्र

(१५) २४ यक्षिणियां

(१६) २४ यक्ष

(१७) स्थापना-चैत्यवलय : शाश्वत-अशाश्वत सभी चैत्य (जिनालय)

नामकी तरह मूर्तिकी भी महिमा हैं ही । इसमें आबेहूब भगवान का स्वरूप दिखता हैं ।

पू. धुरंधरविजयजी म. : पहले देव-देवीओं का वलय... उसके बाद 'चैत्यवलय' । इसका क्या कारण ?

पूज्यश्री : ये देव-देवी भी सम्यग्दृष्टि हैं, जीवंत हैं । भक्तों का नंबर पहले होता हैं । भक्त नहीं हो तो चैत्योंमें आयेगा कौन ?

चैत्यों के बिना भक्त नहीं जमते ।

भक्त के बिना चैत्य नहीं जमते । दोनों परस्पर सापेक्ष हैं ।

✱ नवस्मरणमें यह सब हैं ही । जगचिंतामणिमें भी बहुत सा संक्षेपमें हैं । देववंदन की क्रियामें भी कितना सारा हैं ? **दैनिक क्रिया भी ध्यान के लिए कितनी उपयोगी हैं ? यह यहां से जानने को मिलेगा ।**

मैं स्वयं भी यहां तक इसके सहारे की पहुंचा हूं । बाकी कोई ध्यान-प्रक्रिया मेरे पास नहीं हैं ।

मात्र भगवान के भरोसे हूं ।

(१८) ऋषभ आदि २४ के गणधर वगैरह साधुओं की संख्या का वलय ।

(१९) ऋषभ आदि २४ के मुख्य साध्वीओं की संख्या का वलय ।

(२०) ऋषभ आदि २४ के मुख्य श्रावकों की संख्या का वलय ।

(२१) ऋषभ आदि २४ के मुख्य श्राविकाओं की संख्या का वलय ।

(२२) ९६ भवन योग ।

(२३) ९६ करण योग ।

(२४) ९६ करण ।

यहां करण याने चिन्मात्ररूप समाधि !

(२१) पद ध्यान :

द्रव्य से लौकिक राजादि का पद (राजा, मंत्री, खजानची, सेनापति, पुरोहित) लोकोत्तर पद आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, गणावच्छेदक और स्थविर ये पांच हैं ।

एसो परमो मंतो, परम रहस्सं परंपरं तत्तं ।
नाणं परमं नेयं, सुद्धं झाणं परं झेयं ॥

परमेष्ठी नमस्कार की महिमा यहां व्यक्त होती हैं ।

यह नवकार परम कवच, खाइ, अस्त्र, भवन, रक्षा, ज्योति, शून्य, बिंदु, नाद, तारा, लव और मात्रा हैं ।

– यह अरिहाण स्तोत्र की वानगी हैं ।

(२२) परम पद ध्यान :

पांचों परमेष्ठी पदों की अपनी आत्मामें स्थापना । उसकी स्थापना से स्व को परमेष्ठीरूप सोचें ।

(२३) सिद्धि ध्यान :

द्रव्य से लौकिक अणिमा आदि आठ सिद्धियां

लोकोत्तर सिद्धिः रागद्वेषमें मध्यस्थरूप परम–आनंदरूप सिद्धि ।

भावसे सिद्धि : मोक्ष ।

अथवा सिद्धों के ६२ गुणों का चिंतन करना वह भावसे सिद्धि ।

(२४) परम सिद्धि :

परमात्मा (सिद्ध) के गुणों को स्वयं की आत्मामें आरोप करना वह हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

ओपरेशन के बाद, भुज, वि.सं. २०४६

१३-१०-२०००, शुक्रवार
अश्विन शुक्ला - १५

व्याख्यान

लंडन निवासी गुलाबचंदभाई द्वारा 'कह्युं कलापूर्णसूरिए' पुस्तक का विमोचन और मनफरा निवासी मातुश्री भमीबेन बी. देढिया द्वारा लोकार्पण विधि ।

✱ चमत्कार से नमस्कार तो सर्वत्र होता हैं, पर श्रीपाल के जीवनमें कदम-कदम पर नमस्कार से चमत्कार का सर्जन हुआ हैं ।

यहां धवल के हृदय की कालिमा और श्रीपाल के हृदय की धवलताका की पराकाष्ठा देखने मिलती हैं ।

सचमुच तो धवल की अधमता के कारण श्रीपाल की उत्तमता ज्यादा शुभ्र रूप से चमकती हैं । अंधकार के कारण प्रकाश की महिमा हैं । रावण के कारण राम की महिमा हैं । दुर्योधन के कारण युधिष्ठिर महान हैं । धवल के कारण श्रीपाल महान हैं । धवल शेठ नहीं होता तो श्रीपाल की उत्तमता कैसे जान सकते ? खलनायक के बिना नायक की महानता जानी नहीं जा सकती । इसलिए ही प्रत्येक चरित्रोंमें (और आज की फिल्मोंमें भी) नायक के साथ खलनायक (हीरो के साथ विलन) का पात्र भी होता हैं ।

धक्का मारकर श्रीपाल को समुद्रमें फेंकने की धवल की अधमता ।

उल्टे सिर बंधे हुए धवल शेठ को छुड़ाने की श्रीपाल की उत्तमता ।

श्रीपाल को चंडाल के रूपमें दिखाने की धवल की कोशिश ।

धवल के विषयमें थोड़ा भी अशुभ नहीं सोचने की श्रीपाल की सज्जनता ।

श्रीपाल को जान से मारने का धवल का प्रयत्न ।

ये सब प्रसंग दोनों की सज्जनता और दुर्जनता की पराकाष्ठा बताते हैं । जितने अंशमें आपका शत्रु दुष्ट होता हैं उतने ही अंशमें आप उसके सज्जन मित्र बनें । आपकी मित्रता तो ही असरकारक बन सकेगी ।

दुर्जन स्वयं की दुर्जनता नहीं छोड़ता तो सज्जन स्वयं की सज्जनता क्यों छोड़े ? चंदन को काटो, जलाओ या घिसो, पर वह अपनी सुवास नहीं छोड़ता, उसी तरह सज्जन किसी भी स्थितिमें अपनी सज्जनता छोड़ता नहीं हैं । श्रीपाल इसका श्रेष्ठ उदाहरण हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

निश्चय और व्यवहार

भगवानने निश्चय और व्यवहार दो धर्मों का उपदेश दिया हैं । तत्त्वदृष्टि / स्वरूपदृष्टि निश्चय धर्म हैं और उस दृष्टि के अनुरूप भूमिका के योग्य प्रवृत्ति, आचारादि व्यवहार धर्म हैं । दोनों धर्म रथ के पहियों जैसे हैं। रथ चलता हैं तब दोनों पहिये साथ चलते हैं ।

समवायांग - वाचना, धामा, वि.सं. २०३७

३-१०-२०००, शुक्रवार
अश्विन शुक्ला - १५

दोपहर ४.००
पू. देवचंद्रजी के स्तवन
पांचवां स्तवन

✱ भगवान का ऐश्वर्य जानने से हमें क्या लाभ ? वह प्राप्त करने की हमें झंखना जगती हैं । आत्मामें एक बार झंखना जगने के बाद वह उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा ही । जहां जहां हमारी रुचि हैं, वहां वहां हमारी ऊर्जा हैं । ऊर्जा हमेशा इच्छाको ही अनुसरती हैं।

ज्यों ज्यों प्रभु की रुचि बढती जाये, त्यों त्यों दोषों से निवृत्ति होती जाती हैं ।

✱ पाटण कनासे के पाड़े में स्फटिक की लाल प्रतिमा देखकर मैंने पूछा : 'क्या ये वासुपूज्य स्वामी हैं ?'

पूजारीने कहा : नहींजी । यह तो पीछे के परदे के कारण लाल दिख रही हैं ।

परदा हटते ही शुद्ध स्फटिकमय प्रतिमा शोभने लगी । हमारी आत्मा भी शुद्ध स्फटिक जैसी ही हैं, पर राग-द्वेष से वह रागी-द्वेषी लगती हैं ।

'जिम निर्मलता रे रतन स्फटिकतणी, तिम ए जीव स्वभाव;
ते जिन वीरे रे धर्म प्रकाशीयो, प्रबल कषाय अभाव;
जिम ते राते रे फूले रातडुं, श्याम फूलथी रे श्याम;
पुण्य-पापथी रे तिम जगजीवने, राग-द्वेष परिणाम ।'

- पू. उपा. यशोविजयजी । १२५ गाथा का स्तवन

✱ जीव की शुद्धता के पुष्ट निमित्त एकमात्र भगवान ही हैं । 'बिना निमित्तालंबी बने, जीव कभी उपादानालंबी बन नहीं सकता ।' इस प्रकार टब्बेमें पू. देवचंद्रजीने स्वयं लिखा हैं ।

'इसलिए हे भव्यो ! आप अरिहंत की भक्तिमें डूब जाओ ।' इस प्रकार पू. देवचंद्रजी कहते हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

आत्म-अवलंबन कैसे किया जाय !

पूज्यश्री : प्रथम परमात्मा को समर्पित होकर उनका अवलंबन लें । उनके गुणोंमें तादात्म्य होने से 'मैं कुछ हूं' इत्यादि अहंकाररूप विकल्परहित हो सकते हैं । ऐसा शुद्ध परिणाम आत्मा का अवलंबन हैं । ज्ञानस्वरूप ऐसे आत्मा की यह दशा ही समभाव हैं ।

- सुनंदाबहन वोरा

पदवी प्रसंग, मद्रास, वि.सं. २०५२, माघ शु. १३

१४-१०-२०००, शनिवार
कार्तिक शुक्ला - १

दोपहर ४.००
पू. देवचंद्रजी स्तवन

✱ जो साधक प्रभुका शब्दनय से दर्शन करता हैं (अर्थात् प्रभुमें रही हुई अनंत गुण संपत्ति प्राप्त करने की इच्छा से दर्शन करता हैं ।) उसकी संग्रहनय की दृष्टि से आत्मामें पड़ी हुई शुद्ध सत्ता एवंभूतनय से पूर्ण शुद्धता को प्राप्त करती हैं । अर्थात् संग्रहनय एवंभूत नयमें परिणाम को प्राप्त करता है ।

✱ **दर्पण के बिना शरीर के स्वरूप का पता नहीं चलता ।**
भगवान के बिना आत्मा के स्वरूप का पता नहीं चलता ।

मूर्ति की तरह आगम भी बोलते भगवान हैं । इसलिए आगम को भी दर्पण की उपमा दी हैं ।

अंदर सम्यग्-दर्शन हुआ हो तो ही आप सच्चे अर्थमें मूर्तिमें भगवान के दर्शन कर सकते हो, तो ही आगम सच्ची तरह पढ सकते हो ।

सम्यग् - दृष्टि के दर्शन को ही शब्दनय सच्चे दर्शन के रूपमें स्वीकार करता हैं ।

नैगम नयः चंचल मनके दर्शन, **व्यवहार नय :** *विधिपूर्वक* के दर्शन, **ऋजुसूत्र नय :** मन-वचन-काया की स्थिरतापूर्वक के दर्शन, (यहां तक सम्यग् दर्शन नहीं हैं ।) **शब्दनय :** प्रभुकी आत्मसंपत्ति प्रकट करने की इच्छापूर्वक के दर्शन, **समभिरूढनयः** केवलज्ञानी का दर्शन, **एवंभूत नयः** सिद्धों के दर्शन को ही दर्शन मानता हैं ।

*** भगवान को आप समर्पित बनो तो बाकी का भगवान संभाल लेते हैं । समर्पित बनना ही कठिन हैं । सब पासमें रखकर मात्र 'जिन तेरे चरण की शरण ग्रहुं' ऐसा बोलने से समर्पण नहीं आता । समर्पण के लिए सबका विसर्जन करना पड़ता हैं । अहं का विसर्जन सबसे कठिन हैं । अहं के विसर्जनपूर्वक जो भक्त भगवान की शरणमें जाता हैं, उसका भगवान सब कुछ संभाल लेते हैं ।**

समर्पणभाव तो हमें ही पैदा करना पड़ता हैं । वह कोई भगवान नहीं कर देते । बीज किसान बोता हैं, पानी, कृषि इत्यादि भी किसान करता हैं, जब यहां हमें करना हैं । सब भगवान पर छोड़कर निष्क्रिय नहीं बनना हैं ।

* नामादि चार भवसागरमें सेतु समान हैं । उस सेतुको आप पकड़कर रखो, बीचमें से छोड़ो नहीं तो भवसागर से पार करने की जवाबदारी भगवान की हैं ।

* समवसरणमें बैठे हुए भगवान भले भावनिक्षेप से भगवान कहे जाते हैं, लेकिन दर्शनार्थी के लिए तो तब ही लाभदायी बनता हैं, जब वह प्रभु की आत्म-संपत्ति को (भाव आर्हन्त्यको) देखता हैं । मात्र अष्ट प्रातिहार्य या समवसरण की संपदा तो अंबड़ परिव्राजक जैसे भी बना सकते हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

आधोई, वि.सं. २०३३

१५-१०-२०००, रविवार
कार्तिक शुक्ला - २

ध्यान विचार :

* ध्यान विचार पूर्वाचार्यों की संक्षिप्त नोट मात्र हैं, किंतु हमारे लिए अमूल्य पुंजी हैं । वि.सं. २०३० से मैं इस ग्रंथ का परिशीलन कर रहा हूं । साधना भी कर रहा हूं । इस परसे मैं कहता हूं : यह अद्‌भुत ग्रंथ हैं ।

* पू.पं. भद्रंकर वि.म. की संमतिपूर्वक ही इस ग्रंथ का निर्माण तथा उसमें शुद्धि-वृद्धि हुई हैं । उनकी संमति के बिना एक कदम भी मैं आगे नहीं बढा ।

हमारा पूरा जीवन परलक्षी हो जाने के कारण ऐसा अद्‌भुत ग्रंथ सामने होने पर भी उसकी उपेक्षा हो रही हैं, ऐसा मुझे हंमेशा लगता हैं । रुचि प्रकट करने के लिए ही मेरा यह प्रयास हैं ।

कम्मपयडि, पंचसंग्रह, आगम इत्यादि के रहस्यों को खोलनेवाला यह ग्रंथ हैं । फिर भी हमारी उस तरफ नजर नहीं हैं, उसका मुझे तो बहुत ही आश्चर्य लगता हैं ।

श्रावकों को धन्यवाद हो कि उन्होंने करोड़ो रूपयों के व्ययसे यह मेला तैयार कर दिया । नहीं तो इतने साधु-साध्वीओं का यहां मिलन कैसे होता ?

*** ध्यान विचार उत्तरार्ध :**

चिन्ता : भावना और अनुप्रेक्षा के बिना चंचल चित्त वह चिन्ता । उसके ७ प्रकार हैं ।

प्रथम कक्षामें ध्यान के लिए चिंतन ही चाहिए । चिंतन से ही ध्यान की पूर्ण भूमिका का निर्माण होता हैं ।

* ७ चिंता : (१) तत्त्वचिंता, (२) मिथ्यात्त्व - सास्वादन - मिश्रदृष्टि गृहस्थरूप, (३) क्रिया - अक्रिया - अज्ञान - विनयवादी आदि ३६३ पाखंडीओं की विचारणा, (४) पासत्थादि, (५) चार गति के सम्यग्दृष्टि की विचारणा, (६) मनुष्य देशविरतों की विचारणा, (७) ७वें गुणस्थानक से १४वें गुणस्थानक तक तथा सिद्धों की विचारणा । चिंतन जितने उच्च प्रकार का उतना वीर्योल्लास ज्यादा ।

* योगमें जाने की इच्छावाले को निष्काम कर्म साधन हैं । परंतु योग की सिद्धि प्राप्त किये हुए के लिए तो 'शम' ही मोक्ष का कारण हैं ।

- भगवद्-गीता, ६/३

* भावना याने पुनः पुनः अभ्यास । उसके चार प्रकार हैं । ज्ञान - दर्शन - चारित्र और वैराग्य भावना ।

गणि मुनिचंद्रविजय : ज्ञानाचार आदि और ज्ञानभावना आदि, दोनोंमें क्या अंतर हैं ?

पूज्यश्री : ऐसे देखें तो कुछ अंतर नहीं हैं । दूसरी तरह देखे तो कुछ अंतर भी है । ब्रोलो, रोटी और पूड़ीमें क्या अंतर ? ऐसा ही अंतर यहां समझें ।

(१) ज्ञान भावना : सूत्र - अर्थ - तदुभय - तीन प्रकार से ।

(२) दर्शन भावना : आज्ञारुचि, नवतत्त्वरुचि, परमतत्त्व (२४) रुचि ।

(३) चारित्र भावना : सर्वविरत, देशविरत, अविरत सम्यग्दृष्टि ।

अनंतानुबंधी के क्षय या उपशम के बिना चौथा गुणस्थानक नहीं मिलता । इसलिए अविरत सम्यग्दृष्टि को भी यहां (चारित्र भावनामें) समाये हैं । अनंतानुबंधी चारित्र मोहनीय कर्म का भेद हैं ।

(४) वैराग्य भावना : अनादि संसारमें भ्रमण का चिंतन, विषय-वैमुख्य और शरीर की अशुचिताका चिंतन ।

* भवनयोग और करणयोग का स्वरूप ।

वीर्य के आठ प्रकार हैं :

योग : राजा अधिकारीयों को आदेश करता हैं उस तरह आत्मा आत्मप्रदेशों को कर्मक्षय के लिए कार्यशील बनाता हैं ।

वीर्य : दासी द्वारा कचरा फेंका जाता हैं, उस प्रकार कर्मों का कचरा फेंकना ।

स्थाम : दंताली (खेती का एक साधन) से कचरा खींचा जाता हैं, उस प्रकार क्षय करने के लिए कर्मों को खींचना ।

उत्साह : फौव्वारे से पानी ऊपर चढ़ाया जाता हैं उस प्रकार कर्मों को ऊंचे ले जाना ।

पराक्रम : छिद्रवाले छोटे कुंडरे में से तेल को नीचे ले जाया जाता हैं उस प्रकार कर्मों को नीचे ले जाना ।

चेष्टा : तपे हुए लोहेमें पानी की तरह कर्मों को सूखाना ।

शक्ति : तिलमें से तेल को अलग करने की तरह कर्म-जीव का साक्षात् वियोग कराना ।

आत्म-तृप्ति का लक्षण वीर्य की पुष्टि हैं । आत्म-वीर्य की पुष्टि न हो तो थोड़ी-थोड़ी देरमें चित्त चंचल हुआ करता हैं, विचलित हो जाता हैं ।

ये योग वगैरह आठको तीनसे गुनते २४ भेद ।

उन २४ को प्रणिधान, समाधान, समाधि और काष्ठासमाधि के साथ गुनते ९६ भेद हुए ।

९६ करण योग : तीर्थंकरो की तरह पुरुषार्थ से ।

९६ भवन योग : मरुदेवी की तरह स्वाभाविक ।

कुल १९२ भेद ।

*** मैंने कोई प्रक्रिया नहीं सीखी हैं, फिर भी प्रभुकी प्रसादी मिली हैं । वह भवन योगमें शायद जा सकती हैं, ऐसा अब समझमें आता हैं ।**

* चिंतन मन का खुराक हैं । उसका अभाव वह मनका अनशन । चिंता के अभाव से मानो मन नष्ट हो गया हो वैसा लगे वह उन्मनीकरण । अर्थात् मनकी मृत्यु ।

(ध्यान विचार - वाचना समाप्त)

गुरुवंदना

१६-१०-२०००, सोमवार
कार्तिक कृष्णा - ३

ललित विस्तरा वाचना का पुनः प्रारंभ

✱ (१४) लोगपज्जोअगराणं

प्रभु के ग्रंथ सुनते हृदयमें ज्ञान-प्रकाश फैलता हैं । ज्ञान बढते श्रद्धा बढती हैं । श्रद्धा अर्थात् रुचि । रुचि प्रबल बनने पर वीर्य-शक्ति प्रबल बनती हैं । अतः बहुत कर्मों की निर्जरा होती हैं । जो कर्म बरसों तक नहीं जाते, वे कर्म प्रबल वीर्योल्लाससे एक क्षणमें साफ हो जाते हैं ।

आत्मप्रदेश जैसी सीट कर्मों को मिली हैं । वे जल्दी कैसे छोड़ेंगे ? इसके लिए प्रबल ध्यानानल चाहिए, प्रबल वीर्योल्लास चाहिए । तो ही कर्म आत्मप्रदेशों की सीट को छोड़ेंगे । फिर, उस समय आप कछुए की तरह गुप्त रहो, संवर करो तो ही नये कर्म आते अटकते हैं ।

✱ भगवान भव्य जीवों के लिए सूर्य की तरह प्रकाश देते हैं, अन्य को दीपककी तरह प्रकाश देते हैं । इसमें पक्षपात नहीं करते, पर ग्रहण करनेवाले अपनी योग्यता के अनुसार ही ग्रहण कर सकते हैं, वह बताना हैं । तालाब पूरा भरा होने पर भी आप

आपके घड़े से ज्यादा ग्रहण कर नहीं सकते ।

✱ **'उप्पन्नेइ वा विगएइ वा धुवेइ वा'** इस त्रिपदीमें समस्त द्वादशांगी छिपी हुई हैं । द्रव्य और पर्यायमें पूरा जगत आ गया । यह त्रिपदी ध्यानकी माता हैं । गणधर भगवंत इस परसे द्वादशांगीकी रचना करते हैं ।

हमें समझाने के लिए गुरुको कितनी महेनत पड़ती हैं ? गणधर कितने ऊंचे प्रकार के शिष्यत्व को प्राप्त किये होंगे कि मात्र तीन प्रदक्षिणामें ही काम हो गया । गुरु को ज्यादा तकलीफ नहीं दी । तीन प्रदक्षिणा मंगलरूप हैं । इसलिए ही विहार करते या प्रवेश करते तीन प्रदक्षिणा देने का विधान हैं ।

भगवान की तरह गुरु को भी (स्थापनाचार्य को) हम प्रदक्षिणा देते हैं ।

✱ चौदह पूर्वधर भी सभी समान नहीं होते । उनमें भी परस्पर दर्शन (बोध) भेद (छ स्थानवाला) होता हैं । द्रष्टामें भेद पड़ते दर्शनमें भेद पड़ता हैं ।

इस तरह गणधरों को भगवान सूर्य की तरह प्रकाश देते हैं । भगवान की यह परार्थ संपदा हैं ।

(१५) अभयदयाणं

✱ अभय देनेवाले एक मात्र भगवान ही हैं ।

यहां मिलते पाठ बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं, हमारी साधना के लिए बहुत ही उपयोगी हैं ।

भगवान बोधि देते हैं उसके पहले अभय, चक्षु, मार्ग और शरण ये चार देते हैं । बोधि कोइ इतना सस्ता नहीं हैं । बोधि प्राप्त करने से पहले ये चार प्राप्त करने पड़ते हैं । दीक्षा (आज मिलती) फिर भी सस्ती हैं, बोधि सस्ता नहीं हैं ।

भगवान के बहुमान से ही अभय आदि मिलने के कारण वह देनेवाले भगवान ही कहे जाते हैं । बहुत से लोग ऐसे होते हैं : 'गुरुदेव ! आपका नाम लेता हूं और काम हो जाता हैं । यह सब आपका ही हैं ।' ऐसे लोग बहुमान के द्वारा प्राप्त कर लेते हैं । प्राप्त कर लेने के बाद जिनके बहुमान से मिला उसे ही वे दाता मानते हैं ।

हमारा मोक्ष दूसरे कोई नहीं अटकाते, भगवान और गुरु के प्रति हमारा अबहुमान - भाव ही अटकाता हैं ।

यह ग्रंथ पढकर मात्र पूरा करना नहीं हैं, पर जीवनमें उतारना हैं । इस दृष्टि से पढें और सुनें ।

✱ भव-निर्वेद (विषय-वैराग्य) भगवान के बहुमान से ही प्रकट होता हैं । भगवान के प्रति बहुमान भाव जगा हुआ तब कह सकते हैं जब विषय विष जैसे लगे, विषय नीरस लगे, स्वादहीन लगे, भगवान ही एक मात्र रसाधिराज लगे ।

मोहनीय आदि के क्षयोपशम के बिना भगवान के प्रति बहुमान भाव प्रकट नहीं होता ।

शम-संवेग इत्यादि सम्यग्-दर्शन के लक्षण हैं, लेकिन संघ पर वात्सल्य, गुणी के ऊपर बहुमान आदि कार्य हैं । **सम्यग्-दृष्टि जहाँ गुण देखता हैं, वहीं झुकता हैं । खुद के राई जितने दोष को पहाड़ जितना मानता हैं ।**

'थोडलो पण गुण परतणो, सांभळी हर्ष मन आण रे;
दोष-लव पण निज देखतां, निर्गुण निज आतमा जाण रे ।'

- उपा. यशोविजयजी, अमृतवेली सज्झाय

हम इससे विपरीत करते हैं ।

मोक्षप्रापक धर्म कैसे संभवित बनेगा ?

⌘ ⌘ ⌘

जीवों का अज्ञान क्या हैं ?

पूज्यश्री **:** सर्वज्ञ का वचन न जाने वह अज्ञान अथवा उसके अलावा सर्व व्यवहार-ज्ञान वह अज्ञान। उससे व्यवहार चलता है, लेकिन मोह नष्ट नहीं होता । उपयोगमें मोह का मिलन वह अज्ञान । ज्ञान से मोह नष्ट होता हैं ।

- सुनंदाबहन वोरा

वढवाण, वि.सं. २०४७

१७-१०-२०००, मंगलवार
कार्तिक कृष्णा - ५

* राग-द्वेष को जीतनेवाले जिन कहे जाते हैं । जीतने के लिये प्रयत्न करनेवाला जैन कहा जाता हैं । समता के बिना राग-द्वेष जीत नहीं सकते । हमें सामायिक (सर्व विरति) मिली हैं । उससे राग-द्वेष बढ रहे हैं या घट रहे हैं ? याद रहें : **दंड से घड़ा बनाया भी जा सकता हैं, और फोड़ा भी जा सकता हैं । इस जीवन से राग-द्वेष जीत भी सकते हैं, और बढा भी सकते हैं । 'मैं मोक्षमार्ग की तरफ चल रहा हूं' ऐसी प्रतीति न हो तो यह जीवन किस काम का ?**

मोक्षमार्ग की प्राप्ति भगवान के बहुमान के बिना नहीं होती । बोधि पहले की अभय आदि चार चीजें भगवान के बहुमान के बिना नहीं मिलती । ये पांचों (बोधि सहित) भगवान के बिना दूसरे कहीं से नहीं मिलेंगी ।

* करण याने निर्विकल्प समाधि । उसके लिए ध्यान चाहिए । उसके लिए चित्तकी निर्मलता चाहिए, स्थिरता चाहिए । हमारा मन नित्य चंचल हैं और मलिन हैं । सात भय हमारे पीछे पड़े हैं । इसी से मन चंचल हैं । भय का मतलब ही

हैं चित्त की चंचलता । भगवान के बिना चित्त की चंचलता नहीं मिटती । भगवान निर्भय बनानेवाले हैं । इसीलिए ही वे अभयदाता कहे गये हैं ।

✱ संसार से निर्वेद भी भगवान के बहुमान से ही पैदा होता हैं । भगवान और भगवान के गुणों का पक्षपात होते ही संसार तरफ की नफरत हो ही जाती हैं । जन्म-मरणरूप संसार मुख्य नहीं हैं, विषय-कषाय ही मुख्य संसार हैं । उसकी तरफ नफरत जगनी यही भव-निर्वेद हैं । ज्ञानादि गुणों के प्रति प्रेम जागृत होना ही भगवान पर का बहुमान हैं ।

यह शरीर अपाययुक्त हैं । संपत्ति, विपत्ति का स्थान हैं । संयोग नश्वर हैं । सब कुछ विनश्वर हैं । ऐसी विचारणा द्वारा आखिर विषय-कषायों के उपर नफरत पैदा करनी हैं ।

यह शरीर तो मकान हैं । मकान की मरम्मत करो वहाँ तक फिर भी कुछ एतराज नहीं, पर मकान की मरम्मतमें उसके मालिक (आत्मा) को बिलकुल भूल जाओ वह कैसे चलेगा ?

✱ इहलोक, परलोक, चोरी, अकस्मात्, आजीविका, मृत्यु, अपयश ये सात मुख्य भय हैं ।

आज तो मनुष्य ऐसे अनेक भयों से घिरा हुआ हैं । सरकार, गुंडे, चोर, ग्राहक, भागीदार इत्यादि का कितना भय हैं ।

दुर्घटना का भय भी आज कम नहीं हैं । वाहनों की दुर्घटना कितनी होती हैं ! पूरा भावनगर अभी भूकंप के भय से कैसे काँप रहा था ?

ये सात तो मुख्य भय हैं । बाकी इसके ७०० प्रकार भी हो सकते हैं ।

गणि मुक्तिचन्द्र विजयजी : मुख्य भय कौन सा ?

पूज्यश्री : आपको जो सताये वह आपके लिए बड़ा भय । सबकी अलग - अलग प्रकार की परिस्थिति होती हैं, उस तरह उसे भय सताया करते हैं ।

'भय चंचलता हो जे परिणामनी'

चित्तकी चंचलता चौबीसों घण्टे रहती हो तो समझें : मन चौबीसों घण्टे भय-ग्रस्त हैं ।

स्वस्थता प्राप्त करनी हो तो भगवान के अलावा दूसरा कोई भी उपाय नहीं हैं । प्राप्त करनी हैं ?

अब पाँच सूत्र बहुत ही गंभीर हैं । यहाँ स्पष्ट लिखा हैं : अभय आदि पाँच भगवान के बिना कहीं से नहीं ही मिलते ।

भगवान पर बहुमान आने पर भगवान आपके हृदयमें आ ही गये । जहाँ बहुमान हैं, वहाँ भगवान हैं । अतः एव भक्त को कभी भगवान का विरह पड़ता ही नहीं हैं । यही बात गुरुमें भी लागू पड़ती हैं । सच्चे शिष्यको कभी गुरु का विरह पीडा नहीं ही देता । क्योंकि हृदयमें गुरु के उपर बहुमान हमेशा रहा हुआ ही हैं ।

अभय आते ही आत्मा का स्वास्थ्य आता हैं । स्वास्थ्य याने मोक्षधर्म की भूमिका की कारणरूप धृति ।

धृति का प्रचलित धैर्य अर्थ न करें, किंतु आत्मा के स्वरूप का अवधारण वह धृति ।

ऐसी धृति, ऐसा अभय भी जीवनमें न आया हो तो मोक्ष की आशा कैसे रख सकते हैं ? तलहटी पर भी नहीं पहुंचे हो तो दादा के दर्शन की आशा कैसे रख सकते हैं ?

अभय न हो तो विहित धर्म की सिद्धि कैसे हो सकती हैं ? समीपवर्ती भय के उपद्रवों से चित्त बार बार पराजित होता हो वहाँ धर्म कैसे जन्म लेगा ?

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति आपके चित्त की स्वस्थता की अपेक्षा रखती हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

चार भावनाएं

मैत्री याने निर्वैर बुद्धि, समभाव ।
प्रमोद याने गुणवानों के गुण प्रति प्रशंसाभाव ।
करुणा याने दुःखीजनों के प्रति निर्दोष अनुकंपा ।
माध्यस्थ्य याने अपराधी के प्रति भी सहिष्णुता ।

पदवी प्रसंग, मद्रास, वि.सं. २०५२, माघ शु. १३

१८-१०-२०००, बुधवार
कार्तिक कृष्णा - ६

* प्रभु की कोई करुणा-दृष्टि हुई और गत जन्ममें हमने कोई पुण्य कार्य किया जिसके प्रभाव से धर्म सामग्री युक्त ऐसा जन्म मिला, जहाँ अरिहंत जैसे देव और उनके धर्म के बारे में सुनने मिला ।

मात्र सुनने से भगवान के गुण नहीं आते, वे जीवनमें उतारने पड़ते हैं । दुकानमें माल देखकर खुश हो जाओ, इतने से माल नहीं मिलता, किंमत चूकानी पड़ती हैं । **यद्यपि दुकान का माल देखकर आप खुश हो तो आपको कुछ नहीं मिलता, पर भगवान के गुणों को देखकर खुश हो तो भी काम हो जाय । ये गुण आपको मिल जायेंगे ।**

गुणों का प्रारंभ कहाँ से करना ? भव-निर्वेद से । भव याने संसार । संसार याने विषय - कषाय । जहाँ विषय - कषाय उत्कट हो वहाँ सभी दोष उत्कट होंगे ही ।

भगवान के प्रति बहुमान प्रकट होते ही हमारे गुण प्रकट होने लगते हैं, चित्त स्वस्थ होने लगता हैं । इसलिए ही स्वस्थता भगवान देते हैं, ऐसा यहाँ कहा हैं ।

चित्त जब जब चपल हो तब तब विचारें : चित्त चपल क्यों हैं ? जिस जिस शब्दादि का ग्रहण करते हैं उसके उसके विचार आयेंगे ही । इससे ही मन चंचल होता हैं । काजल के कमरे में रहे हुए हमें कालापन न लगे उस तरह रहना हैं ।

पांचों इन्द्रियों की तरफ दौड़ती इन्द्रियों को रोकनी हैं । उन वृत्तिओं को अंदर पड़ा हुआ विशाल खजाना बताना हैं ।

भगवान पर बहुमान तो ही गिना जाता हैं यदि विषयों की विमुखता हो । भवाभिनंदी कभी भगवान का भक्त बन नहीं सकता । विषयों पर वैराग्य, भगवान पर बहुमान का सूचक हैं । विषयों पर वैराग्य न हो तो बहुमान प्रकट नहीं हुआ हैं, ऐसा नक्की मानें ।

✱ भगवान तो स्व पदवी देने के लिए तैयार हैं, पर हमारे अंदर योग्यता चाहिए न ? भगवानमें गुणों का प्रकर्ष प्रकट हुआ हैं । गुण भगवान के पास ही मिलेंगे । ये सब पदार्थ पू. हरिभद्रसूरिजीने यहाँ अद्‌भुत ढंग से खोले हैं । करोड़-करोड़ वंदन करते हैं उनके चरणों में ।

रोग-रहित शरीर स्वस्थ कहा जाता हैं, उसी तरह अपने स्वभावमें रही हुई आत्मा स्वस्थ कही जाती हैं । उसका भाव वह स्वास्थ्य कहा जाता हैं ।

'समर्थ की (भगवान की) गोदमें बैठा हुआ हूं ।' भक्त को सदा ऐसा भाव रहता हैं । इसलिए ही वह कभी अस्वस्थ नहीं बनता । भयभीत नहीं बनता ।

भगवानमें गुण प्रकर्ष के साथ पुण्य-प्रकर्ष भी हैं । अचिन्त्य, शक्ति भी हैं । इसलिए ही उनमें परोपकार का भी प्रकर्ष हैं ।

गुण प्रकर्ष के बिना अचिन्त्य शक्ति नहीं आती । अचिन्त्य शक्ति के बिना अभयप्रद शक्ति नहीं आती ।

अभयप्रद शक्ति के बिना परार्थकरणता प्रकट नहीं सकती ।

दर्शन, ज्ञान और चारित्र के क्रम की तरह यह क्रम भी समझने जैसा हैं ।

परार्थकरणता प्राप्त करनी हो तो **अभयप्रद शक्ति** चाहिए । इसके लिए **अचिन्त्य शक्ति** चाहिए । **अचिन्त्य शक्ति** प्राप्त करनी

हो तो **गुणका प्रकर्ष** चाहिए ।

ये चार भगवानमें हैं, इसलिए ही भगवान अभय दे सकते हैं । पू. हरिभद्रसूरिजी यहाँ स्पष्टरूप से कहते हैं : **भगवद्भ्य एव सिद्धिरिति** । इसके उपर पंजिकाकार श्री मुनिचंद्रसूरिजी लिखते हैं : **'भगवद्भ्य एव, न स्वतः नापि अन्येभ्यः'** अर्थात् स्व से भी नहीं या पर से भी नहीं, भगवान के पास से ही अभय की प्राप्ति होती हैं ।

✱ ज़ौहरी की चाहे जितनी प्रशंसा करो वह कोई ज्वेलरी आपको नहीं देता, पर भगवान इतने दयालु हैं कि आप मात्र उनके गुणों का गान करो और ये गुण भगवान आपको दे देते हैं । **जिस गुण को हृदय से चाहो वह गुण आपका हो जाता हैं ।**

पंचसूत्रमें आराधना का क्रम इस तरह हैं : शरणागति, दुष्कृत गर्हा और सुकृत अनुमोदना ।

किंतु एक अहंकार एक भी गुण को आने नहीं देता । अहंकारी न शरण स्वीकार सकता हैं, न स्वदुष्कृतों की गर्हा कर सकता हैं, न पर-गुणों की अनुमोदना कर सकता हैं ।

'दुर्योधन को कोई गुणी दिखाई न दिया, युधिष्ठिर को कोई दोषी दिखाई न दिया । लगता हैं : अभी भी हमारी आंख दुर्योधन की ही हैं । कोई गुणी दिखता ही नहीं । फिर किसकी अनुमोदना ? खुद का एक भी दोष दिखता ही नहीं । फिर किसकी गर्हा ?

खुदमें गुण हो तो ही दूसरे को दे सकते हैं । एक भी दोष हो वहाँ तक चैन नहीं पड़ना चाहिए ।

धीरे धीरे गुणों को प्राप्त करते रहो । एक साथ गुण नहीं मिलेंगे । गृहस्थ जैसे धीरे-धीरे धन प्राप्त करता हैं, उसी तरह गुण प्राप्त करते रहो । जो जो गुण चाहिये उस उस गुण को देखकर खुश होते रहो । जिस गुण को देखकर आप खुश हुए वह गुण आपका हो गया ।

कहीं भी आप गुण देखो, आखिर इसका मूल भगवानमें दिखेगा । सर्व गुणों पर एकमात्र भगवान की मालिकी हैं । एक कंपनी का माल आप किसी भी दुकानमें से लो, पर आखिर वह माल उसी ही कंपनी का न ? दुकान का माल तो कम होता हैं, पर यहाँ गुण तो जैसे देते जाओ वैसे बढ़ते जायेंगे ।

इसलिए ही तो यशोविजयजी जैसे भगवान को प्रार्थना करते हैं :

भगवन् ! आपके पास तो अनंत गुणों को खजाना हैं । एक भी गुण मुझे दे दो तो एतराज क्या हैं ? इसमें विचारना क्या ? सागरमें से एक भी रत्न लेते क्या खामी आती हैं ?

सागरमें तो फिर भी कम होते हैं, पर यहाँ तो कम होने का सवाल ही नहीं ।

यह इसलिए कहता हूं : आप एकमात्र भगवान को पकड़ो ।

भगवान को कह दो :

'देशो तो तुमही भलुं, बीजा तो नवि याचुं रे ।'

- उपा. यशोविजयजी

भगवन् ! आपको छोड़कर मुझे दूसरे कहीं से कुछ मांगना ही नहीं हैं । इसके अलावा दूसरा क्या करने जैसा हैं ?

हम तो ऐसी प्रवृत्तिमें जिंदगी पूरी करते हैं : जिस से लोगों से प्रशंसा मिला करे ।

अब मैं आपको पूछता हूं : लोगों से प्रशंसा हो तो अच्छा या निंदा हो तो अच्छा ?

आपकी प्रशंसा हो तो आपका यश नामकर्म खपता हैं ।

आपकी निंदा हो तो आपका अपयश नामकर्म खपता हैं ।

अब कहो : क्या अच्छा ?

हमारी जिंदगी की समग्र प्रवृत्तिओं का केन्द्र लोकरंजन नहीं हैं न ? लोकरंजन नहीं, लोकनाथ (भगवान) का रंजन करो ।

⌘ ⌘ ⌘

'कह्युं कलापूर्णसूरिए' पुस्तक प्राप्त हुई । अभी तो हाथमें ही ली हैं परंतु,

First Impression is last Impression

प्रथम दृष्टिमें ही प्रभाविक हैं ।

– गणि राजयशविजय

सोमवार पेठ, पुना

वढवाण, वि.सं. २०४७

१९-१०-२०००, गुरुवार
कार्तिक कृष्णा - ७

✱ हमारी सामायिक आजीवन हैं । इसका अर्थ यह हुआ : जीवनभर समता रहनी चाहिए । समता हमारी श्वास बननी चाहिए । श्वास के बिना नहीं चलता तो समता के बिना कैसे चलेगा ? यही मुनिजीवन का प्राण हैं ।

श्रावक तो सामायिक पूरी कर लेता हैं, फिर शायद समतामें न रहे तो फिर भी चलेगा, साधु समतामें न रहे वह कैसे चलेगा ? 'मैं आत्मा हूं' इतना नित्य याद रहे तो ही समता नित्य रह सकती हैं । पर आश्चर्य हैं : दूसरा सब कछ याद रखनेवाले हम आत्मा को ही भूल गये हैं । बारात में दुल्हे को ही हम भूल गये हैं ।

जैसा वर्तन हम हमारे साथ करते हैं, वैसा ही वर्तन जगत के सर्व जीवों के साथ करना हैं ।

✱ भगवान सर्व जीवों को समान रूप से गिनते हैं । भगवान के यहाँ कोई मेरे-तेरे का भेद नहीं हैं ।

सर्व जन्तुसमस्याऽस्य न परात्मविभागिता ।

- योगसार

हम इनके मार्ग पर चलनेवाले हैं । हमसे मेरे-तेरे का भेद कैसे हो सकता हैं ?

भगवान तो सूर्य की तरह किसी भी भेद के बिना सर्वत्र प्रकाश फैला रहे हैं । सूर्य तो फिर भी अस्त हो सकता हैं । राहु से ग्रस्त या बादल से ढक सकता हैं । भगवान तो सदा उदय पा रहे हैं, सदा प्रकाश फैला रहे हैं । करुणा के प्रकाश को पकड़ने मात्र हमें सन्मुख होने की जरुरत हैं ।

यह आर्हती करुणा कुछ ही काल नहीं, सर्व काल और सर्व क्षेत्रमें बरस रही हैं । यह अगर नहीं बरसती होती तो विश्वमें अराजकता फैल गई होती । समग्र विश्व का मूलाधार भगवान की यह करुणा ही हैं । अरिहंत व्यक्ति के रूपमें बदलते रहते हैं, लेकिन आर्हन्त्य शाश्वत हैं । इसलिए ही आर्हती करुणा भी शाश्वत हैं । इसलिए ही सिद्धर्षिने उपमितिमें संसार को नगर बनाकर सुस्थित (भगवान) को महाराजा के रूपमें बताये हैं । इस संसार नगर के महाराजा भगवान हैं, यह समझमें आता हैं ? यह समझने के लिए ही हम इस ग्रंथ का अभ्यास कर रहे हैं।

(१६) चक्खुदयाणं ।

चक्षु से यहाँ द्रव्य आँख नहीं, पर विशिष्ट आत्म धर्मरूप तत्त्व के अवबोध (ज्ञान) का कारण श्रद्धारूप आँख लेनी हैं । श्रद्धा-रहित आदमी आध्यात्मिक जगतमें अंधा ही हैं । अंधे को भौतिक पदार्थ नहीं दिखते । श्रद्धाहीन को परम चेतना नहीं दिखती, तत्त्व का दर्शन नहीं होता ।

श्रद्धा की ऐसी आँख अभय मिलने के बाद ही मिलती हैं । अभय मतलब स्वस्थता । चित्त स्वस्थ और प्रशांत बनने के बाद ही श्रद्धा की आँख मिलती हैं । जिसके चित्तमें अभय का अवतरण नहीं हुआ वह श्रद्धा की आँख के लिए आशा नहीं रख सकता । यहाँ पक्षपात नहीं हैं, पर योग्यता की बात हैं ।

आँख के बिना जगत के दर्शन नहीं होते ।

अंतर चक्षु के बिना आत्मा के दर्शन नहीं होते । किंतु हमें आत्मा के दर्शन करने कहाँ हैं ? इसके लिए कोई लगन है ? इधर-उधर के कैसे विषयों में फंस गये हैं हम ?

नव पूर्व तक पढे हुए भी, यह चक्षु न मिले हो तो अंधे हो सकते हैं ।

प्रकरण ग्रंथ भी कौन याद करते हैं ? व्याख्यान यों ही चलते हैं न ? प्रकरण ग्रंथों की जरुरत हैं व्याख्यानमें ?

'तत्त्वरुचि जन थोड़ला रे' पू. देवचंद्रजी के ३०० वर्ष पहले के उद्गार आज भी सच्चे ही लगते हैं । शायद हर कालमें ज्यादातर मानव-समूह ऐसा ही होता होगा । ऐसे पंचम कालमें तो सविशेष ऐसा ही होगा ।

'एगो मे सासओ अप्पा ।' रोज संथारा पोरसीमें बोलते हैं, फिर भी आत्मा याद नहीं आती । आत्मा को भूल न जायें इसलिए ही तो संथारा पोरसीमें इस बातका समावेश किया गया हैं ।

मैं तो ऐसी बातें करते ही रहूंगा । चाहे आपको अच्छी लगे या न लगे, किंतु वस्तु स्थिति तो कहूंगा ही । काल पक जाएगा तब यह सब समझमें आयेगा, इतनी श्रद्धा हैं । मुझे स्वयं को भी पू.पं.श्री भद्रंकर वि.म. की कुछ बातें समझमें नहीं आती थी । आज २०-२५ साल के बाद समझमें आ रही हैं । उसी तरह आपको भी भविष्यमें यह समझमें नहीं आयेगा, ऐसा मैं नहीं मानता । मैं आशावादी हूं ।

निराश करने के लिए ये सारी बाते मैं नहीं करता । आपमें इस के लिए इच्छा उत्पन्न करनी हैं । इच्छा उत्पन्न होने के बाद आगे का काम अपने आप हो जायेगा ।

✱ घेबर, जलेबी, रोटी, लड्डु आदि बनते हैं इसी गेहूं के आटे, शक्कर और घीमें से । मात्र बनाने की पद्धतिमें फरक । बात वही की वही हो, पर शास्त्रकार अलग-अलग दृष्टिकोण से कहते हैं । अनेकविध बातोंमें भी मूलभूत बात एक ही होगी । आप बराबर देख लेना ।

✱ हम सब पढनेमें ही पड़ गये, ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के लिए प्रयत्न करने लग गये । पर मात्र इतने से क्या होगा ? मोहनीय कर्म पर फटका न पड़े वहां तक कुछ नहीं होगा । मैं भक्ति पर इसलिए ही जोर देता हूं । भक्ति ही ऐसा वज्र हैं, जिससे मोह का पर्वत चूर-चूर हो जाता हैं । भक्ति से आप 'सदागम'

के उपासक बनते हो । सदागम के उपासकों को मोह कुछ कर नहीं सकता ।

मोह आपको सीखाता हैं : जीवों पर द्वेष करो ।

भगवान आपको सीखाते हैं : जीवों पर प्रेम करो ।

मेरे पास तो ऐसी ही बातें हैं । आपको अच्छी लगे तो बोलूं, ऐसा मैंने नहीं सीखा । संख्या घट जाये उसकी चिंता नहीं हैं । भगवानने जो कहा हैं, शास्त्रोंमें जो लिखा हैं और मुझे इस प्रकार जो अच्छा लगा हैं, वही मैं कहूंगा, आपको अच्छी लगे वह नहीं ।

गुलाबजामुन आदि के बहुत स्वाद चखे । अब आत्माका स्वाद चखो । इसके लिए रुचि उत्पन्न करो । इस रुचि के बिना आध्यात्मिक क्षेत्रमें हम अंधे हैं, इतना नक्की समझें ।

✱ आंखवाला आदमी रास्तेमें सीधा चलता हैं या टेढा-मेढा ? स्वाभाविक हैं : देखता आदमी रस्तेमें कहीं भी नहीं टकरायेगा ।

श्रद्धा की आँखवाला आदमी आध्यात्मिक क्षेत्रमें टेढा-मेढा नहीं चल सकता ।

⌘ ⌘ ⌘

धनमें ही संतोष न मानें

पूज्यश्रीने पूछा : (अमेरिकन जिज्ञासु मित्रों को) रोज सुबह होते ही कहाँ दौड़ते हो, क्यों दौड़ते हो ? धन कमाने के लिए ? उसके बाद सुख मिलता हैं? ठीक हैं । धन जीवन ही निर्वाह का साधन हैं, लेकिन उसमें सुख हैं ऐसा मानकर संतोष प्राप्त न करें । इस तीर्थमें क्यों आये हो ? क्या कमाई होगी ? कमाईमें फरक समझ में आता हैं ? प्रभुभक्ति द्वारा ही सच्ची कमाई होगी ।

- सुनंदाबहन वोरा

वि.सं. २०२७, आधोई

२०-१०-२०००, शुक्रवार
कार्तिक कृष्णा - ८

' ✱ काव्य-कोश इत्यादि का पू.पं. मुक्तिविजयजी (लाकडीया) के पास अभ्यास करके मांडवी (वि.सं. २०१३) चातुर्मासमें पू. कनकसूरिजी के पास मैं गया और कहा : 'कोई संस्कृत ग्रंथ पढाईए।'

पूज्यश्रीने कहा : अब स्वयमेव पढने का प्रयत्न करो । दूसरों के भरोसे कहाँ तक रहना हैं ।

गुरुदेव के आशीर्वाद से मैंने अपने आप पढना शुरु किया। पांडव-चरित्र के एक घण्टेमें मुश्किल से दस श्लोक पढ सकता था । पर जो श्लोक पढता वह बराबर पढता । इससे धीरे-धीरे संस्कृत ऐसा खुल गया कि कोई भी ग्रंथ हाथमें आते वह बराबर खुल ही जाता हैं । उस चातुर्मासमें तब हीर-सौभाग्य, कुमारपाल-चरित्र, पांडव-चरित्र इत्यादि का वांचन किया । दूसरा काम क्या होता हैं साधुको ?

इन सबमें भगवान की कृपा ही काम कर रही हैं, ऐसा मुझे नित्य लगता । इसलिए ही भक्ति पर मैं ज्यादा से ज्यादा झुकाव देता गया । आज भी देता हूं । पू.पं. मुक्तिविजयजी म. कहते : मैं यह प्राकृत व्याकरण और कोश साथमें ले जाना

चाहता हूं । मैं कहूंगा : जिन भक्ति को मैं भवांतरमें भी साथ ले जाना चाहता हूं । इसलिए ही मैं भक्ति नहीं छोड़ता हूं, भविष्यमें भी नहीं छोडूंगा ।

दूसरा साथमें क्या आयेगा ? भक्त, शिष्य, पुस्तक या उपाश्रय इत्यादि सांथमें नहीं आयेंगे, ये भक्ति के संस्कार ही साथमें आयेंगे, गृहस्थों को धन, परिवार, मकान आदि की अनित्यता समझानेवाले हम इतना भी नहीं समझ सकते ?

(१७) मग्गदयाणं ।

भगवान मार्ग को देनेवाले हैं ।

चित्त की अवक्र गति वह मार्ग हैं । मार्ग मिलने के बाद मन हमेशा सीधा ही चलता हैं । कर्म का क्षयोपशम बढते जाये त्यों त्यों आगे-आगे के पदार्थ मिलते जाते हैं, अभय से भी चक्षुप्राप्तिमें, चक्षु से भी मार्ग, मार्ग से भी शरण आदि की, उत्तरोत्तर ज्यादा से ज्यादा क्षयोपशम द्वारा प्राप्ति होती हैं ।

* देव-गुरु पर की अभी की हमारी श्रद्धा उपर-उपर की हैं । मांगकर लाये हुए आभूषण जैसी हैं । ये चले जाय उसमें देर कितनी ? कुछ दूसरा सुनने पर तुरंत ही चली भी जाती हैं, परंतु ज्ञान ज्यों ज्यों गहरा होता जाता हैं, त्यों त्यों श्रद्धा अपनी बनती हैं । स्वयंभू श्रद्धा नहीं जाती ।

* **सांप चाहे जितना टेढा चले, लेकिन बिलमें घूसता हैं तब सीधा ही होता हैं, उसी तरह विशिष्ट गुणस्थानक के लिए स्वरसवाही क्षयोपशम विशेषमें मन सीधा चलने लगता हैं । मनका सीधा चलना यही मार्ग हैं ।**

* दूर-दूर की आशा हम रखते हैं, पर नजदीकमें जो तत्काल हो सकता हैं, उसके लिए प्रयत्न नहीं करते हैं । मोक्षमें जाना हैं, पर सम्यक्त्वादिमें प्रयत्न नहीं करना हैं । सम्मेतशिखर जाना हैं, पर गुरुकुल तक भी जाने की तैयारी नहीं हैं । यह एक आत्मवंचना हैं । इससे बचें ।

ऐसी शिक्षाएं बहुत बार दे चूका हूं, 'सेठ की शिक्षा दरवाजे तक' ऐसा नहीं होता हैं न ?

देव और गुरु ज्यादा से ज्यादा तो पुष्ट निमित्त बनेंगे, पर

उपादान आत्मा तो आपको ही तैयार करनी पड़ेगी । आपके बिना दूसरा कोई भी नहीं कर सकता । मैं आपको कहने के अलावा क्या कर सकता हूं ? ऐसे तो मुझे इस ग्रंथमें जल्दी आगे जाना हैं, पर बीच बीचमें आपके योग्य ऐसी हितशिक्षाएं न दूं तो अपराधी गिना जाऊं ।

✱ मार्ग अर्थात् चित्त की सीधी गति । यहाँ स्वरसवाही क्षयोपशममें हेतु, स्वरूप और फल से शुद्ध प्रशम सुख का आनंद अनुभव करने को मिलता हैं । इस आनंद को बताने के लिए पू. हरिभद्रसूरिजीने यहाँ 'सुखा' शब्द का प्रयोग किया हैं, पंजिकाकार पू. मुनिचंद्रसूरिजीने 'सुखा' शब्द का अर्थ 'सुखासिका' किया हैं । सुखासिका याने प्रशम सुख की मिठाई !

ऐसी प्रशम सुखकी मिठाई मैं अकेला खाऊं तो नहीं चलता, मैं सभी को देना चाहता हूं । हमारे फलोदीमें भीखमचंदजी जलेबी लाकर घर के कोनेमें बैठकर अकेले-अकेले खाते थे । किसी को नहीं देते थे । कारणमें कहते : मैं अब कितने दिन जीऊंगा ? तुम तो बहुत खाओगे । मैं कितने दिन ?

मैं ऐसा कंजूस होना नहीं चाहता । प्रशम की मिठाई सबको मिले ऐसी भावना रखता हूं ।

अंदर के प्रशम सुख का अंतरंग कारण कर्मों का क्षयोपशम हैं । बाहर का कारण गुरु, प्रतिमा आदि हैं । कर्मों का क्षयोपशम न हुआ हो तो बाहर के कारण गुरु, प्रतिमा आदि कुछ नहीं कर सकते ।

यह प्रशम का सुख दिन-प्रतिदिन बढना चाहिए । यदि इसे बढाते न रहे तो घटता रहेगा । व्यापारी जिस दिन नहीं कमाता उस दिन कुछ खोएगा ही । दिन-दिन बढता जाये वहीं सानुबंध प्रशम कहा जाता हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

वि.सं. २०४६, भरूडीया - कच्छ

२१-१०-२०००, शनिवार
कार्तिक कृष्णा - ९

* अरिहंत की मैं इसलिए प्रशंसा नहीं करता कि मेरे देव हैं । मैं मेरे गुरु की इसलिए प्रशंसा नहीं करता हूं कि वे मेरे गुरु हैं । मेरे गुरु हैं, इसलिए गुरु की प्रशंसा करनेमें अहं का ही पोषण हैं । क्योंकि उसमें गुरु की महत्ता नहीं हैं, अहं की महत्ता हैं । मैं महान हूं इसलिए मेरे गुरु महान हैं, ऐसा इससे सूचित होता हैं ।

गौतमस्वामी स्वयं के जीवन द्वारा हम सबको ऐसा कह रहे हैं : मैं तो अभिमान से भरा हुआ एक पामर कीड़ा था। मुझे विनयमूर्ति बनानेवाले, मुझे अंतर्मूहूर्तमें द्वादशांगी रचने का बल देनेवाले भगवान हैं । मेरे भगवान हैं, इसलिए प्रशंसा नहीं करता, पर वास्तविकता ही मैं आपको बताता हूं ।

गौतमस्वामी के हृदयमें भगवान के प्रति अपार बहुमान था। जिन के हृदयमें भगवान के प्रति बहुमान हैं, उनको भगवान का कभी विरह पड़ता ही नहीं हैं ।

'दूरस्थोऽपि समीपस्थो, यो यस्य हृदये स्थितः ।'

जो जिसके हृदयमें हो वह उसके लिए दूर होने पर भी नजदीक

ही हैं । नजदीक होने पर भी दूर हैं, यदि बहुमान न हो ।

ऐसे गणधर भगवंतोंने भगवान को निकटता से देखे हैं, अनुभव किया हैं । और उन्होंने जो सूत्र बनाये है, उनके द्वारा भगवान की महिमा हमें जानने को मिलती हैं ।

भगवान के प्रति ज्यों ही बहुमान हमारे हृदयमें जगा त्यों ही हमारे हृदयमें भगवान की शक्ति सक्रिय हुई समझें ।

(१७) मग्गदयाणं ।

चित्तमें प्रशम भाव उत्पन्न हो तो ही समझें : हम मार्ग पर हैं ।

इस चारित्र के द्वारा प्रशम भाव न मिला तो क्या मिला ? भोजन भूख मिटाने के लिए हैं । भोजन से भूख ही न मिटे तो भोजन का क्या मतलब ?

रोटी – सब्जी – दाल – चावल के नाम लेने मात्र से पेट भर नहीं जाता । संथारा पोरसी इत्यादि मात्र बोलने के लिए नहीं हैं । मात्र बोलने से नहीं, उसे भावित बनाने से हृदयमें प्रशम भाव उत्पन्न होता हैं ।

सानुबंध क्षयोपशम से मिला हुआ प्रशम भाव ही टिक सकता हैं, नहीं तो चला भी जाता हैं । सानुबंधमें चेतना निरंतर ऊर्ध्वारोहण के मार्ग पर होती हैं । निरनुबंधमें चेतना अटक जाती हैं । अटक जाये तब ऊर्ध्वारोहण प्राप्त करती हुई चेतना नीचे जाती हैं । यह नियम हैं । पक्का व्यापारी लाख रूपये कमाता हैं, फिर उन्हें कम नहीं करता, उसमें वृद्धि ही करता रहता हैं । व्यापारी की यह कला इस अर्थमें हमें सिखने जैसी हैं ।

कमठ का मरुभूति के प्रति गुस्सा सानुबंध था । इसलिए ही १० भव तक चला । दोषों का अनुबंध तो प्रत्येक भव का हैं । अब हमें गुणों का अनुबंध बनाना हैं ।

जिस दोष के लिए पश्चात्ताप या प्रायश्चित्त नहीं होता वह दोष सानुबंध बनता हैं । जिस गुण के लिए पश्चात्ताप या प्रायश्चित्त होता हो वह गुण सानुबंध नहीं बनता ।

क्लिष्ट कर्म का बंध न हो, वह सानुबंध न बन जाय उसकी हमें नित्य हृदयपूर्वक संभाल लेनी हैं ।

✱ हरिभद्रसूरिजी यहाँ लिखते हैं : अन्य (अजैन) योगाचार्य भी मार्ग की (प्रशम भाव की) यह बात अन्य शब्दोंमें स्वीकारते हैं। उनके शब्द ये रहे : 'प्रवृत्ति, पराक्रम, जय, आनंद और ऋतंभरा।'

✱ पंजिकाकार मुनिचंद्रसूरिजीने हरिभद्रसूरिजी के भावों को बहुत ही सुंदर ढंग से खोले हैं । स्व-अनुभव के बिना ऐसे भाव खोल नहीं सकते ।

षोडशकमें प्रणिधान, प्रवृत्ति, विघ्नजय, सिद्धि और विनियोग - ये पांच आशय बताये हुए हैं। इस संदर्भमें इन्हें याद करने जैसा हैं।

सम्यग्दर्शन से पूर्व तीन करण हैं । यथाप्रवृत्ति - करण, अनिवृत्तिकरण और अपूर्वकरण । अनिवृत्तिकरण के समय जगत के सभी जीवों का आनंद एक समान होता हैं, ऐसा मुझे याद हैं । कुछ भूल नहीं हो रही हैं न मेरी ?

पू. भाग्येशविजयजी : आपको तो भगवान भूल कराते ही नहीं ।

पूज्यश्री : वृद्धावस्था हैं । स्मृतिमें गड़बड़ भी हो सकती हैं । कुछ भूल हो तो बतायें ।

✱ प्रवृत्तिमें अपूर्वकरणादि, पराक्रममें प्रवृत्ति के बाद का कार्य, वीर्योल्लास द्वारा अपूर्वकरण से आगे की भूमिका, जयमें विघ्नजय, आनंदमें सम्यग्-दर्शन की प्राप्ति का आनंद, ऋतंभरामें सम्यग्-दर्शन पूर्वक भगवान की पूजा इत्यादि का समावेश कर सकते हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

आपकी तरफ से भेजी पुस्तक 'कहे कलापूर्णसूरि' मिल गयी हैं । पुस्तक भेजने के बदल आपका खूब खूब आभार । कई समय से पुस्तक प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे, बल्कि प्राप्त नहीं हो सकती थी, जो आपकी कृपा से हमें मिल गई हैं ।

- *महासती*
राजकोट

वि.सं. २०५०, मद्रास

२२-१०-२०००, रविवार
कार्तिक कृष्णा - १०

✱ (१८) सरणदयाणं ।

भयसे व्याकुल बने हुए को भगवान आश्वासन देते हैं । जीव भयभीत हैं उसका कारण अंदर पड़े हुये राग-द्वेष के संस्कार हैं । भगवान ही इस राग-द्वेष का शमन कर सकते हैं ।

भय से आर्त्त (पीडित) जीवों का त्राण करना वह शरण हैं । शरण मतलब आश्वासन ।

'चिन्ता मत कर । तेरा रोग मिट जायेगा ।' डोंकटर के इतने वाक्य मात्र से दर्दी को आश्वासन मिलता हैं, उसी तरह भगवान हमारे भाव रोग के लिए आश्वासन देते हैं । हम सब दर्दी ही हैं न ?

इस संसारमें नरकादिरूप दुःख की परंपरा हैं, राग-द्वेष रूप संक्लेश हैं । भगवान इन सबमें से मुक्त बनाते हैं ।

भगवान कोई हाथ पकड़कर शरण नहीं देते, पर आपके हृदयमें तत्त्वचिंतन देते हैं । तत्त्वचिंतन जिसे मिल गया, वह कभी राग-द्वेष से दुःखी नहीं बनेगा ।

फलोदी के फूलचंदजी झाबक ऐसे तत्त्वचिंतक श्रावक थे । चतुर्दशी जैसे दिनोंमें रात को पौषध करते तब रात के एक-दो

भी बज जाते । ऐसे तत्त्वचिंतक को कभी राग-द्वेष नहीं होते, व्याधिमें असमाधि नहीं होती । अंतिम समयमें उन्हें भयंकर पीड़ा हुई थी, पर कहीं ऊँह ऐसा भी नहीं या चेहरे पर वेदना का कोई चिह्न नहीं । पू.पं. भद्रंकरविजयजी म. को अंतिम समयमें भयंकर पीड़ा थी, पर तत्त्वचिंतक थे न ? इसलिए ही व्याधिमें समाधि रख सके। बिमारीमें उन्होंने पिंडवाड़ा से आधोई चातुर्मासमें (वि.सं. २०३३) पंत्र लिखा था । उस पत्रमें उन्होंने लिखा था : पीड़ा अपार हैं, किंतु मन **'उपयोगो लक्षणम्'** के चिंतनमें रहता हैं ।

अनुप्रेक्षा (स्वाध्याय का ४था प्रकार) द्वारा चिंतन-शक्ति प्रकट होती हैं । हर पदार्थ की अनुप्रेक्षा करो तो ही वह भावित बनता हैं । स्वाध्याय के अंतिम दो प्रकार (अनुप्रेक्षा और धर्मकथा) उपयोग के बिना कभी हो नहीं सकते । **वाचना आदि तीनमें उपयोग न हो वह फिर भी बन सकता हैं, लेकिन उपयोग के बिना अनुप्रेक्षा या धर्मकथा हो ही नहीं सकते ।**

भगवान ऐसे तत्त्वचिंतन का दान करके राग-द्वेषमय संसारमें आपको शरण देते हैं ।

तत्त्वद्रष्टा कभी राग के प्रसंगमें रागी या द्वेष के प्रसंगमें द्वेषी नहीं बनता । चाहे जैसी घटनामें आत्मस्वभाव से चलित नहीं ही बनता ।

इस तत्त्वचिंतन के लिए यहाँ 'विविदिषा' शब्द का प्रयोग हुआ हैं ।

✱ मुझे अनेकबार अनुभव हैं : कोई शास्त्र-पंक्ति नहीं बैठती हो तो मैं स्थापनाचार्य को भावपूर्वक वंदन करके बैठता हूं । चित्त स्वस्थ बनता हैं । और उपर से करुणा बरसती हो वैसा लगता हैं । कठिन लगती पंक्ति तुरंत ही बैठ जाती हैं।

बहुमानपूर्वक पढा हुआ हो तो ही पंक्ति का रहस्य हाथमें आता हैं ।

✱ विविदिषा याने तत्त्वचिंतन की तीव्र इच्छा ! जिज्ञासा । यह होती हैं तब शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, विज्ञान, ऊह-अपोह और तत्त्व का अभिनिवेश (आग्रह) बुद्धि के आठ गुण प्रकट होते हैं ।

ऊह याने समन्वय अथवा सामान्य ज्ञान ।

अपोह याने व्यतिरेक अथवा विशेष ज्ञान ।

⌘ ⌘ ⌘

वि.सं. २०५०, मद्रास

२३-१०-२०००, सोमवार
कार्तिक कृष्णा - ११

(१८) सरणदयाणं ।

* भगवान अमुक को सूर्य की तरह प्रकाशित करते हैं, अमुक के लिये दीपक जैसा प्रकाश देते हैं । जैसी जिसकी योग्यता ।

वर्षा समान ही होती हैं । आप घड़े जितना ही पानी भर सकते हो । वर्षा समान ही होती हैं । आप खेतमें जो बोते हो उसे उगाता हैं : गेहूं हो या बाजरा ! बबूल हो या आम ! पानी को कोई पक्षपात नहीं हैं । भगवान की वाणी को भी कोई पक्षपात नहीं हैं । आपकी योग्यता के अनुसार वह परिणाम पाती हैं ।

भगवान की वाणी से श्री संघमें शक्ति का संचार होता हैं। आज भी वह शक्ति काम कर रही हैं । भगवान भले मोक्षमें गये हो, शक्ति के रूपमें यहीं पर हैं ।

*** भगवान ही अभय आदि देते हैं । यहाँ भगवान का स्वयं कर्तृत्व भले गौण हो, लेकिन भक्त के लिए भगवान का कर्तृत्व ही मुख्य हैं । भोजन की तरफ से स्वयं कर्तृत्व भले गौण हो । क्योंकि भोजन बनाने की, चबाने की, पचाने की सभी क्रियाएं हमने ही की हैं । भोजन स्वयं की तरफ**

से संपूर्ण निष्क्रिय हैं । फिर भी भोजनने ही तृप्ति दी ऐसा हम नहीं मानते ? पानीने ही प्यास बुझाई, ऐसा नहीं मानते ? भोजन और पानी बगैरहमें निमित्त की महत्ता स्वीकारते हैं, मात्र भगवानमें इस बात का स्वीकार नहीं करते हैं । भगवान भले स्वयं की तरफ से निष्क्रिय हैं, फिर भी हमारे लिए यही मुख्य हैं । भोजन के बिना पत्थर इत्यादि से भूख नहीं मिटा सकते । पानी के बिना पेट्रोल आदि से प्यास बुझा नहीं सकते । भगवान के बिना आप अन्यसे अभय आदि नहीं प्राप्त कर सकते ।

✱ शरणागति अद्‌भुत पदार्थ हैं । गुरु के पास केवलज्ञान न हो फिर भी उनकी शरणमें आया हुआ केवलज्ञान प्राप्त कर सकता हैं । छद्मस्थ गौतमस्वामी के ५० हजार शिष्य केवलज्ञान प्राप्त कर चूके थे । गुरु की शरण भी इतना सामर्थ्य धारण करती हो तो भगवान की शरण क्या नहीं कर सकती ?

आप कहेंगे : तो फिर भगवान की शरणमें रहे हुए गौतमस्वामीने स्वयं केवलज्ञान क्यों नहीं पाया ?

गौतमस्वामी को भगवान की भक्ति ही इतनी मीठी लगी थी कि उनको केवलज्ञान की कुछ पड़ी ही नहीं थी । 'मुक्ति थी अधिक तुज भक्ति मुज मन वसी ।' इस पंक्ति के वे जीवंत दृष्टांत थे । स्वयं के जीवन से शायद हमारे जैसे को वे ऐसा समझाना चाहते हैं : आप गुरुभक्ति के पीछे सब कुछ गौण करें । एक गुरु-भक्ति होगी तो सब कुछ मिल जायेगा ।

✱ भगवान भयभीत प्राणीको अभय आदि देनेवाले हैं ।

बाहर के भयों से ही नहीं, अंदर के राग-द्वेष आदि से जीव बहुत परेशान हैं । बाहर के भय हैरान नहीं कर सकते, यदि अंदर राग-द्वेष न हो । राग-द्वेषादि ही मुख्य विह्वल करनेवाले परिबल हैं । जिसके ये खतम हो गये या मंद हो गये वे तो चाहे जैसे प्रसंगमें अभय रहते हैं, चाहे जैसी घटनामें स्वस्थ रहते हैं । मृत्यु से भी उसे भय नहीं होता । आनंदघनजी की तरह वह बोल सकता हैं : 'अब हम अमर भये न मरेंगे ।'

जितने अंशमें भगवान की शरणागति आती जाये, उतने अंशमें हम रागादि परिबलों से मुक्त होते जाते हैं ।

शशिकांतभाई : शरणागति तो संपूर्ण होती हैं न ? आंशिक शरणागति कैसे हो सकती हैं ?

पूज्यश्री : ऐसा नहीं हैं । जीव स्वयं की योग्यता के अनुसार शरणागति स्वीकारते हैं । संपूर्ण शरणागति बहुत दूर की चीज हैं।

ज्यों ज्यों भक्त भगवान की शरण स्वीकारता जाता हैं, त्यों त्यों वह भगवान की शक्ति का अनुभव करता जाता हैं, स्वयं के अंदर रागादि को मंद होते देखते जाता हैं, चित्तमें प्रसन्नता बढ रही हैं, उसकी उसे भी प्रतीति होती जाती हैं । **चित्तमें प्रसन्नता का संबंध रागादि की मंदता के साथ हैं । रागादि की मंदता का संबंध शरणागति के साथ हैं ।**

भगवान तत्त्वदर्शन देकर शरण देते हैं । भगवान का तत्त्व पाया हुआ जीव इस लिए ही भयंकर व्याधि के बीच भी समाधिमें मग्न होता हैं, भगवान आपके हृदयमें तत्त्वज्ञान की स्थापना करके शरण देते हैं, हाथ पकड़कर नहीं ।

शुश्रूषा आदि बुद्धि के आठ गुणों से ही भगवान का तत्त्व पा सकते हैं ।

भगवान का तत्त्वज्ञान आप दूसरों को देते रहो । भक्त का यही काम होता हैं : भगवान के पास लेता रहता हैं और जिज्ञासुओं को देता रहता हैं ।

बुद्धि के आठ गुण यों ही नहीं मिलते, महापुण्योदय से मिलते हैं । बुद्धि का एकेक गुण मिलता जाता हैं और अनंत-अनंत पाप के परमाणुओं का विगम होता जाता हैं, इस प्रकार आगमपुरुष कहते हैं, ऐसा हरिभद्रसूरिजी यहाँ कहते हैं ।

✱ संस्कृत पर गुजराती टब्बाओंवाली (अनुवादवाली) कृतियां बहुत होगी, लेकिन गुजराती कृति पर संस्कृत टीका हो वैसा एक ही ग्रंथ हैं : 'द्रव्य-गुण-पर्यायनो रास ।'

'जैनोमें कोई विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ नहीं हैं । जैन साधुमात्र रास ही गाते हैं ।' जैनेतरोंने दिये हुए आक्षेपों के जवाबमें यह ग्रंथ पू.उपा.श्री यशोविजयजीने बनाया था ।

✱ मोहनीय, ज्ञानावरणीय आदि चारों घाती कर्मों का विगम होता हैं, तब बुद्धि के आठ गुण मिलते हैं ।

घाती कर्मों के विगम के बिना भी बुद्धि के आठ गुण हैं, ऐसा लगता हैं, किंतु वह आभास समझें । बाहर से समान दिखता हैं, लेकिन फलमें बहुत अंतर हैं ।

यहाँ निर्मल बुद्धि की बात हैं । **घाती कर्मों की मंदता के बिना बुद्धिमें निर्मलता प्रकट नहीं होती ।**

मोहयुक्त बुद्धि महत्त्वाकांक्षा से भरी होगी : मैं बराबर पढूंगा तो लोग मेरी पूछताछ करेंगे, पूजा करेंगे, नहीं पढूंगा तो कौन पूछेगा ?

कर्म-क्षय या आत्म-शुद्धि का कोई आशय वहाँ देखने नहीं मिलेगा ।

इस बात को पू. हरिभद्रसूरिजी कहते हैं कि अन्य अध्यात्मिक आचार्योंने (योगिमार्ग प्रणेता अवधूत आचार्य) स्वीकारी हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

बीलीमोरावाले जीतुभाई श्रोफ के द्वारा 'उपदेशधारा' पुस्तक मिली हैं । शैली रोचक असरकारक हैं । कथा-वार्तालाप, सूत्रात्मक निरूपण, प्रकरण के अंतमें विशेष प्रेरक परिच्छेद इत्यादि अत्यंत उपयोगी हैं ।

पसंदगी के विषय... मानव जीवनमें उदात्त भावना और गुणों के विकासमें पूरक बन सकते हैं । आपके साहित्य-संपादन के बारेमें जाना हैं । जैन गीता काव्यों का संशोधन चल रहा हैं । उसमें ज्ञानसार गीताका आपश्रीने पद्यानुवाद किया हैं उसकी नोट की हैं ।

– *डोकटर कविन शाह*

बीलीमोरा

वि.सं. २०४३, अंजार - कच्छ

२४-१०-२०००, मंगलवार
कार्तिक कृष्णा - १२

✱ भगवान की अनन्य शरण लेकर साधना करें तो मोक्ष सिद्ध कर देनेवाली ताकत यहीं से ही मिलती हैं ।

मलिनता के कारण चित्त चंचल रहता हैं । मलिनता मोह के कारण आती हैं । मलिन चित्त भगवान की शरण से ही निर्मल बनता हैं । निर्मलता आते ही चित्त स्थिर बनने लगता हैं । **स्थिरता का संबंध निर्मलता के साथ हैं । चंचलता का संबंध मलिनता के साथ हैं ।**

चंचलता पर-घरमें ले जाती हैं ।

निर्मलता स्व-घरमें ले जाती हैं ।

आश्चर्य हैं । हम स्व-घरमें ही जाना नहीं चाहते हैं, पर घर को ही स्व-घर मान लिया हैं । 'पिया ! पर-घर मत जाओ ।' इस प्रकार चेतन को सामने रखकर कहा गया हैं । चेतन अभी पुद्‌गल के घरमें भटकता हैं । भगवान की शरण ही पर-घर से बचाकर स्व-घरमें स्थिर बनाती हैं ।

विनय को समझने के लिये जिस तरह चंदाविज्झय हैं । उसी तरह शरणागति पदार्थ को समझने के लिये चउसरण - पयन्ना हैं।

✱ अजैन आत्मचिंतक अवधूत आचार्यने कहा हैं : भगवान के अनुग्रह के बिना तत्त्वशुश्रूषा वगैरह बुद्धि के गुण प्रकट नहीं होते । पानी, दूध और अमृत जैसा ज्ञान उससे प्रकट नहीं होता। भगवान की कृपा के बिना धर्म सुनने की इच्छा, नींद लाने के लिए राजा कथा सुनता हैं उसके जैसी हैं ।

विषय-तृष्णा को दूर करनेवाला ज्ञान कर्म के विशिष्ट क्षयोपशम से ही जन्म लेता हैं । अभक्ष्य (गोमांस) अस्पृश्य (चांडाल स्पर्श) की तरह वैसा ज्ञान (विषय-तृष्णा को बढानेवाला ज्ञान) अज्ञान ही कहा जाता हैं ।

भगवान की शरणागति से ही सच्चा ज्ञान मिलता हैं । सच्चे ज्ञान की निशानी यह हैं : विषय विष जैसे लगते हैं । अविरति गहरी खाई हैं । यहां सिद्धाचल पर रामपोल के पास गहरी खाई हैं न ? देखते ही कैसा डर लगता हैं ?

शरणागति का अर्थ यह हैं : भगवान मेरे उपर करुणावृष्टि कर रहे हैं, ऐसी अनुभूति हो ।

शरणागत के हृदयमें मैत्री की मधुरता होती हैं, करुणा की कोमलता होती हैं, प्रमोद का परमानंद होता हैं, माध्यस्थ्य की महक होती हैं ।

इससे प्रतीति होती हैं : मेरे उपर भगवान कृपा बरसा रहे हैं ।

✱ भगवान को कुछ अर्पण करने से ही भगवान की तरफ से कृपा मिलती हैं । कन्या ससुराल जाकर शरणागति स्वीकारती हैं तो उसे पति की तरफ से सब कुछ मिलता हैं । पति को वह इतनी समर्पित हो जाती हैं कि अपने संतान के पीछे भी वह पति का ही नाम लगाती हैं ।

भक्त भगवान की प्रीतिमें स्वयं का नाम, भक्तिमें स्वयं का रूप, वचनमें स्वयं का हृदय और असंगमें स्वयं का आत्मद्रव्य भगवानमें मिला देता हैं ।

भगवान को आप संपूर्ण समर्पित बने उसी समय प्रभु आपको स्वयं का संपूर्ण स्वरूप समर्पित कर देते हैं ।

कोठीमें रहे हुए बीजमें वृक्ष प्रकट हो नहीं सकता । अशरणागत आत्मामें प्रभु कभी प्रकट नहीं हो सकते ।

शरणागति के बिना मोह का साम्राज्य कभी नष्ट नहीं होता। मोहमें भी मिथ्यात्व मोहनीय भयंकर हैं । मिथ्यात्व मोहनीय से जीव आंख होते हुए भी अंधा बनता हैं । सभी वासनाओं का मूल कारण मिथ्यात्व की अंधता हैं । इस अंधता को मिटानेवाले सद्गुरु हैं, भगवान हैं ।

'प्रवचन अंजन जो सद्गुरु करे, देखे परम निधान'

- पू. आनंदघनजी

यह सब बनता हैं उसके बाद ही बोधि मिलता हैं । शरणागति के बिना कभी बोधि (सम्यग्दर्शन) मिलता नहीं हैं । इसलिए ही 'सरणदयाणं' के बाद 'बोहिदयाणं' लिखा हैं ।

भगवान का निर्वाण कल्याणक (दीवाली) और नया साल नजदीक आ रहे हैं । दीवाली और नये साल का उपहार – प्रभु की तरफ से मिला हैं, ऐसा मानें ।

(१९) बोहिदयाणं ।

बोधि याने जिनधर्म की प्राप्ति । तीन करण प्राप्त करके राग-द्वेष की तीव्र गांठ का भेद करके मिलता सम्यग्दर्शन वह बोधि हैं । जो शम-संवेगादि लक्षणों से जाना जाता हैं । अन्य दर्शनी इसे (सम्यग्दर्शन को) 'विज्ञप्ति' कहते हैं ।

सम्यग्दर्शन के पहले होते तीनों करण समाधि के सूचक हैं। **समाधिमें मन की (विचारों की) मृत्यु हो जाती हैं, किंतु उपयोग कायम रहता हैं ।**

* शरीर से खुराक का पता चल जाता हैं । **'पीनो देवदत्तः दिवा न भुङ्क्ते'** 'पुष्ट देवदत्त दिन को नहीं खाता ।' वह भले दिनमें नहीं खाता हो, पर रात को तो खाता ही होगा । नहीं तो इतनी हृष्ट-पुष्टता कहाँ से ? हृष्ट-पुष्ट आदमी यदि एसा कहता हो कि मैंने २०० उपवास किये हैं तो नक्की कुछ ऐसा समझें । नहीं तो उपवास का असर शरीर पर क्यों न हो ?

* शम-संवेग यह मुख्यता की दृष्टि से क्रम हैं । उत्पत्ति की दृष्टि से यह उत्क्रम समझें । इसलिए ही पहले आस्तिकता प्रकट होती हैं । फिर अनुकंपादि प्रकट होकर अंतमें शम प्रकट होता हैं ।

अभय आदि पांचों उत्तरोत्तर फल के रूपमें मिलते हैं । अर्थात् अभय मिला उसे चक्षु मिलते हैं । चक्षु मिले उसे ही मार्ग मिलता हैं। मार्ग मिला उसे ही शरण मिलती हैं । शरण मिलती हैं उसे ही बोधि मिलता हैं । अभय न मिला उसे चक्षु नहीं ही मिलते । चक्षु नहीं मिले उसे मार्ग नहीं मिलता । ऐसा उत्तरोत्तर समझें । अभय ही चक्षु का, चक्षु ही मार्ग का, मार्ग ही शरण का, शरण ही बोधि का कारण बनता हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

'कह्युं कलापूर्णसूरिए' पुस्तक मिली । पुस्तक हाथमें लेते ही उसकी आकर्षक सजावट और विशेष तो सचोट, सरल, गंभीर, अलौकिक लेखन-श्रेणि देखकर पूरी पुस्तक एक साथ पढ लेने का मन हो जाता हैं।

पू. आचार्यदेवकी वाचनाओ - व्याख्यानादि का अद्भुत सार, आपश्रीने जो अपनी कुशलता से लिखा हैं वह बहुत ही अद्भुत अप्रतिम हैं । आपकी यह पुस्तक मिलेनीयम रेकार्ड प्राप्त करे यही शुभेच्छा ।

- जतिन, निकुंज

बरोड़ा

मनफरा, वि.सं. २०५६

२५-१०-२०००, बुधवार
कार्तिक कृष्णा - १३

✱ हरिभद्रसूरिजी का प्रयत्न भगवान के प्रति बहुमान पैदा करने के लिए हैं । भगवान के प्रति बहुमान भाव जागृत हुआ तो आगे की भूमिकाएं स्वयं सुलभ बन जायेंगी ।

सैनिक, सेनापति और राजा के बल से निर्भय होकर लड़ते हैं । भक्त गुरु और भगवान के बल से निर्भय बनकर लड़ता हैं । भक्त को भय कैसा ? भगवान का सहारा लेकर लड़नेवाला आज तक कभी हारा नहीं हैं ।

✱ कोई भी दुर्विचार आये उसकी गुरु को जान करें, भगवान को बतायें । गुरु के पास से उपाय मिलते ही भय भाग जायेगा।

✱ अभी भले द्रव्य से दीक्षा मिल गई हो, पर वास्तविक पात्रता तो अभय, चक्षु आदि के क्रम से ही मिलेगी ।

अभय, चक्षु आदिमें क्रमशः क्षयोपशम-भाव की वृद्धि होती रहती हैं । क्षयोपशम-भावमें न समझो तो मैं कहूंगा : आत्मा की शुद्धि बढती रहती हैं । क्षयोपशम की वृद्धि निरंतर होनी चाहिए। बीचमें अटक जाओ तो नहीं चलेगा । सीढियोंमें रुकते-रुकते चलो तो ऊपर कब पहुंचोगे ?

हमारी यह तकलीफ हैं : थोड़ा करके छोड़ देते हैं । धर्म-क्रियामें सातत्य नहीं रहता । सातत्य के बिना सिद्धि कैसी ?

सातत्यं सिद्धिदायकम् ।

कभी-कभी साधक एकांगी बनते भी तकलीफ खड़ी हो सकती हैं । कभी कोई ज्ञानमें पड़ता हैं तो क्रिया छोड़ देता हैं । ध्यानमें डूबता हैं तो गुरु को छोड़ देता हैं । ऐसे एकांगी बनने से भी सफलता नहीं ही मिलती ।

आत्मशुद्धि बढती जाये उसकी निशानी यह हैं : चित्तमें प्रसन्नता बढती जाती हैं, जीवनमें मधुरता बढती जाती हैं ।

इस धृष्ट आत्मा को बार बार समझायेंगे तो ही ठिकाना पड़ेगा। नहीं तो जल्दी पीघल जाये ऐसा यह जीव नहीं हैं ।

खुराक आप बराबर चबाओ तो शक्ति मिलती हैं । मुझे स्वयं को वापरते एक घण्टा लगता हैं ।

तत्त्वज्ञान को भी इस तरह चबाओ । अर्थात् चिंतन करो । तो ही अंदर भावित बनेगा, फिर आत्मा प्रतिक्षण याद आयेगी ।

आँख की किंमत ज्यादा या देखनेवाली आत्मा की ?

पैर की किंमत ज्यादा या चलनेवाली आत्मा की ?

कान की किंमत ज्यादा या सुननेवाली आत्मा की ?

जिसके कारण यह पूरी बारात निकली हैं, उस दुल्हे को (आत्मा को) हम भूल नहीं गये हैं न ?

✱ यहाँ परदर्शनीय गोपेन्द्र परिव्राजक के शब्द अंकित किये हैं । गोपेन्द्र परिव्राजक को '**भगवद् गोपेन्द्रेण**' कहकर हरिभद्रसूरिजीने सन्मान दिया हैं । कितनी व्यापक दृष्टि हैं ? कितनी गुणदृष्टि ?

गोपेन्द्रने कहा हैं : जहाँ तक प्रकृति का अधिकार रुके नहीं वहाँ तक धृति, श्रद्धा, प्रशमभाव, तत्त्व-जिज्ञासा, विज्ञप्ति (बोधि) इत्यादि गुण प्रकट नहीं होते । शायद प्रकट हुए दिखाई दें तो वह मात्र आभास समझें । असली नहीं, नकली गुण समझें ।

अभय से धृति, चक्षु से श्रद्धा, मार्ग से प्रशमभाव, शरण से तत्त्व-जिज्ञासा और विज्ञप्ति से बोधि लेने हैं । मात्र शब्दमें अंतर हैं ।

अभय, चक्षु, मार्ग, शरण और बोधि के दान से ही इसे उपयोगसंपदा कही गई हैं ।

कोई भी वस्तु दूसरे को काममें आती हो तो ही उसका मूल्य हैं । उपयोगमें न आये तो उसका कुछ भी मूल्य ही नहीं हैं । दूसरे को उपयोगी बनोगे तो ही आपके पास जो गुणशक्ति इत्यादि होंगे वे बढेंगे ।

गुरु शिष्य को ज्ञान देते हैं तो गुरु का ज्ञान घटेगा या बढेगा ?

*** पदार्थमें रस हैं, लेकिन जहाँ तक जीभ के साथ उसका संस्पर्श न हो वहाँ तक रस का अनुभव कर नहीं सकते । भगवान करुणासागर हैं, अनंत गुणों के भंडार हैं, परंतु हृदय से जहाँ तक भगवत्ता का संस्पर्श नहीं होता वहाँ तक उस भगवत्ता का अनुभव नहीं होता ।**

भगवान के १४ हजार साधु, ३६ हजार साध्वीजी, १ लाख ५९ हजार श्रावक, ३ लाख १८ हजार श्राविकाओंने भगवान की भगवत्ता का अनुभव किया था ।

भगवत्ता की अनुभूति के बिना हम सच्चे अर्थमें संघ के सभ्य बन नहीं सकते ।

⌘ ⌘ ⌘

'कहे कलापूर्णसूरि' पुस्तक के करीबन ८७५ पेज पढे हैं, किंतु... इसमें से बहुत जानने मिलता हैं, जाने हुए पर श्रद्धा बढती हैं, भक्ति की उमंग जागृत होती हैं । थोड़ा-थोड़ा पढकर उस पर विचार कर, बराबर समझकर, जीवनमें लाने का प्रयत्न करता हूं । आपश्री का खूब-खूब उपकार ।

– रायचंद, बेंगलोर

पू. भुवनभानुसूरिजी के साथ, सुरत, वि.सं. २०४८

२७-१०-२०००, शुक्रवार
कार्तिक कृष्णा - ३०

(२०) धम्मदयाणं ।

✱ साक्षात् भगवान मिल भी जाये तो भी क्या हुआ ? भगवान को पहचानने के लिये आँख चाहिए । ३६३ पाखंडी भी भगवान को सुनते हैं, पर सुनने के बाद कहते हैं क्या ? 'यह तो आडंबर हैं, आडंबर ! आडंबर से प्रभावित मत होना ।'

गोशालक ऐसा ही कहता था न ? महावीर को मैं पहले से पहचानता हूं । मैं जब साथमें था तब वह सच्चा साधक था। अब तो वातावरण तद्दन बदल चूका हैं, न साधना रही हैं, न तपश्चर्या! अब तो देवांगनाएं नाचती हैं, चामर ढोले जाते हैं ! सिंहासन पर बैठता हैं । वीतरागी को ऐसा ठाठ-बाठ कैसा ?

भगवान मिलने के बाद भी भगवान को पहचाननेवाली आंख पास में न हो तो कुछ मिलेगा नहीं ।

इसलिए ही वीरविजयजी कहते हैं :

योगावंचक प्राणिया, फल लेतां रीझे;
पुष्करावर्तना मेघमां, मगशेल न भींजे ।

भगवान की देशना सुनते योगावंचक आत्मा को ही आनंद

आता हैं । भवाभिनंदी तो मगशेल पत्थर हैं । पुष्करावर्त जैसी देशना भी उसे भीगा नहीं सकती ।

बहुमान के बिना आप भगवान की देशना सुनो तो भी व्यर्थ हैं । जिस कृति का भी आपको रहस्य समझना हो तो उसके कर्ता के प्रति बहुमान होना ही चाहिए । पू. देवचंद्रजी इत्यादि के उपर बहुमान न हो तो उनकी कृतियों का हार्द समझमें नहीं ही आयेगा।

बहुमान मुक्ति का द्वार हैं । गुणानुराग कुलकमें वहाँ तक लिखा हैं : गुण-बहुमानीको तीर्थंकर तक की पदवियां भी दुर्लभ नहीं हैं ।

अहंकार नाश हुए बिना गुणानुराग प्रकट नहीं होता ।

भगवान की सबसे बड़ी कृपा हमारे अहंकार को नष्ट करते हैं, वह हैं । इन्द्रभूति का अहंकार हटने के बाद ही वे भगवान की भगवत्ता देख सके ।

अहंकार हटने के बाद ही धर्म-श्रवण की योग्यता प्रकट होती हैं ।

अहंकार का आवरण ज्यों ज्यों दूर होता जाता हैं त्यों त्यों आपको सामनेवाले व्यक्ति के गुण दिखते जाते हैं । ज्यों ज्यों गुण दिखते हैं त्यों त्यों उसके प्रति बहुमान प्रकट होता जाता हैं, वे वे गुण आपके अंदर प्रकट होते जाते हैं ।

दोष तुरंत आ जाते हैं, गुण जल्दी नहीं आते, उसका एक ही कारण हैं : हृदयमें दोषों की तरफ पक्षपात हैं, बहुमान हैं, गुणों की तरफ नहीं हैं ।

✱ व्याकरण, काव्य, कोश इत्यादि क्यों पढने हैं ? व्याकरण, व्याकरण के लिये नहीं पढना हैं, काव्य काव्य के लिए नहीं पढना हैं, किंतु आगममें प्रवेश करने के लिए यह सब पढना हैं ।

आगमका ज्ञान भी आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए पढना हैं।

प्रकरण ग्रंथ तो आगमरूपी समुद्रमें जाने के लिए नाव समान हैं । मात्र प्रकरण ग्रंथ पढकर रुक नहीं जाना हैं, आगम-समुद्र का अवगाहन करना हैं ।

संपूर्ण आगम पढ न सकें शायद, आगमानुसारी जीवन जी न सके शायद, पर उसकी इच्छा पैदा हो जाय तो भी काम हो जाये । इच्छायोग भी मामूली वस्तु नहीं हैं ।

✱ भगवान देशना द्वारा धर्म (श्रावक-साधु को चारित्र धर्म) देते हैं । श्रावक धर्म और साधु धर्म किसे कहते हैं ?

हरिभद्रसूरिजी कहते हैं :

(श्रावक धर्मः) अणुव्रताद्युपासकप्रतिमागतक्रियासाध्यः साधुधर्माभिलाषातिशयरूपः आत्मपरिणामः, साधुधर्मः पुनः सामायिकादिगतविशुद्धक्रियाभिव्यङ्ग्यः सकलसत्त्वहिताशयामृतलक्षणः स्वपरिणाम एव ।

बारह अणुव्रत, ग्यारह प्रतिमा आदि क्रियाओं से साध्य, साधु धर्म की अभिलाषारूप आत्मपरिणाम वह श्रावक धर्म । सामायिकादिगत शुद्ध क्रिया से अभिव्यक्त होता सकल जीवों का हित हो वैसे विचारों से भरा हुआ आत्मपरिणाम वह साधुधर्म हैं।

⌘ ⌘ ⌘

'कहे कलापूर्णसूरि' पुस्तक का पठन शुरु किया हैं । बहुत ही आनंद आता हैं । पठन आगे बढता हैं त्यों त्यों प्रसन्नतामें वृद्धि होती हैं । ऐसी अच्छी-उत्तम पुस्तक भेजने के लिए आपके पास मेरा नम्र कृतज्ञता-भाव व्यक्त करता हूं ।

परमात्मा को अक्षर-देह देकर, इन अक्षरों को मोक्ष की पंक्तिमें बिठा दिये हैं ।

– *ललितभाई*

राजकोट

पू. भद्रंकरसूरिजी एवं पू. जंबूविजयजी के साथ पूज्यश्री,
वि.सं. २०४७, शंखेश्वर

२८-१०-२०००, शनिवार
कार्तिक शुक्ला - १, वि.सं. २०५७

नूतन वर्ष प्रारंभ...

आज से नये वर्ष का प्रारंभ हो रहा हैं ।

चतुर्विध संघ की आराधना निर्विघ्न हो इसलिए हमारे यहाँ नवस्मरण सुनाने की परंपरा हैं ।

पवित्र गिरिराज की छायामें नूतन वर्ष का मांगलिक सुनना परम सौभाग्य मानें । ध्यान से सुनें ।

इन शब्दोंमें ऐसी ताकत हैं, जो जीवन को मंगलमय बनाती हैं ।

(नव स्मरण के बाद)

पूज्य आचार्यदेव श्री विजयकलाप्रभसूरिजी :

भगवान के प्रति भक्ति भाव से श्री गौतमस्वामी अनंत लब्धिधर बने थे । श्री गौतमस्वामी सबके हृदयमें बसे हुए हैं । उनका नाम मंगलरूप गिना जाता हैं । उनका नाम लेने मात्र से विघ्न दूर होते हैं, कार्य सफल होते हैं ।

गौतमस्वामी के पास सब से बड़ी लब्धि समर्पण की थी। अनंत लब्धि का मूल भगवान के प्रति समर्पणभाव था ।

पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयकलापूर्णसूरिजी :

आज नूतन वर्षमें नवस्मरण, गौतमस्वामी का रास इत्यादि सुना ।

सर्व विघ्नों को नाश करनेवाले नवस्मरण पासमें होने पर भी हम दूसरी जगह दौड़ते हैं । कुछ स्मरण तो संघ को निर्विघ्न आराधना कराने के लिए ही रचे हुए हैं ।

उवसग्गहरंमें भगवान के पास गणधरों की याचना हैं :

हे भगवन् ! मुझे बोधि दो ।

सचमुच ही भगवान के प्रभाव के बिना गणधरों को भी बोधि नहीं मिलती ।

कोठीमें रहा हुआ बीज अपने आप नहीं उगता, उसी तरह भगवान के बिना हमारी भगवत्ता कभी नहीं ही प्रकट होती ।

अनेक जन्मोंमें एकत्रित किये हुए पुण्य से ही ऐसा धर्म, ऐसे भगवान मिले हैं । कैसी भूमिका पर हम आ गये ? हमें संयम मिला । आपको इसकी अभिलाषा मिली । यह कम बात है ?

भविष्य के साधु आदि संघमें से ही होंगे न ? इसलिए ही संघ गुणरत्नों की खान हैं, भगवान के लिए नमनीय हैं ।

आज के दिन को मंगलमय बनाना हो तो आप कोई भी नियम अवश्य लें ।

आप प्रतिज्ञा लेंगे वही गुरु-दक्षिणा होगी ।

⌘ ⌘ ⌘

मान सरोवर का हंस गंदे पानीमें मुंह नहीं डालता, वह मोती चुगता है, उसी तरह साधक-ज्ञानी संसार के व्यावहारिक प्रयोजन करने पड़े तो ही करते हैं, परंतु उसे प्राधान्य नहीं देते, परंतु ज्ञानी के मार्ग पर चलते हैं, जिनाज्ञा को अनुसरते हैं ।

प्रवचन देते हुए पूज्यश्री

२८-१०-२०००, शनिवार
कार्तिक शुक्ला - १, वि.सं. २०५७

✱ अनेक जन्मों के एकत्रित किए हुए पुण्योदय से यह शासन मिला हैं । शासन के प्रति बहुमान जगे वह मोक्ष की निशानी हैं ।

सर्व गुणोंमें मुख्य गुण भगवान और भगवान के शासन के प्रति बहुमान भाव जगना वह हैं । भगवान पर बहुमान अर्थात् भगवान की अचिंत्य शक्ति और भगवान के अनंत गुणों पर बहुमान हैं ।

शास्त्रों द्वारा भगवान की महत्ता ज्ञात हो त्यों त्यों हमारी आत्मा ज्यादा से ज्यादा नम्र बनती जाती हैं । इससे पुण्य पुष्ट होता रहता हैं, आत्मा शुद्ध होती रहती हैं ।

बचपनमें भगवान हमें कैसे लगते थे ? जीव विचार आवश्यक सूत्रों के अर्थ जानने के बाद भगवान की पहचान विशेष हुई न? अरिहंत के बारह, सिद्ध के आठ इत्यादि गुण जानने पर इनके प्रति विशेष बहुमान होता गया । ऐसे भगवान के आगम कैसे होंगे ? उन्हें जानने की इच्छा बढती गई ।

बहुमान दो प्रकार के हैं : (१) हेतु बहुमान : भगवान के अतिशय इत्यादि पर बहुमान । (२) सत्य बहुमान : भगवान की आत्म-संपत्ति पर बहुमान ।

इन्द्रभूति को प्रथम तो हेतु-बहुमान ही हुआ था । फिर आत्मसंपत्ति जानने पर सत्य बहुमान उत्पन्न हुआ था ।

'हेतु सत्य बहुमान थी रे, जिन सेव्या शिवराज ।'

- पू. देवचंद्रजी

जितना बहुमान स्वयं और स्वयं की शक्तिओं पर हैं, उतना बहुमान भगवान पर कहाँ हैं ? अहं को इतना बड़ा बना दिया हैं कि हमें सब कुछ छोटा लगता हैं । किसी को नमन करने का मन नहीं होता । मैं और किसी को नमन करूं ? हद हो गई !

ऐसा विचार बाहुबली जैसे को भी आ गया था । चरमशरीरी को भी ऐसा विचार रुकावट देता हो तो हम किस वाड़ी के मूले? उन्होंने तो अहं को दूर कर दिया । हम अहं को पुष्ट कर रहे हैं ।

संज्वलन अहं १५ दिन से ज्यादा नहीं टिकता । जीवनभर अहं रहता हो तो वह अनंतानुबंधी नहीं कहलाता ? भगवान के आगे भी अहं न जाये तो दूसरे कहां जायेगा ?

✱ आज नया वर्ष हैं ।

यहाँ आये तबसे (चैत्र महिने से) लगभग वाचना चालू रही हैं ।

तबीयत के कारण शायद किसी दिन बंध रही हो तो अलग बात हैं ।

मैं तो रोज गिना करता हूं : कितना समय गया ? अब कितने रहे ? मैंने १९८०में जन्म लिया । शायद मैं १०० साल भी रहूं तो भी २४ वर्ष से ज्यादा न रहूं न ?

पूज्य हेमचंद्रसागरसूरिजी : २४ तो पक्के न ? आप तो वचनसिद्ध न ?

पूज्यश्री : वचनसिद्ध शायद होऊं तो भी दूसरों के लिए, मेरे लिए नहीं । इस पर से प्रेरणा लेनी हैं । मरण की विचारणा भी कितने सारे अनर्थों से बचा देती हैं ?

मुझे याद नहीं हैं : मैंने बचपनमें कोई झगड़ा किया हो । न झगड़ा करना आता हैं, न कराना आता हैं ।

पूज्य हेमचंद्रसागरसूरिजी : झगड़ा शमाना आता हैं ।

पूज्यश्री : कितनेक ऐसे भी होते हैं कि झगड़ा न भी शमा सकूं । उस समय मैं मेरी अशक्ति और मेरी खामी देखता हूं ! उस समय मैं याद करता हूं : **'सव्वे जीवा कम्मवस'**

'येन जनेन यथा भवितव्यम् तद् भवता दुर्वारं रे'

जिस आदमी की जैसी भवितव्यता हो उसे भगवान रोक नहीं सके, समझा नहीं सके, वहाँ हम कौन ?

*** भगवान के प्रति बहुमान की मात्रा से ही हमारा संसार दीर्घ हैं या अल्प हैं, यह जान सकते हैं ।**

जिस ज्ञान को प्राप्त करने वर्षों तक मेहनत करते हैं वह भक्ति से सहजमें मिल जाता हैं, ऐसा मेरा अनुभव हैं । सूत्र सामने आते ही इसका रहस्य समझमें आ जाता हैं, इसमें मैं प्रभु की कृपा देखता हूं । जब बहुत टेन्शनमें होऊं (औदयिक भाव तो हैं न ?) तब ऐसे सूत्र, श्लोक इत्यादि बहुत ही उपयोगी बनते हैं ।

' हम सूत्र, श्लोक आदि पढे सही, परंतु उपयोग कितना करते हैं ? हमारी यही पूंजी हैं । कोई व्यापारी यदि पूंजी का ध्यान न रखे तो उसका 'टापरा' (छप्पर) उड जाये ।

मृत्यु के समय यही काममें आयेगा । कोई पोटले, पुस्तक या शिष्य इत्यादि काम नहीं आयेंगे ।

नक्की कर लो : इस जन्ममें सम्यग्दर्शन प्राप्त करना ही हैं।

पूज्य हेमचंद्रसागरसूरिजी : इसके लिए कोर्स बता दीजिए। एकाध वर्षमें प्राप्त कर लेंगे ।

पूज्यश्री : यह तो मेरे हाथमें कहाँ हैं ? एक यथाप्रवृत्तिकरण का ही कोर्स इतना लंबा हैं कि शायद अनंता जन्म भी निकल जाये । चरम यथाप्रवृत्तकरण आने के बाद ही सम्यग्दर्शन की पूर्वभूमिका का निर्माण होता हैं ।

जहाँ तक हृदय की धरती जोतकर तैयार न करें वहाँ तक बीज का बोना कैसे हो सकता हैं ?

आज सुबहमें ही मैंने बात की थी : **कोठीमें रहा हुआ बीज नहीं ऊगता उसी तरह भगवान के बिना आत्मा परमात्मा नहीं बनती ।**

अनाज की वृद्धि करनी हो तो बोना ही पड़ता हैं इतना तो किसान भी जानता हैं ।

बीजे वृक्ष अनंतता रे, प्रसरे भू-जल योग;
तिम मुज आतम संपदा रे ।

- पू. देवचंद्रजी

हमारी शक्ति पर ही इतने मुस्ताक हैं कि कभी भगवान या गुरु के समक्ष झुकते ही नहीं । नमे कौन ?

भगवान के गुण सर्वत्र व्याप्त हैं । इन गुणों का ध्यान करते समापत्ति होती हैं । स्वयं के ज्ञानादि को भगवान के गुणोंमें एकमेक बना देना वह समापत्ति कही जाती हैं । पानीमें दूध मिल गया फिर पानी कहाँ रहा ? वह दूध बन गया । इस तरह आत्मा कहाँ रही ? वह स्वयं भगवान बन गयी । उस समय ध्याता को अपूर्व आनंद आता हैं । ऐसा भाव इस जन्ममें मिल सकता हैं । पूरी संभावना हैं । फिर भी इसके लिए प्रयत्न भी कौन करता हैं ? माला-कायोत्सर्ग इत्यादि कब करने ? नींद आये तब । बूढा आदमी कुटुंबमें बेकार गिना जाता हैं, उसी तरह कायोत्सर्ग आदि की प्रक्रिया हमने एकदम बेकार गिनी हैं ।

इस जन्ममें अगर नहीं करेंगे तो कब करेंगे ? गिरिराज की गोदमें नूतन वर्षमें ऐसा संकल्प नहीं करें तो कब करेंगे ?

'निंदा के समय आगबबूला हो जानेवाला, बात-बातमें गुस्सा करनेवाला मैं हूं । अब मुझे बदलना हैं । भगवान की भक्ति के प्रभाव से मैं बदलूंगा ही ।' - ऐसा संकल्प करो ।

भगवान की भक्ति के प्रभाव से जीवों के प्रति अद्वेष प्रकट होता ही हैं ।

'सर्वे ते प्रियबान्धवाः न हि रिपुरिह कोऽपि'

- शांतसुधारस

सब तेरे प्रियबंधु हैं । यहाँ कौन शत्रु हैं ?

ऐसा सब, भगवान की भक्ति, भगवान के शास्त्र सीखाते हैं। मोह के सामने ये विचार शस्त्रों का काम करेंगे । शत्रु आक्रमण करते हो तब शस्त्र बाहर नहीं निकालनेवाला हार जाता हैं । हम शस्त्र बाहर नहीं निकालकर बहुत बार हारे हैं ।

✱ चारित्र-धर्म कितना दुर्लभ हैं ?

समिति-गुप्ति, पांच-महाव्रत यह व्यवहार चारित्र हैं ।

यह व्यवहार चारित्र ही भाव चारित्र का कारण बनेगा । यह व्यवहार चारित्र हैं । अंदर भाव चारित्र के लिए पालना हैं, यह नहीं भूलना चाहिए । ध्येय भूल गये तो व्यवहार चारित्र कुछ कर नहीं सकता ।

'जाण चारित्र ते आतमा, शुद्ध स्वभावमां रमतो रे;
लेश्या शुद्ध अलंकर्यो, मोह-वने नवि भमतो रे ।'

पू. उपा. यशोविजयजी - नवपद पूजा

यह भाव चारित्र हैं ।

पू. हरिभद्रसूरिजी तो चारित्र के बारेमें कहते हैं :

सकलसत्त्वहिताशयामृतलक्षणः स्वपरिणाम एव ।

सर्व जीवों के प्रति हितपूर्ण आशयरूप अमृत लक्षण आत्मा का परिणाम ही चारित्र हैं ।

आधाकर्मी आदि दोषमें जीवों की कितनी किलामणा होगी ? मैं समिति आदि बराबर नहीं पालूं तो जीवों की कितनी विराधना होगी ? - ऐसा ही आशय साधु के हृदयमें होता हैं ।

हमारे पू. रत्नाकरसूरिजी कभी दोषित उकाला लेना पड़े तो रोते थे । यह उकाला लेने हमें उन्हें मनाने पड़ते थे ।

अभी तो छ-छ महिने जोग करनेवाले, जोग पूरे होते ही नवकारसीमें बैठ जाते देखने को मिलते हैं ।

पूज्य हेमचंद्रसागरसूरिजी : तब पदवी का लक्ष था न ?

पूज्यश्री : बाह्य पदवी के लिए प्रयत्न करो उसके बजाय मोक्ष-पदवी के लिए प्रयत्न करो तो काम हो जाये । पांच पदवीयां हैं, उनमें साधु-पदवी मिल जाये तो भी काम हो जाये ।

१७० जिन के समय पूरे विश्वमें ९० अरब साधु होते हैं । अभी भी विश्वमें दो करोड़ केवली और दो अरब मुनि हैं । केवली के बाद तुरंत ही मुनिओं की संख्या की बात जगचिंतामणिमें की हैं । बोलो, यह मुनि-पदवी कितनी ऊंची गिनी गई हैं ?

यहां जितने नये दीक्षित हैं, जो श्लोक आदि कंठस्थ करने में समर्थ हैं, वे संकल्प करें : 'इस साल इतने श्लोक कंठस्थ करने

हैं ।' वि.सं. २०३९ के अहमदाबाद चातुर्मास के समय नये वर्षमें यह बात मैंने की थी तब एक साध्वीजीने ११ हजार नये श्लोक कंठस्थ करने की बाधा ली थी । और वह पूर्ण भी की । कौन-कौन से ग्रंथ कंठस्थ किये उसका पूरा लिस्ट हम पर भेजा था ।

दिनमें दस मिनिट भी स्वाध्यायमें संपूर्ण एकाकार बन गये तो भी काम हो जाये । परंतु इसके लिए १० घण्टे की महेनत चाहिए । अणुविस्फोट यों ही नहीं होता ।

अब दर्शन की शुद्धि के लिए कहूं । भक्तों के लिए समय आप बहुत निकालते हो, भगवान के लिए कितना निकालते हो ? मैं मात्र बोलता नहीं । ऐसा करके बोलता हूं । आप जानते हो : भक्ति के लिए मैं कितना समय निकालता हूं ।

भक्तिमें समय जाता हैं; ऐसा मैं नहीं मानता । मैं तो ऐसा मानता हूं : यही समय सफल बनता हैं । यह सब बल भगवान ही पूरा करते हैं । नहीं तो मुझमें क्या शक्ति ?

चारित्रमें जयणा इत्यादि के लिये प्रयत्नशील बनें । रत्नत्रयी शुद्ध बनेगी तो मन शुद्ध बनेगा ।

रत्नत्रयी की आराधनामें तत्पर बनो ऐसी आजके नये वर्ष के दिन शुभेच्छा हैं ।

आप अभिग्रह लोगे तो वही उत्कृष्ट गुरु-दक्षिणा होगी ।
अभिग्रह पूरा करो तब मुझे अवश्य विदित करें ।

*** संगीतकार : अशोक गेमावत**

आज नये वर्ष के दिन आशीर्वाद लेने आया हूं, खुद गाडी चलाकर आया हूं । बहुत गीत बनाये हैं, गुरुदेव के । आज जो मुझे पसंद हैं, वह बोलूंगा ।

जो जिनशासन के काज कर दिया, अर्पण जीवन सारा
कलापूर्णसूरिजी हमारा...
फलोदी नगरमें जन्म लिया हैं, पाबुदान का प्यारा
खम्मादेवी का प्यार मिला, अक्षय हैं आँखों का तारा ।
गुरु तीस वर्ष की वयमें बन गये, शासन का सितारा
कलापूर्णसूरिजी हमारा...

⌘ ⌘ ⌘

स्वाध्याय मग्नता

२९-१०-२०००, रविवार
कार्तिक शुक्ला - २, वि.सं. २०५७

*** (२०) धम्मदयाणं ।**

तीर्थ और तीर्थंकर दोनों तरण तारण जहाज हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि चतुर्विध संघ का प्रत्येक सभ्य भी तरण-तारण जहाज हैं । सुबुद्धि मंत्रीने स्वयं के राजाको जैन धर्मप्रेमी बनाया था ऐसा उल्लेख आता हैं । मयणाने श्रीपाल को धर्ममें जोड़ा था । बुद्ध-बोधित सब, साधुओं से प्रतिबोधित होते हैं । साध्वीजी से भी प्रतिबोधित होते हैं ।

इसलिए चतुर्विध संघ का एकेक सभ्य तरण-तारण जहाज का कार्य कर रहा हैं ।

योग्यता आने के बाद धर्म आते समय नहीं लगता । गुरु कहीं से भी आ ही जाते हैं । न आये तो देव भी वेष दे देते हैं। रणसंग्राममें अजितसेन राजा को वैराग्य हुआ तो देवोंने वेष दिया था। यद्यपि पूर्वजन्ममें गुरु भगवान इत्यादि कारण तो थे ही ।

हृदयमें भगवान के प्रति अनुराग जगने पर तुरंत ही भगवान की तरफ से बहता अनुग्रह का प्रवाह हमारे अंदर आने लगता ही हैं ।

काशीमें पढकर आये हुए, बड़े वादीओं को हरानेवाले महान तार्किक पू. उपा. यशोविजयजी जैसे जब भगवान की भक्ति को

सारभूत गिनाते हो तब विचारने जैसा नहीं क्या ?

आगमोद्धारक पू. सागरजीने कहा था : उपा. यशोविजयजी के ग्रंथोंमें से एक अक्षर की भी भूल नहीं निकल सकती । वे तो हरिभद्रसूरिजी के अवतार थे ।

राग यों ही नहीं मिटता । कांटा कांटे से जाता हैं, उसी तरह राग राग से जाता हैं । संसार के राग को प्रभु के रागमें बदलना, यही भक्ति का बीज हैं ।

भगवान के उपर बहुमान ज़गे तो भगवान के वचन के ऊपर भी बहुमान जगता ही हैं ।

'सव्वे जीवा न हंतव्वा' यह भगवान का वचन हैं । इसलिए ही भक्ति आखिर विरति तरफ ले जाती हैं ।

(२१) धम्मदेसयाणं ।

भगवान जीवों की भव्यता (योग्यता) के अनुसार देशना देते हैं, योग्यता से ज्यादा नहीं । आनंद आदि श्रावकों के लिए भगवानने कभी सर्वविरति का आग्रह नहीं रखा ।

भगवान देशनामें क्या कहते होंगे ? हरिभद्रसूरिजीने दिया हुआ नमूना देखो : **प्रदीप्तगृहोदरकल्पोऽयं भवः ।**

यह पूरा संसार जलता हुआ घर हैं ।

हैदराबादमें मैं छोटा था तब पांच मंजिल की एक थियेटरमें नीचे आग लगी थी । पांचवीं मंजिल पर लोग सिनेमा देख रहे थे । उस समय लोग क्या करेंगे ? सिनेमा देखने को बैठेंगे या बचने की कोशीश करेंगे ?

संसार जलता घर हैं । ऐसा अभी लगा नहीं हैं । लगे तो एक क्षण भी कैसे रह सकते हैं ?

चारों तरफ से भय लगता हो तभी सच्चे अर्थमें शरण स्वीकारने का मन होता हैं ।

मुझे स्वयं को गृहस्थावस्थामें दो-चार वर्ष तक ऐसा अनुभव हुआ था । संसारमें रहता था पर वेदना पारावार ! छ काय की हिंसा कहाँ तक करनी ? मनमें नित्य वेदना रहती थी ।

ऐसे भाव के साथ दीक्षा ली हो तो यहाँ आने के बाद छ कायके प्रति कितना प्रेम उभरे ?

निवासः शारीरादिदुःखानाम् ।

✱ यह संसार तो शारीरिक आदि दुःखों का निवास हैं ।

मद्रासमें थे तब ऐसे बहुत केस देखने को मिलते, जो देखते हृदय काँप उठता था । आठ वर्ष के बालक की कीडनी फेल ! एक वर्ष के बालक के हृदय का वाल्व काम न करें ! किसी बालक को पोलियो !

हम सब रोग लेकर ही जन्म लेते हैं । रोग नहीं आता यह महापुण्योदय मानें ।

✱ अयोग्य जीव थोड़ा समझदार होता हैं और माता-पता को छोड़ देता हैं ।

अयोग्य विद्वान होता हैं और गुरु को छोड़ देता हैं ।

अयोग्य पूजनीय हो जाय तो भगवान को छोड़ते भी समय कितना ?

रोहगुप्त, जमालि इत्यादिने ऐसा ही किया था न ?

जिन भगवानने दीक्षा दी, ११ अंग पढाये, उन भगवान का एक वाक्य मानते क्या तकलीफ थी ? किंतु मिथ्यात्व-युक्त अभिमान अंदर बैठा होता हैं न ? वह ऐसे नहीं होने देता ।

✱ मेरे परम उपकारी पू. रामचंद्रसूरिजी के प्रवचनों से ही मुझे संसार से वैराग्य हुआ था । वे ऐसा वैराग्य प्राप्त कराने में अति कुशल थे । राजनांदगांवमें पू. रूपविजयजी के पास उनके जैन प्रवचन आते थे । गुजराती नहीं आती होने पर भी वह पढने के लिए प्रयत्न करता था । वह पढकर मुझे संसार से वैराग्य हुआ था ।

हरिभद्रसूरिजी कहते हैं : **न युक्त इह विदुषः प्रमादः, यतः अतिदुर्लभेयं मानुषावस्था ।** यहाँ विद्वानों को थोड़ा भी प्रमाद करने जैसा नहीं हैं । क्योंकि यह मनुष्य-अवस्था दुर्लभ हैं ।

✱ योगदृष्टि समुच्चयमें खास लिखा हैं : अर्थी को ही यह ग्रंथ दें । इस ललित विस्तरा के लिए भी पहले योग्यता बताई हुई हैं ।

व्यापारी माल किसे देता हैं ? जरूर हो उसे ही । जबरदस्ती देने जाय तो किंमत घटानी पड़े । चालाक व्यापारी ग्राहक के हृदयमें इच्छा कराता हैं ।

पूज्य कलाप्रभसूरिजी : आपने यह सब किया था ?

पूज्यश्री : किया हुआ नहीं तो जाना हुआ तो हैं ही । न जानें तो इन वणिकों को कैसे समझा सकूं ? आखिर तो हम वणिक के गुरु ही न ?

अतिदुर्लभा इयं मानुषावस्था ।

यहाँ से जाने के बाद फिर यह अवतार मिलना हमारे हाथमें हैं ? आप भगवान के पास बोधि मांगो पर कुछ भी आराधना करो नहीं तो उस आदमी के जैसे मूर्ख हो, जो थालीमें रहा हुआ खाता नहीं हैं और भविष्य के भोजन के लिए याचना करता रहता हैं ।

गौतमस्वामी प्रमादी थे इस लिए भगवान उसे बारबार कहते थे, ऐसे तो नहीं लगता हैं न ? भगवान गौतमस्वामी के माध्यम से समग्र विश्व को कहते थे ।

यह वाचना मेरे लिए ही कही जा रही हैं, ऐसा मानकर सुनोगे तो ही कल्याण होगा ।

मुझे तो एकेक क्षण की चिंता हैं । आपको न हो यह हो सकता हैं । आप छोटी वय के है न ? अभी बहुत जीना हैं । सच न ?

प्रधानं परलोकसाधनम् ।

ऐसी उंची कक्षा पर पहुंचने के बाद इस लोक की ही वाह वाहमें पड़े रहे, परलोक की थोड़ी भी चिंता न की तो फिर होगा क्या ? इस जीवन को परलोकप्रधान बनाना ही रहा ।

परिणामकटवो विषयाः ।

पांचों इन्द्रियों के विषय परिणाम से कटु फलवाले हैं । इन इन्द्रियों के विषयोंमें यदि लिप्त हुए तो साधना कैसे होगी ?

विप्रयोगान्तानि सत्सङ्गतानि ।

संयोग मात्र के नीचे वियोग छिपा हुआ हैं । संयोगमें आनंद माना तो वियोगमें आक्रंद करना ही पड़ेगा । हमें इष्ट के वियोग दुःखकर लगते हैं, परंतु संयोग ही इष्ट न माना हो तो वियोग दुःखरूप लगते ?

पातभयातुरमविज्ञातपातमायुः ।

इस आयुष्य का बुलबुला चाहे तब फूट सकता हैं । रोज कितने-कितने का मरण सुनते हैं ? हमारी मृत्यु के समाचार भी कोई सुनेगा, यह विचार आता हैं ?

⌘ ⌘ ⌘

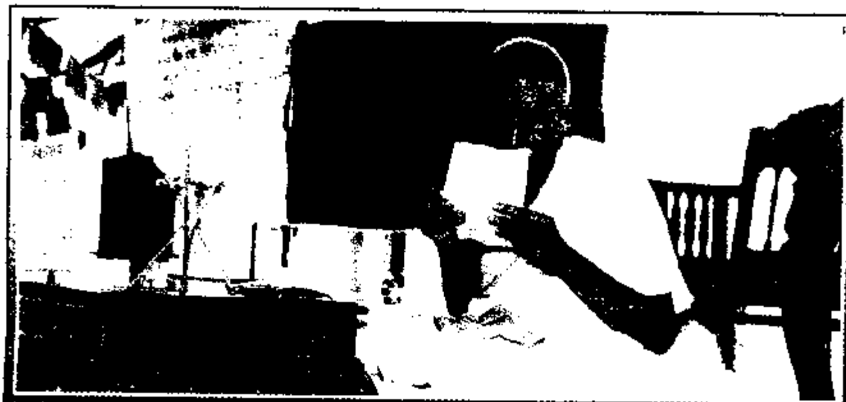

स्वाध्याय मग्नता

३०-१०-२०००, सोमवार
कार्तिक शुक्ला - ३

✱ गृहस्थों के लिए तीन या पांच, लेकिन साधुओं के लिए सात बार चैत्यवंदन का विधान हैं । सम्यग्दर्शन की शुद्धि के लिए यह विधान हैं । सम्यग्दर्शन न आया हो तो मिलता हैं । मिला हो तो विशुद्ध बनता हैं ।

मोक्ष हमारा अंतिम साध्य हैं, लेकिन वह तो यह देह छूटने के बाद, पर इसी जन्ममें साधने जैसा क्या हैं ? सामायिक - समता भाव । समता भाव यदि न साध सके तो मोक्ष नहीं साध सकेंगे ।

समता तो ही मिलेगी यदि भगवान की भक्ति होगी । इसलिए ही सामायिक के बाद चउविसत्थो आदि हैं । समता स्व-बल से नहीं मिलती, इसके लिए भगवान को प्रार्थना करनी पड़ती हैं । इसलिए ही चउविसत्थो आदि आवश्यक हैं ।

राजा के यहाँ काम करनेवाला जैसे बोझ उतारता हैं, उसी तरह हम आवश्यक पूरे कर देते हैं, किंतु इसमें ही साधना का अर्क समाया हैं, वह नहीं समझते ।

छः आवश्यकोंमें सामायिक तृप्ति हैं । दूसरे पांच भोजन हैं । भोजन के बिना तृप्ति कैसे मिलेगी ? शरीर को तृप्ति भोजन

से मिलती हैं । आत्मा को तृप्ति चउविसत्थो आदि से मिलती हैं । शरीर का भोजन कभी भूलते नहीं । आत्मा का भोजन कभी याद नहीं आता । यह हमारी बड़ी करुणता हैं । बारातमें गये हो और दुल्हे को ही भूल जाओ ? यहाँ दुल्हा (आत्मा) ही भूल गये हैं ।

प्रभु की मुद्रा देखकर स्व-आत्मा याद आती हैं : ओह ! मेरा साध्य यह हैं । मेरा भविष्य हैं । मेरे विकास की पराकाष्ठा यह हैं । मुझे भगवान बनना हैं । एकबार ऐसी गहरी रुचि प्रकटने के बाद दूसरा सब अपने आप हो जायेगा ।

(२१) धम्मदेसयाणं :

अविनीत पुत्रको पिता की संपत्ति नहीं मिलती । हम अविनीत हो तो भगवान की संपत्ति कैसे प्राप्त कर सकेंगे ? विनीत बनते ही भगवान की तरफ से एक के बाद एक भेट मिलने लगती हैं । अभय, चक्षु, मार्ग, शरण, बोधि इत्यादि सब कुछ । सचमुच तो भगवान देने के लिए तैयार ही हैं । भगवान मात्र हमारी योग्यता की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

जिस घरमें (संसारमें) मैं हूं वह जल रहा हैं । ऐसा जानने के बाद सोते हुए आदमी के बिना कोई वहाँ रह नहीं सकता । हम सोते हुए हैं या जागृत हैं ?

संसार की इस आग को सिद्धांत-वासना के बलवाली धर्ममेघ की वृष्टि ही बुझा सकती हैं । सिद्धांत का रस जगे तो संसार का रस घटता ही हैं ।

अभी संसार (विषय-कषाय) की आग संपूर्ण तो बुझा सकेंगे नहीं । क्योंकि क्षायिक मिल सकेगा नहीं । अभी तो क्षयोपशम-भाव से चलाना पडेगा ।

कषायों को घटाते रहो ।

उपमितिमें क्रोध को अग्नि, मान को पर्वत, माया को नागिन (याद रखें : नाग से भी नागिन ज्यादा खतरनाक हैं । ऐसा आदमी बात-बातमें माया करता हैं । वह कभी ढोंग नहीं छोड़ता । हमें पढानेवाले प्रज्ञाचक्षु आनंदजी पंडितजी कहते थे : ढोंग, धतिंग और पाखंड) और लोभ को सागर कहा हैं ।

सिद्धांत की वासना से ही यह कषायों की वासना हट सकते हैं । कैसे शब्दों का प्रयोग किया हैं, यहाँ हरिभद्रसूरिजीने ? स्व-पर दर्शन का कितना गहन अभ्यास किया होगा उन्होंने ? सचमुच हरिभद्रसूरिजी आगम-पुरुष थे । जीवंत आगम थे । अनुभवी पुरुष होने पर भी कहीं व्यवहार का उल्लंघन उन्होंने नहीं किया हैं ।

पू. हरिभद्रसूरिजी कहते हैं : संसार की आग बुझाओ, पर हम तो आग ज्यादा तीव्र जला रहे हैं ।

'आग लग रही हैं ।' - ऐसी प्रतीति गुरु के बिना होती नहीं हैं । लेकिन गुरु का माने कौन ? जमाना तो ऐसा आया हैं कि गुरु का शिष्य नहीं, परंतु शिष्य का गुरु को मानना पड़ता हैं । ऐसे वातावरणमें कल्याण कैसे होगा ?

पू. हरिभद्रसूरिजीने संसार की आसक्ति छोड़ने, अनित्यता को भावित करने यहाँ **'मुण्डमालालुका'** दृष्टांत दिया हैं । मतलब यह हैं कि आदमी के पास माला और घड़े का खप्पर दोनों होते हैं। शाम होते ही माला मुरझा जाये तो दुःख नहीं होता । क्योंकि आदमी जानता हैं : फूलों का मुरझा जाना यह स्वभाव हैं । पर घड़े का खप्पर टूट जाये तो दुःख होगा । क्योंकि उसमें नित्यता की बुद्धि हैं । माला की तरह प्रत्येक पदार्थोंमें अनित्यता की बुद्धि होनी चाहिए। इस प्रकार के चिंतन से अवास्तविक अपेक्षा तुरंत ही छूट जायेगी।

*** ५० शून्य हैं, मूल्य कितना ? कुछ भी नहीं । पर आगे एक (१) लगा दो तो ? सभी शून्य महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं ।**

हमारे सभी जन्म एक संख्या बिना के शून्य जैसे व्यर्थ गये हैं । समकित के बिना सब शून्य हैं ।

ऐसा मुझे नित्य लगा हैं । इसलिए ही मैंने भगवान को पकड़े हैं, भगवान के साधु और भगवान का धर्म पकड़ा हैं । इसके बिना सम्यग्दर्शन नहीं ही मिलेगा ऐसी मुझे हंमेशा प्रतीति होती रही हैं और शास्त्र से ऐसी पुष्टि मिलती रही हैं ।

भगवान को हमारी कोई अपेक्षा नहीं है, भगवान स्वयं की पूजा हो - ऐसा इच्छते ही नहीं, अपितु उनकी पूजा के बिना, इनकी शरण लिये बिना हमारा उद्धार नहीं ही होगा, यह नक्की हैं।

'पर-कृत पूजा रे, जे इच्छे नहि रे ।'

– पू. देवचंद्रजी

भगवान की शरणागति स्वीकारने के लिए यहाँ पू. हरिभद्रसूरिजी कहते हैं : **भवितव्यमाज्ञा – प्रधानेन ।** भगवान को सामने रखकर आज्ञाप्रधान बनो । प्रणिधान को स्वीकारो । प्रणिधान के बिना सब एक संख्या बिना के शून्य जैसा हैं ।

साधु की सेवा से धर्म-शरीर की पुष्टि करो । साधु-सेवा से ही धर्ममें वृद्धि होगी ।

उसके बाद हितशिक्षा देते पू. हरिभद्रसूरिजी कहते हैं : हो सके तो शासन की प्रभावना करें । वह न हो सके तो शासन की अपभ्राजना हो ऐसा तो कभी मत करना : **रक्षणीयं प्रवचनमालिन्यम् ।**

शासन की अपभ्राजना से आज्ञाभंग, मिथ्यात्व, अनवस्था और विराधना – ये चारों दोष लगेंगे, ऐसा छेदसूत्र पढने से समझमें आयेगा ।

विधि के आग्रही ही ऐसा कर सकते हैं । इस लिए सर्वत्र विधिपूर्वक ही प्रवृत्ति करें । थोड़ा भी हो, पर विधिपूर्वक होगा तो अनंतगुना फल मिलेगा ।

विधि, सूत्र के बिना जान नहीं सकते ।

⌘ ⌘ ⌘

तत्त्वदृष्टि – व्यवहारदृष्टि

तत्त्वदृष्टि ज्ञानस्वरूप हैं, जिसमें वस्तु का सत्स्वरूप प्रकाशित होता हैं । व्यवहारदृष्टि क्रिया स्वरूप हैं । उन क्रियाओं का मतलब हैं अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का आचरण । इसलिए तत्त्व का लक्ष करना और शक्य का प्रारंभ करना ।

वि.सं. २०५०, मद्रास

३१-१०-२०००, मंगलवार
कार्तिक शुक्ला - ४

✱ इस विषमकालमें यह ग्रंथ (ललित विस्तरा) नहीं मिला होता तो वीतराग प्रभु की करुणा शायद जल्दी समझ नहीं सकते ।

आज भी देखो । हमारे संघमें भगवान वीतराग रूपमें जितने प्रसिद्ध हैं, उतने करुणाशील के रूपमें प्रसिद्ध नहीं हैं ।

हम पुरुषार्थ करें तो भगवान मिलते हैं यह बराबर परंतु हमारे पुरुषार्थ को भी प्रेरणा देनेवाले भगवान ही हैं, यह समझना पड़ेगा ।

अनंत जन्मों का पुण्य इकट्ठा हो तब भगवान की करुणा समझमें आती हैं, इतना नक्की मानें ।

प्रतिमा के दर्शन करते साक्षात् भगवान के दर्शन कर रहा हूं, ऐसी बुद्धि अगणित पुण्य के उदय के बिना नहीं होती ।

इस लिए ही रोज दर्शन करनेवाले हमने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया हैं या नहीं ? यह बड़ा सवाल हैं ।

सम्यग्दर्शन की निशानी क्या ? हमेशा हम देहभावमें रहते हैं या आत्म-भावमें ? इस प्रश्न के जवाब से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का ख्याल आयेगा ।

भगवान के दर्शन होने के बाद कुछ देखना अच्छा नहीं लगता। यह सम्यग्दर्शन की निशानी हैं। क्षीरसमुद्र का पानी पीने के बाद खारा पानी कौन पीयेगा ? गुलाबजामुन खाने के बाद तुच्छ भोजन कौन खायेगा? परब्रह्ममें मग्न को सांसारिक विषयों में रुचि कैसे होगी?

भगवान के उपकार सुनने में रस पड़ता हो तो भी पुण्योदय समझें। हमें वैराग्य (भले वह ज्ञानगर्भित हो या दुःखगर्भित) हुआ उसमें भी भगवान का ही प्रभाव हैं, यह न भूलें।

सर्व स्थानों पर होता बिंजली का मूल पावरहाऊस हैं, उसी तरह दिखते हुए शुभ का मूल भगवान हैं। बीचमें कनेक्शन न हो तो लाइट नहीं मिलती। भगवान के साथ कनेक्शन न हो तो भगवत्ता की अनुभूति नहीं होती। अविच्छिन्न गुरु परंपराने हमें आखिरमें भगवान तक जोड़े हैं। अविच्छिन्न गुरु-परंपरा ही भगवान के साथ हमें जोड़ती हैं।

जहाँ भगवान को नमस्कार हुआ उसी समय भगवान के साथ अनुसंधान होता हैं। अपेक्षित सभी गुण भगवान के पास से ही मिलेंगे, ऐसा भाव हो तो भगवान के साथ अनुसंधान हुए बिना नहीं रहता।

ये सूत्र (आगम) भगवान के साथ जोड़ने वाले तंतु हैं। सूत्र अर्थात् रस्सी ! बालपनमें रस्सी से माचीस के बोक्ष बांधकर हम खेल खेलते, वह याद आ जाता हैं।

सूत्र तो भगवान की वाणी हैं। भगवान की शक्ति के वाहक हैं सूत्र ! सूत्र यदि बराबर धारण करें तो सर्वत्र भगवान दिखेंगे। सूत्र के एकेक अक्षरमें भगवान छिपे हुए हैं। शक्रस्तवमें 'सर्वज्ञानमयाय, सर्वध्यानमयाय, सर्वमन्त्रमयाय, सर्वरहस्यमयाय' यों ही नहीं कहा।

भगवान तो सर्व जीवों के नाथ बनने के लिए तैयार हैं, पर हम उनकी शरण स्वीकारें तो। हमारा योग-क्षेम नहीं होता, क्योंकि भगवान की शरणागति हम स्वीकारते नहीं हैं।

'वस्तु विचारे रे दिव्य नयनतणो रे, विरह पड्यो निरधार,
तरतम जोगे रे तरतम वासना रे, वासित बोध आधार।'

- पू. आनंदघनजी

अभी जो भगवान की पहचान देनेवाले ग्रंथ हैं, वे हमारे लिए अद्‌भुत हैं । इन ग्रंथों को पढें तो भी हृदय नाच उठता हैं, कर्ता जिस भाव से शब्द छोड़ते हैं वे ही भाव हमारे हृदय को छूते हैं, यह नियम हैं । इसलिए ही **जिन्होंने हृदयमें भगवत्ता का अनुभव किया हैं, उनके शब्द हमारे हृदय को छूते ही हैं ।** पू. हरिभद्रसूरिजी के शब्द इसलिए ही हमारे हृदय को झंकृत करते हैं । क्योंकि वे अनुभूति की गहराईमें से निकले हैं ।

✱ प्रवृत्ति, पालन और वशीकरण – किसी भी प्रतिज्ञामें ये तीन चीजें चाहिए । यह बात 'धम्मसारहीणं' के पाठमें आयेगी ।

इसलिए ही कोई भी प्रतिज्ञा लेने से पहले हम तीन के बारे में अवश्य विचारें । ब्रह्मचर्य व्रत तो लेता हूं, पर मैं पाल सकूंगा ? वैसा मेरा सत्त्व हैं ? ऐसे विचारें । यह विधि हैं ।

सूत्रविधि से आत्मभाव जानने मिलता हैं । निमित्त इत्यादि की भी यहाँ अपेक्षा रखने के लिए पू. हरिभद्रसूरिजी कहते हैं ।

मेरी आत्मामें राग, द्वेष, मोह इन तीनमें से कौन सा दोष ज्यादा हैं ? किसी समय चित्त एकदम संक्षुब्ध बन जाये तो भी गभराना मत । इसका प्रतिकार विचारें । उदा. भय दूर करना हो तो शरण स्वीकारें ।

'अभयकरे सरणं पवज्जहा'

– अजितशांति

अभय देनेवाले भगवान की शरण स्वीकारते ही भय भाग जाता हैं ।

भयमें शरण, रोगमें क्रिया (इलाज) और विषमें मंत्र यह उपाय हैं ।

'सरणं भए उवाओ, रोगे किरिया विसंमि मंतो'

उसी तरह राग-द्वेष आदिमें भी प्रतिपक्षी भावना भानी वह इलाज हैं । हार्ट इत्यादि के दर्दी जेबमें ही गोली रखकर फिरते हैं । जरुर पड़ने पर तुरंत ही गोली ले लेते हैं । हमें भी यह चतुःशरण, नवकार इत्यादि की गोली साथमें ही रखनी हैं ।

सर्व पापरूपी विष का नाश करनेवाला नवकार हैं ।

विष द्रव्यप्राण हरता हैं । रागादि भावप्राण हरते हैं । उसे दूर करनेवाला नवकार हैं ।

✱ प्रत्येक क्षण मृत्यु चालु ही हैं । समय-समय मृत्यु हो रही हैं, यह समझमें आता हैं ? हम समझते हैं कि बड़े हो रहे हैं । हम समझते हैं कि मृत्यु आखिरमें आयेगी, परंतु आज ही भगवतीमें आया : आवीचि मृत्यु नित्य चालु हैं । प्रतिक्षण हम मर रहे हैं । जो क्षण गई उस क्षण के लिए हम मर गये। नित्य मृत्यु दिखे तो अनासक्ति प्रकट हुए बिना रह सकती हैं?

✱ राग-द्वेषादि के नाश के लिए उद्यम करने से सोपक्रम कर्मों का नाश होता हैं । शायद निरुपक्रम (निकाचित) कर्म हो तो भी उसके अनुबंध तो टूटते ही हैं । कर्मों से घबराने की जरुरत नहीं हैं । कर्म से धर्म बलवान हैं ।

उदा. आपको किसी के उपर गुस्सा आया । आपने आपकी भूल के लिए माफी मांग ली । तो आपको अब दूसरी बार गुस्सा नहीं आयेगा । गुस्सा इत्यादि दूर करने के ये इलाज हैं ।

जिस क्रोधादि के लिए आप पश्चात्ताप करते रहते हो, वे कर्म और उनके अनुबंध टूटते ही रहते हैं । जिस क्रोधादि के लिए आपको पश्चात्ताप न हो, जो क्रोधादि आपको अखरते ही नहीं, प्रत्युत ज्यादा अच्छे ही लगते हैं, वे पाप कभी नहीं जाते । वे सब निरुपक्रम समझें ।

यहां कहते हैं : फिर भी आप भगवान की कृपा से निरुपक्रम कर्मों का भी अनुबंध तोड़ सकते हो ।

कर्म तो भगवान जैसे को भी नचाते हैं । एक भगवान महावीर देव के जीवनमें कितने उत्थान-पतन देखने मिलते हैं ? भगवान जैसे को भी कर्म न छोड़ते हो तो हम कौन ? परंतु कर्म और उसके अनुबंध हम तोड़ सकते हैं, यह बड़ा आश्वासन हैं ।

(२२) धम्मनायगाणं ।

भगवान धर्म के नायक हैं, स्वामी हैं । उसके चार लक्षण हैं :

(१) तद्वशीकरणभावात् । (२) तदुत्तमावाप्तेः । (३) तत्फलपरिभोगात् । (४) तद्विघाताऽनुपपत्तेः ।

(१) भगवानने धर्म का ऐसा विधिपूर्वक पालन किया कि धर्म खुश-खुश हो गया, उनके वश हो गया । नौकर अच्छा काम करे तो सेठ खुश नहीं होता ?

वशीकरण के भी चार कारण हैं :

(१) विधिसमासादनम् । (२) निरतिचारपालनम् । (३) यथोचितदानम् । (४) दाने च अपेक्षाऽभावः ।

(१) भगवानने इस तरह विधिपूर्वक धर्म किया हैं ।

कंपनी को आप वफादार रहो तो कंपनी आपको क्यों छोड़ेगी ? धर्म को वफादार रहे हुए भगवान को धर्म कैसे छोड़ेगा ?

(२) उत्तम धर्म-प्राप्ति के चार कारण ।

(१) क्षायिक धर्म प्राप्ति, (२) परार्थ संपादन, (३) हीन जीवों के उद्धार के लिए भी प्रवृत्ति, (४) तथाभव्यत्व ।

(३) धर्मफलयोग के चार कारण : सकल सौंदर्य, प्रातिहार्य योग, उदार ऋद्धि का अनुभव, तदाधिपत्य ।

(४) धर्मघाताभाव : अवन्ध्य - पुण्यबीजत्व - अधिकानुपपत्ति - पापक्षयभाव - अहेतुक विघातासिद्धि ।

⌘ ⌘ ⌘

'कहे कलापूर्णसूरि' तथा 'कह्युं कलापूर्णसूरिए' इन दोनों पुस्तकों की ३-३ नकल मिली हैं । खूब-खूब आनंद हुआ हैं । दृष्टिपात किया । अत्यंत आनंदानुभूतिदायक आलेखन हैं । स्वच्छ + सुगम हैं। कृति अति प्रशंसनीय हैं । और अध्यापन कार्यमें अत्युपयोगी हैं ।

पुस्तक प्राप्त होते बहुत ही आनंद हुआ हैं । दोनों पुस्तकों की १-१ कोपी मेरे अग्रज पंडितश्री चंद्रकांतभाई और अनुज पंडितश्री राजुभाई को भेज दूंगा ।

- अरविंदभाई पंडित

राधनपुर

वि.सं. २०५२, कोइम्बत्तूर

१-११-२०००, बुधवार
कार्तिक शुक्ला - ५

(२२) धम्मनायगाणं ।

✱ कठिन परिश्रम उठाकर आगमों को जीवनमें आत्मसात् बनाकर अनुभव रसका आस्वाद पाकर हम तक आगम पहुंचाये, उनका हम पर असीम उपकार हैं ।

स्वरूप और उपकार - दोनों संपदाओं का वर्णन नमुत्थुणंमें गणधरों के द्वारा हुआ हैं, उसे पू. हरिभद्रसूरिजीने बराबर खोला हैं।

निगोद से बाहर निकालकर मोक्ष तक पहुंचानेवाले भगवान हैं । भगवान मोक्ष के पुष्ट निमित्त हैं ।

छः कारक भी उसमें उपकारी हैं ।

छः कारक कार्य-कारण स्वरूप हैं । इन छः कारकों के बिना दुन्यवी या आध्यात्मिक कोई कार्य हो नहीं सकता ।

मिट्टी, पिंड, स्थासक इत्यादि आकारों को धारण कर घड़ा बनता हैं उसके पहले अग्निमें तपता हैं । निगोद से निर्वाण तक की हमारी यात्रामें हमें भी अनेक अवस्थाओंमें से गुजरना पड़ता हैं ।

घड़े की यात्रा : मिट्टी से कुंभ तक की ।
हमारी यात्रा : निगोद से निर्वाण तक की ।

कुम्हार के बिना घड़ा नहीं बनता ।

भगवान के बिना मोक्ष नहीं मिलता ।

✱ कल हमने भगवान धर्मनायक हैं, उसके चार मूल हेतु देखे । उसके अवांतर ४-४ हेतु भी देखे । (कुल १६ हेतु हुए ।)

धर्म का वशीकरण, उत्तम धर्म की प्राप्ति, धर्म का फल, धर्म के घात का अभाव - ये चार मूल हेतु हैं ।

✱ धर्म का वशीकरण भगवानने कैसे किया ? विधिपूर्वक निरतिचार धर्म का पालन करने से । यथोचित दान देने से और दानमें किसी भी तरह की अपेक्षा (इच्छा) नहीं रखने के कारण धर्म भगवान का सेवक हो गया ।

'मैं तुझे ज्ञान देता हूं । तू मेरी सेवा कर ।' यह धर्म नहीं, सौदा हैं । भगवानने संपूर्ण निरपेक्ष बनक धर्म की साधना की थी ।

✱ भगवानने उत्तम धर्म की प्राप्ति की हैं । उसके चार कारण : (१) क्षायिक धर्म की प्राप्ति (२) परार्थ संपादन, (३) हीन व्यक्ति को भी समझाने का प्रयत्न करना, (४) भगवान का विशिष्ट प्रकार का तथाभव्यत्व ।

दूसरों से तीर्थंकर का क्षायिकभाव उत्कृष्ट प्रकार का होता हैं । अरे... दूसरों के क्षायिक सम्यग्दर्शन से भी भगवान का क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन बढकर होता हैं । इसलिए ही वह 'वरबोधि' कहा जाता हैं ।

भगवान का परोपकार स्वभाव निगोद से ही बीजरूप पड़ा होता हैं । वही आगे बढते-बढते विकास प्राप्त करता हैं । परार्थ की इतनी भावना न हो तो चंडकौशिक जैसे के लिए १५-१५ दिन तक भगवान खड़े रह सकते ? कमठ को तारने के लिए इतना प्रयत्न करते ?

भगवान परार्थव्यसनी हैं । परंतु हम स्वार्थ-व्यसनी हैं । भगवान से बराबर सामने की सीमा पर हम हैं ।

हीन व्यक्ति पर भी भगवान की परोपकार की प्रवृत्ति चालु होती हैं । घोड़े जैसे को प्रतिबोध देने के लिए भगवान पैठण से भरुच एक रातमें ६० योजन का विहार करके गये थे ।

परार्थ की सहज भावना के बिना ऐसा शक्य नहीं बनता ।

भगवान यदि न गये होते तो अश्वमेध यज्ञमें घोड़े की बलि दी जानेवाली थी । भगवान के पदार्पण से उसके द्रव्य और भाव दोनों प्राण बच गये ।

घोड़े के जीवने पूर्व जन्ममें जिन-प्रतिमा भराई थी । किया हुआ एक भी सुकृत कभी भी निष्फल नहीं जाता । इस सुकृत के प्रभाव से ही घोड़े को भगवान मिले थे ।

पूर्वजन्ममें घोड़े का जीव श्रावक शेठ का नौकर था । इस लिए ही उसे जिन-प्रतिमा भराने का मन हुआ था ।

अच्छे पड़ोशी से कितना लाभ ? संगम को अच्छे पड़ोसी मिले थे । इसलिए ही वह शालिभद्र बन सका । मम्मण को अच्छे पड़ोसी नहीं मिले इसलिए ही वह मम्मण बना ।

आपको अच्छे पड़ोसी यहाँ भारतमें ही मिल सकते हैं, लेकिन आप तो अमेरिका आदि विदेशोंमें भागते हों । आपको विदेश जाना कि विदेशी आपके पास आये ?

घोड़े को भी प्रतिबोध देने का इतना प्रयत्न ऐसा कहता हैं : भगवान मात्र राजा-महाराजाओं को प्रतिबोध देने के लिए प्रयत्न करते हैं, ऐसा नहीं हैं । छोटे जीव के लिए भी इतना ही प्रयत्न करते हैं । इसलिए ही लिखा : हीनेऽपि प्रवृत्तिः '।

धर्म का फल भुगतने के चार हेतु हैं :

(१) भगवान का अद्‌भुत रूप

(२) प्रातिहार्य की शोभा । प्रातिहार्य उनके पास ही होते हैं, दूसरों के पास नहीं ।

(३) भगवान समवसरणादि की भव्य समृद्धि का अनुभव करते हैं ।

(४) देव भी भगवान के प्रभाव से ही ऐसा कर सकते हैं, स्वयं के लिए नहीं कर सकते । अतः ऐसे पुण्य के मालिक भगवान ही हैं ।

भगवान के नामसे, भगवान के वेष से भी जैन साधुको कितना मान-सन्मान मिलता हैं ? जैन साधु के रूपमें हम आधे भारतमें घुमकर आये, प्रत्येक स्थानमें मान-सन्मान मिला, वह भगवान का ही प्रभाव न ? भगवान का वेष भी इतना प्रभावशाली हो तो साक्षात् भगवान कैसे होंगे ?

✱ आज ज्ञानपंचमी (लाभपंचमी) हैं। व्यापारी बोणी इच्छता हैं, उसी प्रकार मैं आपके पास से गुरु-दक्षिणा के रूपमें कुछ इच्छता हूं।

ज्ञान हमारा प्रधान गुण हैं । आज सुबह से लेकर अब तक ज्ञान की ही आराधना की । विजयलक्ष्मीसूरिकृत देववंदन करके अभी आये । पूरा नंदीसूत्र, कर्ताने देववंदनमें उतार दिया हैं, ऐसा अभ्यासीओं को लगे बिना नहीं रहता ।

अंतमें केवलज्ञानमें कहा : चार ज्ञान प्राप्त करने के बाद भगवान केवलज्ञान के लिए कितना प्रयत्न करते हैं ? हम तो प्रकरण-भाष्य करके संतोषी बन गये । परिश्रम ही कौन करे ? हम तो पुस्तक को पेटीमें रखकर माला लेकर बैठ गये । माला लें तो तो फिर भी अच्छा, बातें करने ही बैठ गये ।

मोहराजा की सूचनानुसार करेंगे तो कब कल्याण होगा ?

लक्ष्मीसूरिजी लिखते हैं :

'अनामीना नामनो रे, किश्यो विशेष कहेवाय ?
ते तो मध्यमा-वैखरी रे, वचन उल्लेख ठराय ।'

भगवान स्वयं अनामी हैं, पर हमारे लिए नाम धारण किया हैं । भगवान घननामी हैं ।

अनामी - अरूपी भगवान का अनुभव न हो वहाँ तक हमारे लिए भगवान का नाम और भगवान का रूप ही आधार हैं । नाम और रूपमें मंत्र और मूर्तिरूप साक्षात् भगवान रहे हुए हैं, ऐसा भक्त को लगा करता हैं ।

भगवान के अलग-अलग नाम अलग-अलग शक्तिओं का परिचय देते हैं । ब्रह्मा, विष्णु, महेश, **GOD**, अल्लाह, इत्यादि किसी भी नामसे पुकारो । भगवान के साथ संधान होगा । कोई भी नंबर लगाओ । टेलिफोन लगेगा । क्योंकि भगवान के बहुत टेलिफोन नंबर हैं ।

भगवान के नाम का जाप भाष्य-उपांशु पद्धति से करने के बाद मानस जाप से करना हैं ।

उसके बाद भगवान के साथ अभेद प्रणिधान होता हैं तब नाम का जाप अटक जाता हैं । तब साक्षात् भगवान मिलते हैं।

'ध्यान टाणे प्रभु तुं हुए रे, अलख अगोचर रूप;
परापश्यन्ती पामीने रे, कांई प्रमाणे मुनि भूप ।'

हम ध्यानी बनते हैं तब भगवान ध्येय बनकर हमारे ध्यानमें आते हैं । अगोचर प्रभु योगी को गोचर बनते हैं । अलख भगवान को योगी लक्ष्यरूप से प्राप्त करता हैं ।

'यतो वाचो निवर्तन्ते, न यत्र मनसो गतिः ।
शुद्धानुभव - संवेद्यं, तद् रूपं परमात्मनः ॥'

'जहाँ सब वाणी अटक जाये । जहाँ मनकी गति स्थंभित बन जाये । वह शुद्ध अनुभव से संवेद्य प्रभु का रूप हैं ।' - ऐसा शास्त्रकारोंने कहा हैं ।

वाणी को रोकने के लिए स्वाध्याय हैं ।

मन को रोकने के लिये ध्यान हैं, समाधि है ।

मनकी सरहद पूरी होती है, उसके बाद ही समाधि की सीमा शुरु होती हैं ।

ऐसे भगवान को प्राप्त करने के लिए आज के पवित्र दिन संकल्प करें ।

⌘ ⌘ ⌘

'कह्युं कलापूर्णसूरिए' पुस्तक प्राप्त हुई । अभी तो हाथमें ही ली हैं परंतु,

First Impression is last Impression

प्रथम दृष्टिमें ही प्रभाविक हैं ।

- गणि राजयशविजय

सोमवार पेठ, पुना

वि.सं. २०५०, मद्रास

२-११-२०००, गुरुवार
कार्तिक शुक्ला - ६

✱ परोपकार की पराकाष्ठा होने के कारण ही भगवान को वैसी शक्ति मिलती हैं । **'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'** यह सबको याद हैं ही । सिर्फ शक्ति ही नहीं, कार्य भी वैसे ही होते हैं ।

खराब भावनावाले को नहीं, किंतु शुभ भावनावाले को प्रकृति मदद करती हैं ।

खराब भावनावाले को प्रकृति मदद करे तो जगत नर्कागार बन जाये ।

ऐसे विशिष्ट प्रकार के पुण्य का संचय भगवानने कैसे किया ? ऐसे प्रश्न का जवाब उनके परोपकार की पराकाष्ठामें रहा हुआ हैं ।

व्यक्तिगत भगवान का अनुग्रह भले उनके तीर्थ तक चले, लेकिन आर्हन्त्य तो सर्वक्षेत्रमें सर्वकालमें सर्वदा उपकार कर ही रहा हैं ।

'नामाऽऽकृतिद्रव्यभावैः.......।'

लोक की तरह भगवान का नाम भी शाश्वत हैं । 'अरिहंत' 'तीर्थंकर' ऐसे सामान्य नाम तो शाश्वत ही हैं ।

दामोदर भगवान के समयमें पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति बनी थी ।

मूर्ति के साथ नाम होता ही हैं । भुवनभानु केवली या लक्ष्मणा साध्वीजी का भले ७९ जितनी चोवीसी के बाद उद्धार होता हो, लेकिन उस समय अपने उपकारी भगवान के नाम को वे थोड़े भूलेंगे ?

नामादि चारों निक्षेप से भगवान नित्य सर्वत्र उपकार कर रहे हैं, ऐसा हेमचंद्रसूरिजीने सच. ही लिखा हैं ।

✱ यह ग्रंथ वैसे तो मैंने बहुतबार देखा, किंतु इतनी सूक्ष्मतापूर्वक गिरिराज की छत्रछायामें पहलीबार पढा । इसलिए ही मैं आपको नहीं, मुझे स्वयं को सुनाता हूं । समय खास नहीं मिलता तो भी थोड़ा जो समय मिलता हैं उस समय पढते अद्‌भुत आनंद आता हैं ।

प्रत्येक पंक्ति को ५-१० बार पढो तो आपको अपूर्व आनंद आयेगा, भगवान का अनुग्रह समझमें आयेगा ।

जैन दर्शन समझना हो तो दो नय (निश्चय और व्यवहार) समझने खास जरुरी हैं । कोई भी बात कौन से नयसे कही गई हैं, वह गुरु के बिना समझमें नहीं आता ।

गोचरी इत्यादि के दोष आदि उत्सर्ग मार्ग हैं । पर उसके अपवाद भी होते हैं ।

उत्सर्ग स्वयं के लिये समझना हैं । पर दूसरों की बिमारी इत्यादिमें भी उत्सर्ग को आगे करो, और उसकी निंदा करने लग जाओ तो वह गलत हैं ।

पढकर वैद्य नहीं बन सकते । पढकर गीतार्थ भी नहीं बन सकते । उसके लिए गुरुगम चाहिए ।

भगवान के उपकारों का व्यवहारनयसे यहाँ वर्णन किया हुआ हैं । भगवान के उपकारों को नजर के सामने नहीं रखते इसलिए ही हम भयभीत हैं ।

अन्य दर्शनीयोंमें ऐसी प्रसिद्धि हो गई हैं : 'जैन ईश्वर को मानते ही नहीं ।'

ऐसी प्रसिद्धिमें हम भी कारण हैं ।

पू. पंन्यासजी म. को व्यथा थी : श्री संघमें मैत्री आदि चार भाव तथा प्रभुका अनुग्रह–इस की कमी है । इसलिए ही जितना होना चाहिए उतना अभ्युदय नहीं हो रहा है ।

भक्ति मार्ग के बिना भगवान को प्राप्त नहीं कर सकते हैं । भगवान के बिना कभी सफलता नहीं मिलेगी, यह नक्की मानें।

(२३) धम्मसारहीणं ।

भगवान धर्म के सारथि हैं। भगवान धर्म का (स्व–पर की अपेक्षा से) प्रवर्तन, पालन और दमन करते हैं इसलिए वे सारथि हैं ।

सारथि घोड़ा चलाता हैं, पालन करता हैं, उसका दमन भी करता हैं, उसी प्रकार भगवान धर्म को चलाते हैं, पालन करते हैं और काबूमें रखते हैं ।

यहाँ धर्म से चारित्रधर्म लेना है । चारित्रधर्म दर्शन और ज्ञान हो वहीं होता हैं । इसके बिना चारित्र ही नहीं कहा जाता ।

पहले के युद्धोंमें हाथी–घोड़ा का उपयोग होता था । इसमें भी ज़ातिवान् हाथी–घोड़े तो ऐसे होते कि चाहे जैसे कष्टमें मालिक को मरने नहीं देते । चेतक घोड़ेने छलांग लगाकर भी महाराणा प्रताप को बचा लिया था । प्रताप को बचाने के लिये अपने प्राण धर दिये । यह जातिमत्ता हैं ।

भगवान धर्म को इस तरह चलाते हैं, पालन करते हैं और वशीभूत करते हैं ।

भगवान स्व को ही नहीं, अन्य चारित्रधर्मी आत्माओं को भी संयम धर्ममें प्रवृत्ति कराते हैं ।

भगवान का यह सारथित्व अभी भी चालू हैं । भगवान भले मोक्षमें गये हो, फिर भी तीर्थ रहे वहाँ तक भगवान की शक्ति कार्य करती ही हैं । **मैं भगवान को बुलाऊं तब आ जाते हैं। इच्छुं तब भगवान की शक्ति का अनुभव करता हूं । आप नहीं कर सकते ? एक करे वह सभी कर सकते हैं ।**

आप दुःख दूर करना चाहते हो, सुख प्राप्त करना चाहते हो और निर्भय बनना चाहते हो तो इतना करेंगे ?

देखो, मैं मेरी तरफ से नहीं कह रहा हूं, अजित–शान्तिकार श्री नंदिषेणमुनि कहते हैं :

'पुरिसा जइ दुक्खवारणं, जइ अ विमग्गह सुक्खकारणं ।
अजिअं संति च भावओ, अभयकरे सरणं पवज्जहा ॥'

हे पुरुषो ! यदि आप दुःख का निवारण और सुख का कारण इच्छते हो तो अभय को देनेवाले अजितनाथ और शान्तिनाथ भगवान की शरण स्वीकारो ।

अजित-शान्तिनाथ भगवान भले न हो, पर उनके वचन (आगम) तो हैं न ? इसलिए ही अंतमें कहा :

'जइ इच्छह परमपयं, अहवा कित्तिं सुवित्थडं भुवणे ।
ता तेलुक्कुद्धरणे, जिणवयणे आयरं कुणह ॥'

यदि आप परमपद इच्छते हो, शायद परमपद का लक्ष न हो तो कीर्ति की तो इच्छा हैं न ? उस इच्छा को भी पूरी करनी हो तो जिनवचनमें आप आदर करो । यह जिनागम ही तीन लोक का उद्धार करनेवाला हैं ।

भगवान के आगम पर आदर हो तो चारित्र धर्म आदिमें कहीं अतिचार हम क्या लगने देंगे ?

आपके कपड़े आप धोते हो, दूसरा नहीं । लेकिन भगवान तो इतने दयालु हैं कि आपकी संपूर्ण आत्मा को साफ करने के लिए तैयार हैं ।

कपड़े को साफ होना हो तो जहाँ तक साफ नहीं होता वहाँ तक साबुन-पानी को वह छोड़ नहीं सकता । आत्मा को साफ होना हो तो भगवान के चारित्र धर्म को छोड़ नहीं सकती ।

चारित्रधर्ममें भगवानने प्रकर्ष साधा हुआ हैं । यथाख्यात चारित्र यह चारित्रधर्म की पराकाष्ठा हैं ।

चारित्रधर्म की पराकाष्ठा भी भगवानने प्रवर्तक ज्ञान द्वारा प्राप्त की हैं । भगवान का ज्ञान प्रवर्तक होता हैं, प्रदर्शक नहीं । प्रवर्तक ज्ञान भी भगवान को अपुनर्बंधक अवस्था से मिलता रहता हैं । अपुनर्बंधक अवस्था तथाभव्यता के परिपाक से मिलती हैं ।

हमारे पास अब एक वस्तु रही हैं : तथाभव्यता का परिपाक करना । पंचसूत्रकार कहते हैं : तथाभव्यता के परिपाक के लिए शरणागति, दुष्कृत-गर्हा और सुकृत-अनुमोदना - इन तीन को स्वीकारो ।

⌘ ⌘ ⌘

वि.सं. २०५०, मद्रास

३-११-२०००, शुक्रवार
कार्तिक शुक्ला - ७

(२३) धम्मसारहीणं ।

✱ भगवानने चतुर्विध संघ द्वारा समग्र विश्व का कल्याण हो, सब जीव शासनरसिक बने, वैसी व्यवस्था की हैं ।

भगवान को ऐसी शक्ति मिली हैं, उनके नाममें ऐसी शक्ति हैं, उसका कारण पूर्व-जन्म का बांधा हुआ तीर्थंकर नामकर्म हैं । बड़े अरबोपति सेठ के नाम की भी गुडवील होती ही है न ?

अभी हमारे पास भले भगवान नहीं हैं, परंतु भगवान का नाम तो हैं न ? भगवान का नाम हमें छूटसे उपयोग करने मिला वह कम पुण्य है ? कोई अरबोपति सेठ भी स्वयं का नाम मुक्तरूप से उपयोग करने की रजा नहीं देता, लेकिन भगवान की ओरसे छूट हैं : सब मेरे नाम का उपयोग कर सकते हैं, मेरा नाम लूट सकते हैं, भगवान स्वयं लूट जाने के लिए तैयार हैं ।

'राम नाम की लूट हैं, लूट सके तो लूट ।'

अजित-शांतिमें भगवान के नाम की महिमा का वर्णन किया है ; मानतुंगसूरिजी महाराजने भगवान के नाम के आधार पर ही

बेड़ियां तोड़ने का आह्वान स्वीकार कर लिया था न ? उनके सामने साक्षात् भगवान कहाँ थे ?

मान लो कि साक्षात् भगवान आ जाये तो क्या हम पहचान सकेंगे ? भगवान को पहचानने के लिए आँख चाहिए । सम्यग्दर्शन की आँख के बिना भगवान को पहचान नहीं सकते ।

✱ भगवान धर्म (चारित्रधर्म) के नायक हैं । द्रव्य से भी चारित्र भगवान के बिना दूसरे कहीं से मिल सकता हैं क्या ? त्याग-वैराग्य का उपदेश नहीं सुनते तो संसार छोड़ने का मन हो सकता क्या ? त्याग-वैराग्य का उपदेश देनेवेला गुरु के पूर्वजोंमें अंतिम भगवान ही आयेंगे न ? इस प्रकार मूल तो भगवान ही हुए न ?

११ अभिमानी ब्राह्मणों को नम्र बनाकर सम्यग्दर्शन की भेंट भगवान के बिना किसने दी ? द्वादशांगी-रचना के लिए शक्ति किसने दी ?

✱ दो प्रकार के श्रुतकेवली :

(१) भेदनय से १४ पूर्वधर ।

(२) अभेदनय से आगम से जिसने आत्मा को जान ली हैं वह ।

व्यवहारमें निष्णात बना हुआ ही ऐसे अभेद नयसे श्रुतकेवली बनने का अधिकारी हैं ।

भूमिका तैयार करनेवाला और स्थिरता देनेवाला व्यवहार हैं । तन्मयता देनेवाला निश्चय हैं ।

व्यवहार की धरती पर स्थित बने बिना निश्चय के आकाशमें उडने का प्रयत्न करने जाओगे तो हाथ-पैर टूटे बिना नहीं रहेंगे ।

अपने आप गोलियां लेकर आप नीरोगी नहीं बन सकते ।

अपने आप निश्चय को पकड़कर आप आत्मज्ञानी नहीं बन सकते ।

✱ शब्द भले अलग-अलग हो, पर अर्थ से सभी भगवान का कथयितव्य (कहने योग्य) तत्त्व समान होता हैं ।

अभिव्यक्ति अलग, अनुभूति एक ही ।

शब्द अलग, अर्थ एक ही ।

* भगवान का वरबोधि सम्यग्दर्शन दूसरों से श्रेष्ठ होता हैं । शम-संवेगादि पांचों लक्षण दूसरों से उत्कृष्ट होते हैं ।

'सम्यग्दृष्टि जीव सबसे ज्यादा दुःखी होता हैं ।' - ऐसे गौतमस्वामी के प्रश्न के उत्तरमें भगवानने भगवतीमें कहा हैं, वह (सम्यग्दृष्टि) स्वयं के दुःख से नहीं, परंतु दूसरों के दुःख से दुःखी समझें ।

बेचारे ये जीव अनंत ऐश्वर्य के स्वामी होने पर भी कितने कंगाल और कितने दुःखी हैं ? - वे कब सुखी बने । दूसरा तो ठीक... मैं इन जीवों को दुःख देने में निमित्त बनते भी अटक नहीं सकता । कब इस पाप से मैं विराम (विरति) प्राप्त करूंगा ? यह विचार ही सम्यग्दृष्टि को दुःखी बनाता हैं ।

'**दुःखितेषु दयात्यन्तं** ।' ऐसा जो अपुनर्बंधक का लक्षण हैं, इससे यह दुःख अधिक समझें ।

दुःखी के दुःख दूर करने की वृत्ति अनुकंपा हैं । उसके दो प्रकार : द्रव्य और भाव अनुकंपा ।

द्रव्य से भी दूसरों को दुःखी करने की इसलिए मना हैं कि द्रव्य से दुःख प्राप्त होते वह जीव भाव से भी दुःखी बनता हैं ।

* कोई भी पदार्थ नाम स्थापना आदि के बिना नहीं पकड़ सकते । इसके बिना व्यवहार चलेगा ही नहीं ।

आप को रोटी की जरूरत हो तो रोटी शब्द का उच्चारण करना पड़ेगा । उसके बाद आपको 'भाव-रोटी' मिलेगी । भाव भगवान को पकड़ने हो तो नाम से प्रारंभ करना पड़ेगा । नाम स्थापना को बिना पकड़े भाव भगवान नहीं पकड़ सकेंगे । नाम-स्थापना पर जिसे प्रेम नहीं हैं उसे भाव भगवान पर कैसे प्रेम होगा ? अभी भाव भगवान नहीं मिले वह हमारी कसौटी हैं : मेरा भक्त मेरे नाम और स्थापना को कितना प्रेम करता हैं ? वह तो देखने दो ।

जितने अंशमें नाम-स्थापना पर प्रेम होगा, उतने अंशमें भाव भगवान मिलेंगे ।

*** लोकमें सारभूत क्या हैं ? ऐसे सवाल के जवाबमें भगवानने चारित्र को लोकमें सारभूत कहा हैं ।**

भक्ति मुक्ति दिलाती हैं, यह सही हैं, लेकिन सीधे-सीधी नहीं, चारित्र के द्वारा दिलाती हैं । भक्ति से चारित्र और चारित्र से मुक्ति मिलती हैं । सचमुच तो चारित्र भक्ति का ही प्रकार हैं । जिसके उपर भक्ति होती हैं उसकी आज्ञा के अनुसार जीने का मन होता ही हैं । उसके अनुसार जीना वही चारित्र हैं ।

✱ भगवान भी सिद्धों का आलंबन लेते हैं । दीक्षा लेते समय 'नमो सिद्धाणं' पद का उच्चारण करना वह इस बात का प्रतीक हैं । याद रहे : भगवानमें से भक्तियोग गया नहीं हैं, लेकिन पराकाष्ठा पर पहुंचा हैं ।

✱ भक्ति पदार्थ को जैन शैली से समझना हो तो पू. देवचंद्रजी का साहित्य अद्‌भुत हैं । पू. देवचंद्रजी भक्ति-मार्ग के प्रवासी थे । अत्यंत उच्च प्रकार के आध्यात्मिक पुरुष थे । भिन्न गच्छ के होने पर भी उन्होंने पू. उपा. यशोविजयजी म. को 'भगवान' के रूपमें संबोधित किये हैं । और उनके पास से हमारे तपागच्छ के पद्मविजयजी इत्यादिने अभ्यास भी किया हैं । इसलिए ही उनके (पद्म वि.) स्तवनोंमें भी आपको भक्ति की अनुभूति की झलक देखने मिलेगी ।

दिगंबर से श्वेतांबर शैली इस दृष्टि से अलग पड़ती हैं । दिगंबर मात्र आत्मस्वरूप पर महत्त्व देते हैं, जब कि श्वेतांबर शैली भगवान को प्रधानता देती हैं । भगवान के बिना आप आत्मस्वरूप कैसे प्रकट कर सकते हो ? स्वयं को बकरा माननेवाले सिंह का सिंहत्व, सिंह को देखे बिना कैसे जागृत हो सकता हैं ?

⌘ ⌘ ⌘

चार भावनाएं

मैत्री याने निर्वैर बुद्धि, समभाव ।
प्रमोद याने गुणवानों के गुण प्रति प्रशंसाभाव ।
करुणा याने दुःखीजनों के प्रति निर्दोष अनुकंपा।
माध्यस्थ्य याने अपराधी के प्रति भी सहिष्णुता।

वि.सं. २०५५, भचाऊ - कच्छ

४-११-२०००, शनिवार
कार्तिक शुक्ला - ८

✱ सम्यग् श्रुत-चारित्र धर्म भगवान से विमुख रहनेवाले को नहीं मिलता । क्योंकि धर्म के पूर्ण मालिक भगवान हैं ।

धर्म प्राप्त करना हो तो धर्म के मालिक की शरणमें जाना पड़ता हैं । यह रहस्य ललित विस्तरामें से ही नहीं, गुजराती स्तवनोमें से भी समझने को मिलता हैं । ये स्तवन नहीं, संकेत हैं । इन शब्दोंमें से कृतिकार का हृदय और उनके अनुभव जानने मिलते हैं ।

✱ भगवान की देशना गौण-मुख्यता से चला करती हैं । जिस समय जो मुख्य होता हैं उसे आगे करके भगवान देशना देते हैं ।

यह ग्रंथ (ललित विस्तरा) व्यवहार प्रधान हैं । 'भगवान ही सब कुछ देते हैं ।' यह व्यवहारनय हैं । यहाँ निश्चय की बात लाने जाओ तो नहीं जमेगी । जिस समय जो प्रधान होता हैं उसे उसी तरह समझना पड़ता हैं । 'नयेषु स्वार्थ-सत्येषु, मोघेषु परचालने' प्रत्येक नय अपने दृष्टिकोण से सच्चे हैं, दूसरे को झूठे साबित करनेमें झूठे हैं ।

'भगवान क्या देते हैं ? उपादान तैयार चाहिए । उपादान तैयार न हो तो भगवान कैसे देंगे ? भगवान तो अनंतकाल

से देने के लिये तैयार ही थे, परंतु उपादान तैयार नहीं था, इसलिए ही कल्याण नहीं हुआ । इसलिए पहले उपादान तैयार करो । भगवान को साइड पर रखो ।' यह बात निश्चय-नय की हैं, जो यहाँ नहीं कर सकते । इस प्रकार सोचें तो भक्तिमार्गमें कभी गति हो नहीं सकती । भगवान ही सब देनेवाले हैं, ऐसी दृढ प्रतीति ही भक्त को भक्तिमें गति कराती हैं ।

✱ सिंह की गर्जना से दूसरे पशु भाग जाते हैं । उसी तरह भगवान का नाम लेते ही सब पाप भाग जाते हैं ।

'तुं मुज हृदयगिरिमां वसे, सिंह जो परम निरीह रे;
कुमत मातंगना जूथथी, तो किसी मुज प्रभु बीह रे ।'

हे प्रभु ! मेरे हृदय की गुफामें पाप के पशु भरे हुए हैं । हे दयालु ! आप सिंह बनकर आओ, जिससे सब भाग जाये ।

✱ मरुदेवी माता को भले अंतर्मुहूर्तमें सम्यक्त्व से लेकर केवलज्ञान और मोक्ष तक का सब मिल गया, किंतु इसके पहले भी अपुनर्बंधक अवस्था थी ही, ऐसा मानना ही पड़ेगा । भूमिका के बिना भवन का निर्माण नहीं हो सकता ।

किसी भी रूप से आप भगवान के संपर्कमें आओ, भगवान कल्याण करेंगे ही । मरुदेवाने भगवान के साथ पुत्र का संबंध बांधा था । भगवान के साथ कोई संबंध बांधे और कल्याण न हो ? अरे जो पुष्प भी भगवान की मूर्ति को चढता हैं वह भव्यता की प्रतिष्ठा प्राप्त करता हैं । अभव्य जीवोंवाले पुष्पों को भगवान के उपर चढने का भाग्य नहीं मिलता ।

अनुमोदना जैसा तत्त्व भी भगवान की कृपा के बिना नहीं मिलता ।

'होउ मे एसा अणुमोअणा अरिहंताइसामत्थओ ।
अचिंत्तसत्तिजुत्ता हि ते भगवंतो ।'

- पंचसूत्र

'अरिहंत आदि के प्रभाव से मेरी यह अनुमोदना सफल बनो ।' क्योंकि भगवान अचिंत्य शक्तियुक्त हैं ।

✱ व्यवहारनय कहता हैं : गुरु और भगवान ही संपूर्ण तारणहार हैं । इसके बिना भक्ति नहीं जगती ।

सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय या साधुमें भी जो शक्ति प्रकट हुई हैं, अरिहंत भगवान के ही प्रभाव से प्रकट हुई हैं ।

✱ साधनामें सिद्धि चाहिए तो वह निरंतर किया करो । थोड़ी देर करो और फिर छोड़ दो वह ठीक नहीं । साधनामें सातत्य चाहिए ।

साधना की लाइन जुड़ी हुई चाहिए । रेलवे-पटरी जुड़ी हुई न हो तो गाडी जा नहीं सकती । हमारी साधना भी खंडित बनी हुई हो तो मुक्ति तक नहीं जा सकती ।

साधनामें सातत्य नहीं हो तो मोहराजा इतना भोला नहीं हैं कि आत्म-साम्राज्य का सिंहासन छोड़ दे । सीट छोड़नी आसान थोड़ी हैं ? एक शायद चला जाये तो उसके स्थान पर दूसरे को छोड़ता जाता हैं, अपनी परंपरा चालु रखता हैं । सीट खाली नहीं ही करता । ऐसे मोह के सामने मैदानमें पड़ना कोई आसान बात नहीं हैं ।

साधनामें अगर अतिचार होता रहता है तो अनुबंध का तंतु अखंड नहीं रहता । इसलिए ही यहाँ पंजिकाकारने लिखा हैं : **अतिचारोपहतस्य अनुबंधाभावात् ।**

यह चारित्र इस जीवनमें तो मिला, मगर अब आगामी भवोंमें तो ही मिलेगा, अगर अनुबंध का तंतु जुड़ा हुआ रहेगा ।

✱ गुरु की हितशिक्षा से जो थोड़ा भी विचलित नहीं बनता, संपूर्ण समर्पित रहता हैं, वही सच्चा शिष्य कहलाता हैं ।

हेमचंद्रसूरिजी जैसेने तो वहाँ तक कहा : हम कैसे जड़-बुद्धिवाले हुए कि हमें समझाने के लिए गुरु को बार बार वाचना देकर श्रम करना पड़ता हैं !

✱ इस बार जो कुछ पदार्थ खुले, वैसे कभी नहीं खुले । उसमें इस क्षेत्र का प्रभाव हैं ।

✱ भाव से धर्म की प्राप्ति होती हैं तब उसका सम्यक् पालन, प्रवर्तन और दमन होता ही हैं । यह नहीं होता हो तो समझें : अब तक धर्म की प्राप्ति नहीं हुई ।

प्रथम धर्म की प्राप्ति अज्ञात अवस्थामें होती हैं । मतलब यह हैं कि जीव को स्वयं को भी पता नहीं चलता कि मुझे कितना खजाना मिला ? मानो कि रत्नों से भरी हुई होने पर भी ढकी हुई पेटी मिली ! पता नहीं अंदर रत्न कितने हैं ? इस बात का बौद्ध भी स्वीकार करते हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

मनफरा, वि.सं. २०५६

५-११-२०००, रविवार
कार्तिक शुक्ला - ९

✱ आत्मा स्वभावमें रहे तो सुखी रहती हैं । स्वाभाविक हैं : मनुष्य अपने घरमें सुखी रहता हैं । वह शत्रु के घरमें रहे तो क्या होगा ?

जैनशासनमें जन्म प्राप्त करके हमें यही जानना हैं : मेरा घर कौन सा हैं ? और शत्रु का घर कौन सा हैं ?

'पिया पर - घर मत जावो ।'

- चिदानंदजी कृत पद

'ओ प्रियतम ! पर घरमें मत जाओ । हमारे घरमें किस की कमी हैं कि तुम दूसरों के घर जाते हो ? सभी तरह से सुख होने पर भी पर-घर जाकर क्यों दुःखी होते हो ?' ऐसे चेतना चेतन को कहती हैं ।

घरमें जो मिलता हैं वह होटलमें कहाँ से मिलेगा ?

चेतन को चेतना के अलावा कौन समझा सकता हैं ? भगवान और गुरु तो समझा-समझाकर थक गये । इसलिए चेतना ही चेतन को समझाती हैं । पत्नी सब तरह बराबर होने पर भी पति पर-घरमें भटके उसमें पत्नी की ही बदनामी होती हैं न ?

इस जैनशासन को प्राप्त करके पर-घर छोड़कर स्व-घरमें आना है । इसलिए कर्म के चक्रव्यूह का भेदन करना है ।

महाभारत के चक्रव्यूह से भी कर्म का चक्रव्यूह तोड़ना कठिन है । राग-द्वेष की तीव्र गांठ ही अभेद्य चक्रव्यूह है । हजारों अभिमन्यु पीछे रह जाये ऐसा यह चक्रव्यूह है । बहुत बार हम इस ग्रंथि (चक्रव्यूह) के पास आये, लेकिन यों ही वापस लौटे ।

सम्यग्दर्शन प्राप्त करना आसान नहीं है । चक्रव्यूह का भेदन होने के बिना सम्यग्दर्शन नहीं मिलता ।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए ही, प्राप्त सम्यग्दर्शन की निर्मलता के लिए ही सम्मतितर्क आदि ग्रंथो का अभ्यास करने के लिए दोषित वस्तु वापरने की छूट है ।

क्योंकि एक के हृदयमें यदि सम्यग्दर्शन का दीप प्रकाशित होगा तो वह हजारों दीप प्रकाशित कर सकेगा ।

एक आदिनाथ भगवानने कितने का केवलज्ञान रूप दीपक प्रकाशित किया ?

' इसलिए ही भगवान जगत के अप्रतिम दीपक हैं ।

'दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ !'

- भक्तामर

'भुवणपईवं वीरं ।'

भगवान जगत के दीपक हैं ।'

- जीवविचार

✱ मार्ग की जानकारी सम्यग् ज्ञान से ।

मार्ग के उपर आने की इच्छा सम्यग्दर्शन से मिलती है, लेकिन मार्गमें प्रवर्तन तो सम्यग् चारित्र ही कराता है ।

चारित्रमें कदम न उठायें तो समझें : अभी अब तक मुक्ति-मार्ग की ओर प्रयाण ही शुरु नहीं हुआ है । **आप जब धर्म-मार्गमें कदम उठाते हो तब भगवान सारथि बनकर अपने आप आपके पास आ जाते हैं ।**

(२४) धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं ।

भगवान धर्म चक्रवर्ती हैं । चक्रवर्ती की आज्ञा तो छः खण्डमें ही चलती हैं, किंतु धर्म चक्रवर्ती भगवान की आज्ञा तीन भुवनमें चलती हैं ।

'द्रव्य क्षेत्रने काल भाव गुण, राजनीति ए चारजी
तास विना जड-चेतन प्रभुनी, कोइ न लोपे कारजी ।'

- पू. देवचंद्रजी

पू. हेमचंद्रसागरसूरिजी : यह आज्ञा कहाँ हैं ? यह तो स्वरूप हैं ।

पूज्यश्री : मुझे पता था, आप प्रश्न करेंगे । परंतु हमारे भगवान कवच करके बैठे हैं । भगवान की आज्ञा के चार प्रकार हैं : द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव । इस विषय पर विशेष कल समझाऊंगा ।

✱ निक्षेप वस्तु का स्वरूप अथवा वस्तु का पर्याय हैं । पर्याय कभी वस्तु से अलग नहीं होता । पर्याय के बिना द्रव्य हो नहीं सकता ।

नाम-स्थापना द्रव्य और भाव भगवान के चार निक्षेप हैं । अर्थात् पर्याय हैं । भगवान स्वयं अपने पर्याय से जुड़े हुए हैं । अभी भगवान के नाम, स्थापना और द्रव्य तो हैं, परंतु भाव तीर्थंकर यहाँ सदेह नहीं हैं । किंतु महाविदेह में तो हैं न ? देहसे भले यहाँ नहीं हैं, परंतु ज्ञान से यहाँ नहीं हैं ? केवलज्ञान से भगवान त्रिभुवन व्यापी हैं, ऐसा समझमें आये तो कोई बुरा काम हो सकता हैं ?

श्रद्धा-चक्षु तो हमारे पास हैं ही । इससे भगवान को देख नहीं सकते ? परंतु देखने की तकलीफ कौन ले ? देखें और कहीं भगवान बीचमें आये तो ?

योगी जिन भगवान के दर्शन करते हैं वह आगम से भाव तीर्थंकर हैं । हम यह सब पढते हैं, किंतु पढकर छोड़ देते हैं । हृदयमें भावित नहीं करते ।

सच कहता हूं : भगवान को मिलने की हमें तमन्ना ही नहीं हैं । मिलने की प्रीति ही नहीं हैं ।

बार बार भगवान को प्रेम करने का कहता हूं । इसका कारण यही हैं । भगवान को प्यार किये बिना मार्ग नहीं खुलता ।

भगवान के साथ प्रेम होते ही जगत के सर्व जीवों के साथ प्रेम होगा । क्योंकि जगत के जीव भगवान का ही परिवार हैं ।

भगवान की भगवत्ता जानने से हमें क्या लाभ ? सेठ की समृद्धि के वर्णन से कोई वर्णन करनेवाले को समृद्धि नहीं मिलती,

परंतु भगवान कोई ऐसे कंजूस नहीं हैं । भगवान तो दूसरों को देने के लिये तैयार ही हैं ।

इस ललित-विस्तरामें भगवान की स्तुति के साथ साथ अजैन मतों का निराकरण भी हरिभद्रसूरिजी द्वारा हुआ हैं ।

जैनों पर होते आक्षेपों को सुनकर श्रद्धालु बैठे नहीं रहते, प्रतिवाद करते हैं । आज कोई कहे : 'जैन दर्शनमें ध्यान-योग नहीं हैं ।' तो हम सुनकर बैठे रहते हैं और इससे आगे बढकर हमारे कई लोग साथ मिलकर उनकी शिबिरोंमें भी जाते हैं । परंतु हरिभद्रसूरिजी ऐसे शिथिल श्रद्धावाले नहीं थे । उन्होंने एकेक आक्षेपकारी की बराबर खबर ले ली हैं । जैनदर्शन पर उनकी श्रद्धा बहुत ही अगाध थी ।

* चक्रवर्ती का चक्र इस लोकमें ही उपकारी हैं ।

धर्म चक्रवर्ती का धर्मचक्र इस लोक और परलोकमें भी उपकारी हैं । चक्रवर्ती का चक्र शत्रु को काटता हैं । धर्म चक्रवर्ती का चक्र चार गति को काटता हैं । अथवा चार प्रकार के दानादि धर्म से संसार को काटता हैं, अति भयंकर मिथ्यात्व आदि भाव शत्रुओं को काटता हैं ।

दान इत्यादि के अभ्यास से आसक्ति आदि का नाश होता हैं । दान से धन की, शील से स्त्री की, तप से शरीर की और भाव से विचारों की आसक्ति टूटती हैं, वह स्वानुभव सिद्ध हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

जीवों का अज्ञान क्या है ?

पूज्यश्री : सर्वज्ञ का वचन न जाने वह अज्ञान अथवा उसके अलावा सर्व व्यवहार-ज्ञान वह अज्ञान। उससे व्यवहार चलता है, लेकिन मोह नष्ट नहीं होता। उपयोगमें मोह का मिलन वह अज्ञान । ज्ञान से मोह नष्ट होता हैं ।

- सुनंदाबहन वोरा

छ'री पालक संघ, वि.सं. २०५६

६-११-२०००, सोमवार
कार्तिक शुक्ला - १०

पंचखंड पीठ के अधिपति प्रखर हिन्दुवादी संत 'आचार्य'श्री धर्मेन्द्रजी
(श्रमणों के साथ वार्तालाप के रूपमें)

मुझे बड़ी प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है इस पावन तीर्थ में श्रमणों के समुदाय के बीच स्वयं को उपस्थित पा कर । गच्छाधिपति आचार्यश्री संपूर्ण समाज के सूर्य है । उनके सामने मैं भिक्षुक के रूपमें उपस्थित हूं ।

दादा के दरबार में भिक्षुक बन कर बैठना ही उचित है । चन्द्र जैसे पू. कलापूर्णसूरिजी एवं सूर्य जैसे पू. सूर्योदयसागरसूरिजी दोनों एक साथ बिराजमान है । उनकी कृपा ही हमारा बल है ।

याचना ले कर उपस्थित हुआ हूं । संस्कृति पर आज कुठाराघात हो रहा है । जैसा संकट आज है, पूर्व काल में कभी नहीं था । आखिर यह कलियुग है न ? कलियुग कहो, या पंचम काल कहो, नाम से कोई फरक नहीं पड़ता ।

हमारे यहां ईश्वर, देश के अनेक नाम है । यहां शब्दों की दरिद्रता नहीं है । इतिहास, गुण, देश के आधार पर नाम हुए है ।

एक हजार वर्ष से निरंतर आक्रमण हो रहा था । फिर भी

हमने धर्म - आस्था को अक्षुण्ण रखी थी । चाहे कितने भी मंदिर टूटे, लेकिन आस्था टूट जाय तो फिर जोड़ना मुश्किल है। आज हमारी आस्था क्षत-विक्षत हो रही है ।

इस्लाम भोले थे, केवल आक्रमण की ही भाषा थी उनकी । इसाई बड़ा चालाक है, नियोजित रूप में वह प्रविष्ट हुआ। इसने मंदिर को नहीं तोड़े, आस्था तोड़ी, इतिहास तोड़े । इस आक्रमण को नहीं समझेंगे तो श्रावक, श्रावक नहीं रहेगा । यह संकट सभी धर्म पर है, हमारे अस्तित्व पर संकट है ।

शत्रु के पास सेटेलाइट है, शत-सहस्त्र हाथ है । आज वह मर्डोक के रूप मे आया है, इसके प्रभाव से न धर्म, न संस्कृति, कुछ भी न रहेगा ।

भारत को तोड़ने की पराकाष्ठा आ पहूंची है । हम भारतीय अभी एक अरब है । बौद्धों को गिने तो दो अरब है । पूरे विश्व में हर छट्ठा व्यक्ति भारत का होगा । लेकिन शत्रु हम सब को तोड़ना चाहता है । अमेरिका में पांच वर्ष पर गया था, 'रिटायर्ड कम्युनिटी' शब्द देखकर स्तब्ध हो गया : 'रिटायर्ड कम्युनिटी' मतलब बूढे लोगों का समाज ।

जो बूढे हो चुके हैं, उनके लिए सब कुछ है, लेकिन स्नेह नहीं है, वे परिवार से विस्थापित हो चुके है । मैंने उन बूढों को देखा । मुझे तो वे हरते फिरते प्रेत ही लगे । नया पति पाने के लिए पुराने पति के बच्चों को मारनेवाली पत्नियां वहां है ।

वहां भोगवादी संस्कृति है, यहां त्यागवादी संस्कृति है । त्यागी वृंद मेरे सामने है ।

इन्द्रियों का सुख ही सर्वस्व वे मानते है ।

भोगपरायणता के रंग में वे हमको भी रंगना चाहते हैं ।

मैं सिर्फ निवेदन करने आया हूं । आज भोगवादी राक्षसी निर्वस्त्र हो कर नाच रही है । निर्लज्जता की यह आंधी है । अगर ऐसा ही रहा तो आनेवाली पेढी हमारी बिरासत से अनजान रहेगी, वंचित रहेगी ।

ई.स. १९८४ से हमने राममंदिर - निर्माण का आंदोलन शुरु किया, १९९२ में वह पराकाष्ठा पर पहूंचा । उसमें सारी जातियां

एक हो गई । कृष्ण को ही माननेवाली यादव जातियां भी एक हो गई । जाट, यादव, केवट, गूजर, सब एक हो गये । धर्म जोड़ता है, स्वार्थ तोड़ता है । इस चीज को वेटिकन चर्च समझती है इसलिए ही हमें भड़काती है । सर्व प्रथम शीख, बौद्ध, आर्य समाजी आदि को वे हिन्दु नहीं है – ऐसा समझाते है । 'गर्व से कहो : हम हिन्दु है ।' ऐसा नारा देनेवाले विवेकानंद के अनुयायीओं ने भी सरकारी लघुमती लाभ प्राप्त करने के लिए याचिका दायर की है । कहां फरियाद करें ? पूरा आकाश ही टूटा है ।

भगवान रामचन्द्र की परंपरा में नाथों की परंपरा थी । उसमें बालानंदी साधु टिके । उस समय विष्णु मंदिर में कोई दीपक तक जलानेवाला नहीं था । वे इतने कट्टर रामपंथी थे कि विष्णु मंदिर में दिया भी नहीं जलाते थे । ऐसी फूट पंचम काल में पड़ती है । हमारी (हिन्दुओंकी) यह निर्बलता है ।

उस निर्बलता को लेकर वेटिकन हमको ज्यादा निर्बल बनाने में और हमको पूर्णरूप से तोड़ने में लगी है ।

संस्कारों को नष्ट करने का षड्यंत्र चलता है । आज कन्नड़, तमिल आदि कहने लगे है : हम हिन्दु नहीं है । धार्मिक रीति-रिवाज भिन्न होने पर भी हमने कभी इस प्रकार के अलगाव को पुष्ट नहीं किया ।

हम धर्मनिष्ठ है, सांप्रदायिक नहीं ।

सर्वोदय के नेता राधाकृष्ण बजाज ने कहा : 'हम जीये । सब जीओ' वह हिन्दु है । जो कहता है : 'में ही जीऊं, दूसरा कोई नहीं ।' वह अहिन्दु है । पूरा अहिन्दु समाज हिंसा में विश्वास करता है । हमारी सह-अस्तित्व की संस्कृति है ।

हमारे यहां लघुमती का जो बुखार है, उसे मैं कहने के लिए आया हूं । संसार में इस्लाम और ख्रिस्ती को चेलेन्ज देनेवाला सिर्फ हिन्दु समाज है ।

सबसे प्रथम झहर दिया, मेकोले ने । जिसने कहा : हम आर्य बाहर से आये है । वह यह कहना चाहता था :

'तुम और हम चोर है । तुम सिनियर चोर हो और हम जुनियर है ।'

हमारी तो प्रथम से ही आरण्यक संस्कृति थी । लेकिन वनवासीओं को समझाया : तुम आदिवासी हो, मूलवासी हो । लेकिन वेद आदि शास्त्रोंमें ऐसा एक भी प्रमाण नहीं है, जहां कुछ ऐसा उल्लेख हो । उल्लेख का एक अंश भी नहीं मिलता, फिर भी हमने यह सब मान लिया ।

लघुमती के बुखार का क्या आधार है ?

मेकोले ने जो घुसाया वह नेहरु के दिमाग में घुसा दिया गया । स्वयं इतिहासकार न होने पर भी उसने यह (विश्व इतिहास की झलक) लिख दिया । उस प्रकार मुट्ठीभर अंग्रेजों ने पूरे हिन्द में यह विचार फैला दिया ।

अजैन हिन्दु समुदाय ८४ करोड़ है । जैन १ करोड़ है । कौन भरत ? ऋषभदेव का पुत्र कौन भरत ? हम नहीं मानते । ऐसा कोइ प्रश्न हिन्दुओं द्वारा नहीं किया गया । बहुमती होने पर भी नहीं किया गया । भरत तीन है : ऋषभ, दशरथ और दुष्यन्त के पुत्र । लेकिन सभी मानते है : ऋषभदेव के पुत्र भरत से ही भारत बना है । इसमें किसी हिन्दु ने विरोध नहीं किया । अगर यह देश है तो ऋषभदेव के संतानों का है । यह भरत का है, यह भारत है ।

'भारत' का अर्थ अर्जुन है । गीता आदि में इसका प्रयोग भी है : यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति 'भारत' । इस अर्थ में हम सभी 'भारत' है । इसमें विश्वास करनेवाले ८५ करोड़ है । पांच करोड़ भारत से बहार है । अगर हम अलग होंगे तो केवल वेटिकन का ही भला होगा ।

दो अरब मिलकर भी इसा-मुसा का सामना करना मुश्किल है तो इन हिंसकों के (ईशु व हज़रत महम्मद दोनों मांसाहारी थे) समुदाय के सामने एक करोड़ हो कर आप कैसे एक रह सकेंगे ?

ऐसा विभाजन अगर चालु रहा तो फिर जैनों में भी श्वेताम्बर, दिगम्बर, तेरापंथी, स्थानकवासी..... दिगम्बर में भी सामैया (जिसमें रजनीश पैदा हुआ) आदि के अंदर भी फूट पड़ती रहेगी । फिर लघुमती इतनी बढती जायेगी कि हमारा टिकना मुश्किल रहेगा ।

इस कलियुग में एकता ही ताकत है ।

धर्म निरपेक्ष सरकार के पापपूर्ण पैसों को प्राप्त करने के लिए आप लघुमती में जायेंगे ? मैं तो ऐसी कल्पना नहीं कर सकता ।

जैन धनाढ्य समाज है । केवल जैन अगर निर्णय करें तो भारत को कर्जे से मुक्त करा सकते है ।

कश्मीर, असम टूट रहे है ।

झारखंड इसाईओं का, छत्तीसगढ आदिवासीओं का बना है । यह सब क्या है ?

आप लघुमती अगर बनेंगे तो गोभक्षक, मंदिरभंजक मुस्लीमों के साथ बैठना पड़ेगा ।

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : इसी विचार को लेकर हम सभी आचार्यों ने चार वर्ष पूर्व निर्णय किया कि हिन्दुओं के साथ ही रहना है । उस वक्त श्रावकों का विरोध भी था ।

लेकिन चार वर्ष के बाद हम स्वयं अपने आप को असहाय महसुस कर रहे है । राणकपुर, पालिताणा में मूर्तियां टूटी । बद्रिनाथ में हमारे विद्वान मुनिश्री जम्बूविजयजी चिंतित है । अब क्या करना ?

आचार्य धर्मेन्द्रजी : हमने पहले ही कहा : हम हिन्दुओंमें यह फूट ही है ।

१८ आचार्य यहां एक साथ देखकर आश्चर्य चकित हुआ हूँ ।

विराटनगर (जयपुर के पास) में (जहाँ औरंगझेब ने मंदिर तोड़ा था) दिगंबर श्वेतांबर जैनों में बड़ी फूट मैं देख रहा था । मैं तीन निर्जल उपवास करके उसके विरोध में बैठ गया । जहाँ देवराणी-जेठानी है, वहाँ भरत-राम जैसे संबंध नहीं देखने मिलेगा। वस्त्र में जू पड़ी है तो वस्त्र को हम फेंक नहीं सकते । अगर हिन्दुओं मे फूट है तो हम उनका त्याग नहीं कर सकते । यह हमारा आपसी पारिवारिक सवाल है ।

सब से प्रथम यह शब्द ही गलत है : 'हम हिन्दुओं के साथ रहना चाहते है ।' अलग हो वही साथ रह सकता है । लेकिन यहां अलग कौन है ? यह पूरा महाद्वीप भगवान ऋषभदेव का ही परिवार है ।

हम हिन्दुओं में भी कितने नये-नये पंथ निकल रहे है ?

आनंद मार्ग, बालयोगी, जय गुरुदेव, ब्रह्माकुमारी आदि इसके नमूने हैं ।

युनो में जाने का मैंने विरोध किया था । वहां पूरा रिंग - मास्टर वे ही है । लेकिन बाद में जानेवाले भी पछताये । हिन्दु नहीं, इन्डियन डेलीगेशन था । साथ में मुस्लीम आदि सब गये थे ।

* एक बार भी सती ने अगर लुच्चे के साथ समझौता कर दिया तो वह सती नहीं रहेगी । हम को आकर्षण से मुक्त होना होगा ।

* सुशील मुनि को जैन धर्म के प्रचारक तो मानो । उनका विदेश में जाने से अहिंसा आदि का तो प्रचार होगा । युनो में जानेवाला तो उनका नालायक शिष्य था ।

* आप अगर विदेश में नहीं जाना चाहते है तो हम जा कर आदिनाथ भगवान की प्रतिष्ठा करा दें । सिर्फ पालिताणा में आदिनाथ को सीमित रखना है क्या ?

हम अलग हो कर कोई बात समझा नहीं सकते ।

पू. हेमचन्द्रसागरसूरिजी : पत्रक में आबादी कैसे लिखें ?

आ. धर्मेन्द्रजी : मुख्य रूप से हिन्दु ही लिखें, ब्रेकेट में जैन इत्यादि लिखें। पत्रक में अगर खाने नहीं हो तो सरकार से लड़ो ।

पू. हेमचन्द्रसागरसूरिजी : धार्मिक लक्ष्य को लेकर हम अलग है, सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक आदि रूप से हम आपके साथ ही है ।

आचार्य धर्मेन्द्रजी : आज जैन युवक, ख्रिस्ती युवतिओं के साथ शादी कर के आशीर्वाद के लिए हमारे पास आते है । हम आशीर्वाद देते है । दूसरा हम क्या कर सकते है ? क्या बहिष्कार करें ? बहिष्कार नहीं, परिष्कार करना है ।

* मैं तो आपका मजदूर हूं । आप जो भी चाहे मेरा उपयोग कर लें ।

पू. धुरंधरविजयजी : हम हिन्दु तो है ही लेकिन जैनेतर हिन्दु हम को 'हिन्दु' के रूप में स्वीकार करते है क्या ?

आ. धर्मेन्द्रजी : पूरा समाज उन्मादग्रस्त है । ज्योति बसु, मुलायम सिंह आदि हिन्दु नहीं है क्यां ? फिर भी ये लोग गोमांस खा रहे है ।

एकात्मा से ही यह भेदभाव दूर हो सकता है ।

हम तो चाहते है : विश्व हिन्दु संमेलन में जैन साधु भी उपस्थित हों । हमने बौद्धों में 'बुद्धं सरणं पवज्जामि ।' का नारा लगाया था ।

आप जहां बुलायेंगे वहां पर शंकराचार्यों के साथ हम भी आ जायेंगे ।

पू. हेमचन्द्रसागरसूरिजी : तीन दिन का संमेलन बनाने की जरुरत है । जहाँ पर आप, ऋतंभरा, मुरारी बापु आदि सब पधारें ।

आ. धर्मेन्द्रजी : १७५ में से कम से कम १०० हिन्दु संत पधारेंगे, आप जहां बुलायेंगे । मार्गदर्शक मंडल में सभी हिन्दु इक्कट्ठे हो सकते है ।

एक भी ऐसा तीर्थ नहीं है, जहां हिन्दु जैन तीर्थ का मिश्रण न हो । कुंभ मेले जैसे प्रसंग में ऐसी बात की जा सकती है ।

वहां जैन संत न पहुंचे तो प्रतिनिधि भेजें । अयोध्या में दिगंबराचार्य देशभूषण आदिनाथ भगवान की बड़ी प्रतिमा की प्रतिष्ठा करा रहे थे । उस प्रतिमा को ले आने के लिए गलीओं में सब हिंदुओंने साथ दिया था । केसरीयाजी बड़ा तीर्थ है । ब्राह्मणों ने सिद्ध किया : यह हम सब को जोड़ता है ।

जहां विसंगतियां हो वहां तोप के मुंह पर बैठने के लिए मैं तैयार हूं ।

प्राणलालजी : अभी शंकराचार्यजी ने बद्रिनाथ में हमारे जैन मंदिर में प्रतिष्ठा को रोकने के लिए कितने रोड़े डाले ?

धर्मेन्द्रजी : शंकराचार्यजी कौन है ? आज कई नकली शंकराचार्य हो गये है । गली-गली में दो - दो शंकराचार्य घूम रहे है । कोई भी शंकराचार्य के ठेकेदार बन सकता है ।

इसका अर्थ यह नहीं कि हम परिवार से अलग हो जायें । यह हमारी पारिवारिक समस्या है । वह आपस में बैठकर सुलझानी होगी ।

हमारे हिन्दुओं में सभी एक मत नहीं है । आप के जैनोंमें भी परस्पर संमति कहां है ?

एक करोड़ जैन अगर अलग हो गये तो बौद्धिक धारा अलग

हो गई । जैनों के पास बुद्धि की शक्ति है । शीखों के पास बल है । शीख अलग होने से बल अलग हो गया । फिर हिन्दु के रूप में कौन रहेगा ? सिर्फ मछुआरे ही बचेंगे ।

✱ यद्यपि गांधी का मैं भयंकर विरोधी हूं । जिन्होंने किसानों को मुर्गी - पालन के लिए, मद्रासवासीओं को मछलियां खाने की सलाह दी थी, रुग्ण बछड़ों को बन्दूक से मरवाया था । फिर भी विदेशीओं के समक्ष मेरा सवाल है : तुमने गांधी, इन्दिरा, J.P., बाबा आम्टे आदि को क्यों नोबल नहीं दिया ? मधर टेरेसा को क्यों दिया ? आखिर वह तुम्हारी थी इसलिए ?

किसी विदेशी को तुम पोप बना सकते हो क्या ? केरल के लोग अगर काले है तो कश्मीर के गोरे लोगों को तो पोप बनाओ । ये वेटीकन के लोग है । अगर आप अलग हुए तो सर्व प्रथम आप को ही वे तोड़ना शुरु करेंगे ।

✱ जाट गुज्जर भी अपने को हिन्दु नहीं कहते, जाट इत्यादि कहते है । यह हमारा दुर्भाग्य है ।

मैं जैन-जैनेतरों की एकता के लिए प्राण तज देने के लिए तैयार हूं । और तो क्या कर सकता हूं ?

(नीचे मंडप सभामें)

(आचार्य धर्मेन्द्रजी का परिचय)

चंद्रकान्तभाई : धर्मेन्द्रभाईने १११ स्थानों पर बलिदान बंध कराया हैं । ६० वर्ष तक उनके पिताने (रामचंद्रवीर) अन्न-नमक नहीं खाया । ८ लाख लोगों को हिंसासे छुड़ाये हैं । हिन्दुत्व के सामने चुनौती आये उसके सामने सजग हैं ।

उत्तमभाई : आचार्य धर्मेन्द्रजी जयपुर पंचखंड के अधिपति हैं । समर्थ स्वामी रामदास (शिवाजी के गुरु) के वे वंशज हैं । स्वामी रामदास उनकी ८-१० पीढी पर आते हैं । उनकी वंश-परंपरा गौरववंती हैं । छोटी उम्रमें गोहत्या बंध न हो वहाँ तक अन्न-नमक त्याग किया वह त्याग आज भी चालु हैं । ११०० मंदिरोंमें उपवास करके बलिदान बंध कराये हैं । उनके पिताजीने दिल्लीमें १६६ दिन के उपवास किये थे । शारीरिक स्थिति बिगड़ जाने के कारण भरसभामें ८ वर्ष की वयमें उन्होंने प्रथम प्रवचन

किया । तब सभा मुग्ध बन गई थी । इनकी केसेट विश्वभरमें जाती हैं । कवि, साहित्यकार और वक्ता हैं । शायद ही देखने मिले वैसे अजोड़ वक्ता हैं ।

अहमदाबादमें पू. रत्नसुंदरसूरिजी, पू. हितरुचिविजयजी को लघुमती विषयक चर्चा-विमर्श के लिए मिले हैं ।

आचार्य धर्मेन्द्रजी : ओं...

भगवान के अनेक नाम-रूप है । नमोऽस्तु अनंतमूर्तये सहस्ररूपाय ।

भगवान को अनेक नामों से स्मरण करने की हमारी परंपरा है । उन्हीं में एक नाम है : अरिहंत । जैन परंपरा के अनुसार णमोक्कार मंत्र अरिहंत के नमन से शुरु होता है ।

✱ हिन्दु वह है जो सब को नमन करता है । जो अहिन्दु है वह नमन नहीं करता । उद्दंड अहिन्दु है ।

सभी नामों में प्रभु देखना हिन्दु - परंपरा है ।

अरिहंतों के बाद फिर दूसरों को (सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु) भी नमस्कार किया गया ।

हिन्दुचेतना नमन करने में रुकती नहीं, पुस्तकों के कीटों को नहीं, लेकिन आचारवंत आचार्यों को यहां प्रणाम है ।

आचार्यों तक पहूंचानेवाले उपाध्याय है । जिन्होंने मुझे ज्ञानमंदिर में पहूंचाया, उन उपाध्यायों को नमन ।

संसार के सभी साधुओं को भी नमन ।

हिन्दु प्रज्ञा की यही व्याख्या है ।

'सकल लोकमां सौने वंदे, निंदा न करे केनी रे,
वाच-काछ-मन निर्मल राखे, धन-धन जननी तेनी रे ।'

- नरसैंया

रात को १२ बजे मैं यहां आया । मुझे जल्दी नींद नहीं आती । अच्छा तो नहीं हूं । अच्छे की संगति में तो रह सकता हूं । मैंने वहां पड़ी हुई दो-तीन पुस्तकें पढी । शुद्ध श्रावक के द्वारा प्रकाशित स्तवन थे । उसमें प्रारंभ था : 'नैनं छिन्दन्ति' गीता का यह श्लोक था । उस में कबीर, मीरां की भी कृतियां थी ।

लंबा तिलक खींचे वह वैष्णव हैं, ऐसे नहीं कहा, मगर पर

की पीडा जाने वह वैष्णव हैं । अठारह पुराणों का सार पर की पीडा का त्याग हैं ।

'अष्टादश पुराणेषु, व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम् ॥'

(हालांकि पुराण व्यास ने बनाये है, ऐसा मैं नहीं मानता)

यही हिन्दु-प्रज्ञा का नवनीत है ।

नरसिंह ने विष्णु के नाम पर पूरा जैन दर्शन ही डाल दिया है । नरसिंह के सामने शेक्सपियर फिक्का है ।

धर्म परिषद में किसी जैन ने कहा था : अभी धर्म में परिवर्तन की जरुरत है ।

उस वक्त मैं १८ वर्ष का था, मैंने प्रतिरोध करते हुए कहा : धर्म में परिवर्तन संभवित नहीं है ।

धर्म अपरिवर्तनीय है वैसे अखंड है । यहां मिली-जुली संस्कृति नहीं है, एक है ।

संस्कृति की कभी कोकटेल नहीं हो सकती । फिटकरी और दूध का मिश्रण नहीं हो सकता । संस्कृति का काम है : एक करना । भेद करता है वह धर्म नहीं, संप्रदाय है ।

धर्म राजनैतिक संवैधानिक नहीं है कि उसे हम चाहे जैसे बदल दें ।

तुलसीदास कहते है :

सभी नमनीयों को मैं नमन करता हूं ।

यही हिन्दु संस्कृति है । यही जैन-वैष्णव प्रज्ञा है ।

नेहरु ने डिस्कवरी की है । वाकई में भारत माता की डिस्कवरी हो ही नहीं सकती । जिसने भारत माता में माता नहीं, जमीन का टुकड़ा देखा, वे क्या डिस्कवरी करेंगे ?

✱ प्रभु के अनंत नाम-कीर्तन करने से प्रज्ञा निर्मल होती है ।

अरिहंत हरे... अरिहंत हरे... अरिहंत हरे... अरिहंत हरे...

हरण करता है वह हरि है, हर है । मैं हरि और हर - दोनों का आदर करता हूं । हरद्वार और हरिद्वार - दोनों नामों में मेरी सम्मति है । केदारनाथ जाना है तो हरिद्वार है । बद्रिनाथ जाना हे तो हरद्वार है ।

अतुल अनादि अनंत हरे,
व्यापक दिशि-दिशि भय अंत हरे,
जगदीश जिनेन्द्र जयवंत हरे,
भव-भयहारी भगवंत हरे.

मैं समझाने के लिए नहीं, याद दिलाने के लिए आया हूं। अपने परिवार में आया हूं । अपने तीर्थ में आया हूं ।

आमंत्रण हो तो पराये समुदाय में भी मैं जाता, लेकिन यह तो हमारा ही परिवार है । यहां दिव्य दृश्य देखने मिला यह मेरा परम सौभाग्य है ।

सनातन धर्म यहां मूर्तिमंत प्रगट हुआ है । सनातन मतलब जो प्राचीन से भी प्राचीन है जो शुरु नहीं होता, जो कभी खतम नहीं होता । जो पैदा होता है, वह जरुर नष्ट होता है । इसलिए ही भगवान के नाम हमने अनामी अनंत इत्यादि रखे है । भगवान कभी समाप्त नहीं होते ।

जो १४०० साल पूर्व पैदा हुए, उनकी उम्र है । संप्रदाय पैदा होते है, धर्म नहीं । ई.स. २००० (मिलेनियम) से हमारा क्या लेना देना ? श्रावकों को क्या २००० से मतलब ?

भगवान प्रेम रूप है । प्रेम के अलावा भगवान का दूसरा कोई स्वरूप नहीं है ।

'खुदा से डरो' इस्लाम कहता है । हम कहते है : भगवान से प्यार करो । कभी हम नहीं कहते : अरिहंतों से डरो ।

जिसकी उपस्थिति भय का नाश करती है, वह तीर्थंकर है । वे तो अभयदाता है । यहां ड़रोगे तो निर्भय कहां बनोगे ?

भय और भक्ति एक साथ नहीं रह सकते ।

जो स्वयं ही खुदा हुआ है, उससे क्या डरना ? ख्रिस्ती - इस्लाम खुदा से डरने का कहते है, लेकिन हिन्दु संस्कृति ऐसा नहीं कहती ।

अर्हतों की करुणा की लीला समझ में नहीं आती, इसलिए वह अगम्य है ।

संसार के सभी प्राणी के प्रति सामान्यरूप से बहता है, वह प्रेम है । इसु को २००० वर्ष भी हुए नहीं है, एक महीना और

२४ दिन बाकी है । मिलेनियम किस बात का ? जो १४००, २००० वर्ष से हुए है, वे कभी न कभी खतम होंगे । जो आदिनाथ की परंपरा है, वह न पैदा हुई है, न नष्ट होगी ।

जो आत्मा के अमृतत्व में विश्वास करता है, वह हिन्दु है । जो एक बार गल जाता है, फिर खड़ा नहीं होता है, वह अहिन्दु है ।

'अधो गच्छन्ति तामसाः ।'

- श्री कृष्ण

मोक्ष मार्ग उपर जाता है, नीचे नहीं ।

यह निर्विकल्प सत्य है कि हम अविच्छिन्न धारा के संतान है ।

पहले यह निश्चित करो : हम इन्डीअन है कि भारतीय ? अगर भारतीय है तो भारत शब्द कहां से आया ? भारती मतलब निर्मल प्रज्ञा । विज्ञान अन्य से मिल सकता है, निर्मल प्रज्ञा नहीं मिल सकती,

यह है भारती

जिस की उतारे हम आरति ।

भारती, लक्ष्मी, भैरव, क्षेत्रपाल, कुंकुम, अक्षत, माला, चैत्य, देवालय, गुरु, भगवान, गंधर्व, स्वर्ग, विद्याधर, कैवल्य, निर्वाण, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी यहां जैनों में और वहां (हिन्दु संस्कृति में) भी है ।

यह पूरी कल्पना केवल आदिनाथ के संतानों में हो सकती है, वहां नहीं । फुटे हुए ढोल में ऐसी ध्वनि पैदा नहीं हो सकती ।

जमीन, राज्य, सीटें, धन, बांटा जा सकता है, चेतना व धर्म बांटा नहीं जा सकता, यह अखंड है ।

ओंकारं. श्लोक का कोपी राईट हो सकता है क्या ? तिलक, माला, पीतांबर, चोटी (दोनों की कट गई) सब दोनों में समान है । सतीत्व, संयम, ब्रह्मचर्य, इस्लाम में नहीं हो सकता, यहीं हो सकता है ।

कुंभणदास और तुलसीदास ने अकबर के यहां आने के लिए मना कर दिया था । यही आर्य संस्कृति की बुनियाद है । धोती, कपड़ा, साड़ी, सौभाग्य, सिन्दूर, मंगलसूत्र, भाषा, संस्कृत, प्राकृत, ओंकार - इसमें कहां फरक है ?

हरा झंडा है, वह इस्लाम है । लाल झंडा है, वह हिन्दु है । क्रोस ख्रिस्ती का, चांद – तारा इस्लाम का, हथोड़ा कम्युनिस्ट का प्रतीक है ।

✱ यह वैदिक संस्कृति हिंसक नहीं है । आकाश में जाय वह खग । मिट्टि में जाय वह मृग । बहती रहे वह गंगा । हिंसा से दूर रहे वह हिन्दु है ।

हमारी सिन्धु नदी कौन ले गया ?

सिन्धु नदी भारत की थी ।

यहां से कहां जाओगे ? फिज़ी को समृद्ध बनाने के लिए जिन भारतीयों ने मेहनत की, उनके नेता महेन्द्र चौधरी को ६६ दिन तक वहां के लोगों ने बंदी बना दिया । क्या करोगे तुम ?

नेहरु ने जो किया, विभाजन का कार्य, वह क्या आप श्रावक हो कर करेंगे ?

लघुमती के अंदर भी फिर कितने टूकड़े हो जायेंगे ?

समुद्र – यात्रा यहां–वहां (जैन–अजैन में) निषिद्ध है । एक शंकराचार्य ने की तो उन्हें पद से हटना पड़ा । हमें यहां रहना है, यहीं रहकर हिंसक संस्कृति से लड़ना है ।

अगर हम विदेश चले भी गये, डोलर्स कमा भी लिये, लेकिन हमारी संस्कृति का क्या ? मां–बाप वहां कमाने जाते है, और संतान पीने के लिए चले जाते है । यह हिंसक संस्कृति की देन है । हिंसक संस्कृति के सामने हम एक हो कर ही चुनौती दे सकते है ।

हमारे भाग्य का निर्णय क्या न्यायालय करेगी ? जिन्हें संस्कृति का ज्ञान नहीं है, वे क्या निर्णय करेंगे ? यह निर्णय तो धर्माचार्यों को करना चाहिए ।

मुस्लीम, ख्रिस्ती, अदालत नहीं चाहते । वे कहेंगे : कुरान ही न्यायालय है । हिन्दु एक पत्नी से सन्तुष्ट है । वे चार पत्नियां रखकर २५ पैदा कर सकते है ।

बद्रिनाथ में अगर आज जैनों का मंदिर नहीं हो रहा है तो क्या लघुमती में जाने से मंदिर हो जायेगा ? क्या हम लघुमती होने से टिके रहेंगे ?

इस सनातन में कोई आगे-पीछे नहीं है ।

एक अरब अट्ठानवे करोड़ वर्षों से भी पुराना है हमारा इतिहास । हमें टूटना नहीं चाहिए । अगर हम राजस्थान की ढाणीओं की तरह टूटना चालु रखेंगे तो हमारा टूटना कोई रोक नहीं सकता ।

मेरी कामना है : सभी हिन्दु (श्वेताम्बर, दिगम्बर, हिन्दु आदि) ओं का एक तीर्थ हो ।

* राम का प्रादुर्भाव केवल वैदिक हिंसा रोकने के लिए ही हुआ था । वैदिक हिंसा का प्रारंभ केवल रावण से ही हुआ था । अगर इसे कोई अन्यथा सिद्ध कर दे तो मैं जाहिर मंच पर आना बंद कर दूंगा ।

सांप को मारना रामचन्द्रजी इस अर्थ में उचित समझते थे कि दूसरे जीव चैन से जी सके ।

हिन्दु-एकता के लिए मेरे शरीर की कभी भी जरुर पड़े तो आधी रात को आने के लिए तैयार हूं ।

हम तीर्थंकरों की संतान है ।

इतनी देर तक आपने मुझे (सुनकर) बर्दास्त किया, इसलिए मैं आपका आभारी हूं ।

पूज्य धुरंधरविजयजी :

पालिताणामें आये तब से सौहार्द का वातावरण रहा हैं । चातुर्मास समाप्ति के समय आचार्य श्री धर्मेन्द्रजी एकता का मिशन लेकर आये हैं । थोड़ा समझ लें ।

हिन्दी प्रजा के विभाजन के लिए षड्यंत्र चल रहा हैं । जैनों भी लघुमतीमें आ जाय उसके लिये लालच दी जा रही हैं । बहुत विचारक विरोधमें हैं ।

मूलमें थोड़ी लालच देकर बहुत नुकसान होता हैं उसमें हमें भागीदार नहीं होना हैं, वह समझ लें ।

हम आर्य हैं । आर्य कभी अलग हो नहीं सकते । आर्यपुत्र आर्य जंबू इत्यादि शब्दों के प्रयोग शास्त्रोंमें देखने को देखने मिलते हैं । आर्य का मतलब ही हिन्दु !

प्रायः इस बारेमें सब आचार्य एकमत हैं; महासंस्कृति से अलग नहीं होनेमें ।

सब आचार्य भगवंत अभी अहमदाबादमें मिलेंगे । वहाँ चर्चा होगी ।

वि.सं. २०२७में उदयपुरमें मेरा चातुर्मास था । विश्व हिन्दु परिषदमें मुझे आमंत्रण मिला । मैं गया । सबसे पहले प्रवचन दिया । 'वसुदेव हिन्दी'में शब्द आता हैं । इस लोक से परलोकमें गमन करे वह हिन्दु !

१२०० वर्ष पहले जिन्होंने (जिस की गद्दी उदयपुरमें हैं ।) गजेनकपुरमें आकर राज्य की स्थापना की, उस सीसोदीया वंश के कुलगुरु तपागच्छीय आचार्य भगवंत ही रहे हैं । जैन और अजैन, दोनोंमें मुख्य अग्रगण्य मेवाड़ के महाराणा थे । वे पहले पगलिया श्री पूज्य के वहाँ करते । राणा प्रताप के हीरविजयसूरिजी के उपर के उपालंभ के पत्रमें भी मिलता हैं : हमको छोड़कर आप अकबर के पास क्यों जाते हैं ?

मेवाड़ के राज्यमें जब भी पता चले तब पहले केसरीयाजी का मंदिर बनता । ऐसी परंपरा थी । राजस्थान के गांवोंमें में आज भी जैन-अजैन मंदिरों की एक ही दिवार हैं । सिरोही के महाराजा इत्यादि के कुलगुरु जैनाचार्य थे । जैन पौषधशालामें ही महाराजा के पुत्रों का पठन-पाठन होता था ।

बंगालमें १० हजार पाठशालाएं थी । लोर्ड मेकोल के बाद सब टूटा । विद्या-वाणिज्य महाजन के हाथमें ही था । महादेव-हनुमान के मंदिर भी महाजन सम्हालते । इस अविभक्त - परंपरा को तोड़ने के षड्‌यंत्र रचे गये हैं ।

सनातन धर्म का कोई नाश कर नहीं सकता, पूज्य आचार्य भगवंत जैसे थोड़े भी उपासक होंगे ।

पोप को स्वयं के पश्चिममें ही अनुयायी नहीं मिलते । उसकी जड़ टूट रही हैं । अनुयायीयों को ढूंढने के लिए उन्हें यहाँ तक आना पड़ता हैं । इसा-मुसा खतम हो जायेंगे, लेकिन गिरते वटवृक्ष के नीचे हम न दब जायें, उसका ध्यान रखना पड़ेगा ।

१-२ वर्षमें श्रमण संघ ऐसा एक बने कि जिसके प्रभाव से हिन्दुस्तान पर संस्कृति की लहर छा जाये ।

⌘ ⌘ ⌘

डोली में विहार

६-११-२०००, सोमवार
कार्तिक शुक्ला - १०

✱ धर्म जब से मिला हैं तब से जीवनमें परिवर्तन आया, यह हमारा स्व-अनुभव हैं । भले यह बाह्य परिवर्तन होगा, परंतु तो भी इसका महत्त्व कम नहीं हैं । आंतरिक परिवर्तन भी धीरे-धीरे आयेगा, अगर इसका लक्ष होगा ।

अन्य दर्शनीयों के जीवनमें भी धर्म के प्रवेश से कैसा परिवर्तन दिखता हैं ? जैनेतर मीरा, नरसिंह, रामकृष्ण परमहंस इत्यादि प्रभु-भक्तों के जीवनमें जो मस्ती थी उसका इनकार कैसे हो सकता हैं ?

इतनी ऊंची भूमिका पर आने के बाद भी यदि अंतरंग परिवर्तन न आये तो हमारे उद्यम की खामी समझें, धर्म की नहीं ।

माँ बालक के लिए शिरा बनाकर देती हैं, उसी तरह पूर्वाचार्योंने हमारे लिए ये शास्त्र बनाकर दिये हैं, संस्कृतमें भी समझमें न आये तो गुजराती कृतियां रची हैं ।

३० वर्ष की उम्रमें दीक्षा लेने के बाद भी संस्कृत का अभ्यास करने का मन इसलिए हुआ कि अनुवाद चाहे जितना अच्छा हो तो भी मूल कृति की तुलनामें नहीं आ सकता । अनुवाद यानि बासी माल ! बासी माल नहीं ही चाहिए - ऐसे संकल्पने ही

मुझे संस्कृत अभ्यास की प्रेरणा दी ।

✱ इस जन्ममें जितनी चीजें मिलेगी, कुछ अपूर्ण होगा तो भी चिंता न करें, आगामी भवमें अधूरी साधना पूर्ण होगी । परंतु साधना ही शुरु नहीं हुई हो तो कैसे पूर्ण होगी ?

भगवान के जैसा उपादान प्राप्त करके हमारी आत्मा कल्याण न साधे तो कब साधेगी ? दूसरे किसी को नहीं तो हम स्वयं को तो उपालंभ दे सकते हैं न ? हमारे दीक्षादाता पू. रत्नाकर वि.म. स्वयं को शिक्षा देते । काउस्सग्ग इत्यादिमें प्रमाद आये तो स्वयं ही स्वयं को थप्पड़ मार देते थे ।

✱ चक्रवर्ती के चक्र से बड़े-बड़े शत्रु राजा भी डर जाते हैं । भगवान के धर्मचक्र से भी चारों गति, चारों कषाय, चारों संज्ञाएं चकनाचूर हो जाती हैं, चारों धर्म मिल जाते हैं । अतः एव ही भगवान चातुरंत चक्रवर्ती हैं ।

✱ पंचेन्द्रिय का उत्कृष्ट काल २०० से ९०० सागरोपम हैं । यदि इतने कालमें काम न किया तो विकलेन्द्रिय - एकेन्द्रियमें जाना पड़ेगा । इसलिए ही प्रमाद करने की शास्त्रकारोंने मना की हैं । किंतु सुने कौन ? जीवनमें उतारे कौन ?

✱ सम्यग्दर्शन से लेकर सिद्धिगति तक भगवान इस तरह ही (संसार का अंत करनेवाले धर्म चक्रवर्ती के रूपमें) वर्तते हैं । जहाँ भगवान जाते हैं वहाँ मोह के साम्राज्य को तोड़-फोड़ देते हैं । हमें यहाँ तक भगवानने ही पहुंचाया हैं न ? लेकिन हम कभी-कभी भगवान को छोड़कर मोह के पंडालमें घुस जाते हैं । अथवा यहाँ रहकर मोह के एजन्ट का काम करते हैं, जैसे भारतमें रहते आतंकवादी पाकिस्तान के एजन्ट बनकर काम करते हैं ।

रहना भगवान के शासनमें और काम करना मोह का, यह कैसा ? रहना भारतमें और काम करना पाकिस्तान का, यह कैसा ?

✱ **धम्मदयाणं** से लेकर **धम्मवरचाउरंत** तक विशेष उपयोग संपदा हुई ।

(२५) अप्पडिहयवरनाण-दंसण-धराणं ।

कितनेक (बौद्ध) स्वयं के भगवान को 'प्रतिहतवरज्ञानदर्शनधर' मानते हैं । वे कहते हैं : हमारे भगवान सर्वज्ञ हो या न हो, हमारे इष्ट

पदार्थ को देखें तो पर्याप्त हैं। यहाँ इस मतका खंडन हुआ हैं। वीतराग प्रभु अप्रतिहत उत्तम ज्ञान और दर्शन को धारण करनेवाले हैं।

सर्वज्ञता की मज़ाक उडाते इन बौद्धोंने कहा हैं :

सर्वं पश्यतु वा मा वा, तत्त्वमिष्टं तु पश्यतु ।
प्रमाणं दूरदर्शी चेदेते गृध्रानुपास्महे ॥

हमारे भगवान सब देखे या न देखे। लेकिन इष्ट तत्त्व को देखो। दूरदर्शी को ही यदि प्रमाण गिना जाय तो हम गीध की उपासना करें। गीध कितने दूर-दूर तक देख सकता हैं ?

पांचों आचारों का ज्यों ज्यों पालन होता जाय त्यों त्यों ज्ञानादि का क्षयोपशम बढता जाता हैं। ज्ञान और ज्ञानी की आशातना न करें, ज्ञान ज्ञानी का बहुमान करें, इत्यादि द्वारा ज्ञान बढ़ता रहता हैं।

दीक्षा ली तब कितना आता था ? अब ज्यादा आता हैं, उसमें ज्ञानाचार के पालन का प्रभाव हैं, यह समझमें आता हैं ?

केवलज्ञान-दर्शन तो हमारा स्वभाव हैं। यह स्वभाव हम प्राप्त न करें तो कौन प्राप्त करेगा ?

भगवान संपूर्ण जगत को पूर्णरूप से देखते हैं, परंतु हम हमें स्वयं को भी पूर्णरूप से नहीं देखते हैं। भीतर मिथ्यात्व बैठा हैं न ?

उपाश्रय, शिष्य, भक्तवर्ग, बोक्ष इत्यादि मेरे हैं ऐसा लगता हैं, किंतु ज्ञानादि मेरे हैं, ऐसा लगता हैं ?

भक्त आदि से लगती पूर्णता मांगे हुए आभूषण जैसी हैं। ज्ञानादि की पूर्णता हमारी स्वयं की हैं, यह न भूलें।

जिनकी पूर्णता प्रकट हुई हैं, उनका बहुमान करते रहो तो भी काम हो जायेगा। परंतु अंदर से मानते हो ? पूर्णता देखने के लिए अंदर की आँख चाहिए। बड़े-बड़े पंडितों के पास भी ऐसी आँख नहीं होती। पं. सुखलाल जैसे बड़े पंडित को भी भगवान की सर्वज्ञतामें विश्वास नहीं था। भगवान और गुरु की कृपा के बिना सर्वज्ञता का पदार्थ समझमें नहीं आता।

* अब कल की बात करूं। पू. देवचंद्रजीने कहा हैं : जड़ और चेतन सभी भगवान की आज्ञा के अनुसार चल रहे हैं। आगे बढकर मैं वहाँ तक कहूंगा : हमसे भी जड़ पदार्थ भगवान की आज्ञा ज्यादा पालते हैं।

'द्रव्य क्षेत्रने काल भाव गुण, राजनीति ए चारजी;
तास विना जड चेतन प्रभुनी, कोई न लोपे कारजी ।'

- पू. देवचंद्रजी

साम, दान, दंड और भेद – इन चार से राजनीति चलती हैं उस प्रकार भगवान की आज्ञा भी चार प्रकार की हैं ।

प्रत्येक द्रव्य की मर्यादा : स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव और स्वगुणमें रहना । इसका कोई उल्लंघन कर सकता हैं क्या ?

✱ जीवास्तिकाय के रूपमें हम सब एक हैं । **'एगे आया'** इत्यादि सूत्र इस तरह ही घट सकते हैं । चेतना की अपेक्षा से जीव का एक भेद एकता को बताता हैं ।

जीवास्तिकाय द्रव्य से अनंत, क्षेत्र से लोकव्यापी, काल से शाश्वत, भाव से अवर्ण, अगंध और अरूपी हैं । अरूपी होने पर भी अस्तित्व धारण करता हैं । इसलिए ही वह जीवास्तिकाय कहा जाता हैं ।

जीवास्तिकायमें एक जीव का एक प्रदेश भी कम हो तो वह जीवास्तिकाय नहीं कहा जा सकता । इसमें हम भी आ गये न ?

इन लक्षणों से कोई जड़ बाहर जा सकता हैं ?

पू. हेमचंद्रसागरसूरिजी : हम भी कहाँ उल्लंघन करते हैं ?

पूज्यश्री : भगवानने जीवों के साथ मैत्री करने को कहा, हम नहीं करते, यह उल्लंघन नहीं कहा जाता ?

पू. हेमचंद्रसागरसूरिजी : आपने एंगल बदल दिया ।

पूज्यश्री : बदलना ही पड़ता हैं न ? इस तरह लें तो ही साधनामें गति आती हैं ।

✱ **भगवान के मनोवर्गणा के पुद्‌गल अनुत्तर विमान तक पहुंच सकते हो तो हम तक नहीं पहुंचेंगे, ऐसा किसने कहा ?**

दूसरों के लिए शुभ भाव भायें । अवश्य असर होगा ही । मात्र बोलने से ही सुधरते हैं, ऐसा नहीं हैं, मन से भी सुधर सकते हैं, यह समझना है ।

सरोवर के पास जाते ही शीतलता का अनुभव होता हैं, उसी तरह संतों के पास जाते ही शीतलता का अनुभव होता हैं, उसका कारण उनके हृदय का शुभ भाव ही हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

पू. आ. श्री भद्रगुप्तसूरिजी म.

७-११-२०००, मंगलवार
कार्तिक शुक्ला - ११

स्थल : वावपथक धर्मशाला
पू. भद्रगुप्तसूरिजी की प्रथम स्वर्गतिथि

पू.आ.श्री विजय जगवल्लभसूरिजी :

मेहसाणा के मूलचंदभाई को किशोर अवस्थामें अरमान थे: अभिनेता बनने के । पू. प्रेमसूरिजी म.की इन पर नजर पड़ी और बन गये, जैन मुनि ।

अभिनेता भी वेष-परिवर्तन करता हैं । मूलचंदभाईने भी साधु बनकर वेष-परिवर्तन किया ही हैं न ?

मूलचंदभाई पू. भानुविजयजी के शिष्य मुनिश्री भद्रगुप्तविजयजी के रूपमें प्रसिद्ध हुए ।

'महापंथनो यात्रिक' नामक पुस्तक से शुरु हुई इनकी सर्जन यात्रा मृत्यु तक चलती रही । अंतिम भयंकर बिमारी के बीच भी समाधिपूर्ण चित्त से वे साहित्यसर्जन करते ही रहे । यह इनके जीवन की महत्त्वपूर्ण सिद्धि थी ।

पू.आ.श्री हेमचंद्रसागरसूरिजी :

हमारे इन स्व.पू. आचार्यश्री के साथ गाढ संबंध थे । मैं

व्याख्यानमें नया-नया था तब मुझे वे अनेक तरह से प्रोत्साहित करते थे । व्याख्यान के नये मुद्दे देते । व्याख्यान किस तरह देना ? उस बारेमें समझाते । स्वयं व्याख्यान अधूरा छोड़कर मुझ से बुलवाते, मेरे व्याख्यान की प्रशंसा कर मुझे प्रोत्साहित भी करते।

आज मेरा जो व्यक्तित्व हैं, उसकी तालीममें अनेक परिबल रहे हुए हैं, उसमें पूज्यश्री भी एक महत्त्व के परिबल थे ।

पं. छबीलदासजी ऐसे प्रसंग पर एक संस्कृत श्लोक कहते वह याद आ जाता हैं :

हंस जब सरोवर को छोड़कर चले जाते हैं तब हंस को तो कोई कमी नहीं पड़ती । क्योंकि जहाँ राजहंस जायेगा, वहाँ सरोवर का निर्माण हो ही जायेगा । परंतु सरोवर सूना हो जायेगा ।

जिनशासन का यह सरोवर भी पूज्यश्री के बिना अभी सूना हुआ हैं ।

✱ पू. गणि श्री मुनिचंद्रविजयजी :

हिन्दी कवि श्री मैथिलीशरण गुप्तने कहा हैं :

'अंधकार हैं वहां, जहां आदित्य नहीं हैं;
मुर्दा हैं वह देश, जहां साहित्य नहीं हैं ।'

हमारे लक्ष्मीपुत्र समाजमें साहित्यकार के रूपमें प्रसिद्ध हुए पूज्य आचार्य विशिष्ट व्यक्तित्व के स्वामी थे ।

यद्यपि, पूज्यश्री के साथ मेरा खास परिचय नहीं हैं । सिर्फ दो ही बार उनको देखे हैं । एक बार गृहस्थावस्थामें... वि.सं. २०२७में मुंबई - सायन के उपाश्रयमें, जब मैं ११-१२ वर्ष की वय का था । बड़े भाई के साथ सायन मंदिरमें दर्शनार्थ गया था । बाजु के उपाश्रयमें पू. मुनिश्री भद्रगुप्तविजयजी का प्रवचन चल रहा था। बड़े भाई के साथ मैं भी सुनने बैठा । इनके प्रवचन का एक वाक्य आज भी याद हैं : 'मोहराजा कपालमें कुंकुम का तिलक लगाकर उपर कोयले का चूर्ण लगाता हैं ।' कौन से संदर्भमें यह वाक्य था वह याद नहीं हैं, किंतु वाक्य आज भी याद हैं । तब क्या पता था कि इन्हीं महात्मा की गुणानुवाद सभामें इनका यह वाक्य मुझे बोलना पड़ेगा ?

दीक्षा पर्याय के २९ वर्षमें एक ही बार पूज्यश्री के दर्शन

हुए । वि.सं. २०५५ के वैशाख महिनेमें (इनके स्वर्गवास से ५-६ महिने पहले ही) पूज्यश्री के दर्शन श्यामल फ्लेटमें किये । भयंकर व्याधिमें भी अद्‌भुत समाधि चेहरे पर दिखती थी ।

पूज्यश्री अभी भले देह से हाज़िर नहीं हैं, परंतु साहित्यदेह से अमर हैं ।

उच्च प्रकार के साहित्यकारों की कभी मृत्यु नहीं होती । अक्षरदेह से सदा जीवंत रहते हैं ।

जहां तक ज्ञानसार, प्रशमरति, शांत सुधारस जैसे ग्रंथों पर के इनके विवेचन - ग्रंथों का अभ्यास चलता रहेगा तब तक पूज्यश्री जीवंत रहेंगे ।

ललित विस्तरा, योगदृष्टि समुच्चय इत्यादि अनेक ग्रंथों द्वारा पू. हरिभद्रसूरिजी आज भी जी रहे हैं । ज्ञानसार, अध्यात्मसार आदि ग्रंथो द्वारा पू.उपा.श्री यशोविजयजी आज भी हमारे बीच हैं ।

ऐसे व्यक्तिओं की कीर्ति को कौन मिटा सकता हैं ?

'नाम रहंतां ठाकरा, नाणा नवि रहंत;
कीर्ति केरा कोटडा, पाड्या नवि पडंत ।'

पू. मुनि श्री उदयप्रभविजयजी :

वक्तृत्व, लेखन और अनुशासन इस त्रिवेणी का विरल संगम पूज्यश्रीमें हुआ था ।

यद्यपि, वक्तृत्व कठिन हैं ही, पर लेखन उससे भी कठिन हैं । क्योंकि बोलते समय आडा-टेढा बोल दें तो भी चलता हैं, लेकिन लिखनेमें गड़बड़ हो जाये तो बिलकुल नहीं चलता ।

पूज्यश्री के पास वक्तृत्व और लेखन दोनों की शक्ति थी । अनुशासन गुण भी पूज्यश्रीमें जोरदार था । मद्रास चातुर्मासमें शिबिरोंमें बालकों का अनुशासन के द्वारा किस तरह नियंत्रण करते वह मैंने गृहस्थावस्थामें अपनी आंखों से देखा हैं । एक आँखमें भीम-गुण तो दूसरी आँखमें कान्त-गुण भी था ।

मैं पर-समुदायमें दीक्षा लेनेवाला हूं, यह जानने पर भी पू. भुवनभानुसूरिजी, पू. जयघोषसूरिजी, पू. जयसुंदरविजयजी आदिने मुझे हुबली - चातुर्मासमें प्रेम से अध्ययन कराया हैं । ऐसे उदार दृष्टिकोण रखनेवाले समुदायमें पूज्यश्री संकुचित दृष्टिकोणवाले कैसे हो सकते हैं ?

इनके उदार दृष्टिकोण का अनेक बार अनेकों को अनुभव हुआ हैं ।

*** पू.पं.श्री वज्रसेनविजयजी :**

वि.सं. २००६में मैं जब आठ वर्ष का था तब यहाँ पालिताणा गांवमें दूसरे मुमुक्षुओं के साथ पढने आया था । तब पूज्यश्री भी गृहस्थावस्थामें थे ।

दीक्षा के बाद यद्यपि, खास मिलना नहीं हुआ हैं, परंतु साहित्य द्वारा उनका परिचय होता ही रहा हैं ।

उन्होंने जिस प्रकार लिखा उसी प्रकार से जीये भी हैं । जीवन की अंतिम क्षण तक समाधि टिकाकर रखी हैं ।

हमारा धर्म ज्यादा करके सुखभावित होता हैं । सुख-शांति हो वहाँ तक धर्म रहता हैं । दुःख आते ही धर्म का बाष्पीभवन हो जाता हैं । निमित्त न मिले वहाँ तक शांत रहते हैं । निमित्त मिलते ही शांति का बाष्पीभवन हो जाता हैं, अंदर का क्रोध ज्वालामुखी बनकर फट निकलता हैं ।

पूज्यश्रीमें ऐसा कुछ नहीं था, अंतमें बिमारीमें भी पूज्यश्रीने अद्भुत समाधि रखी हैं और स्वयं का सर्जन-कार्य अविरत चालु रखा हैं । इसे कहते है : जाना उसी प्रकार जीया !

पू. मुनिश्री धुरंधरविजयजी :

झगडीयाजीमें आठ वर्ष की उम्रमें मेरी दीक्षा हुई । उसके बाद मेरे पू. गुरुदेव (पू.पं. भद्रंकर वि.म.) के साथ बड़े गुरुदेव पू. आचार्यश्री (विजय प्रेमसूरिजी) के सांनिध्यमें जाना हुआ । उस समय बालमुनि के रूपमें मैं अकेला ही था ।

उस समय मुझे दो मुनिओं के साथ आत्मीयता भरे संबंध हुए थे : मुनिश्री चंद्रशेखरविजयजी तथा मुनिश्री भद्रगुप्तविजयजी के साथ । हम तीनों खास निकट के साथी बने ।

मुनि चंद्रशेखरविजयजीने लेखक के रूपमें उपनाम 'वज्रपाणि' रखा था । आज भी वे खुमारी का वज्र लेकर फिरते हैं । भद्रगुप्तविजयजीने 'प्रियदर्शन' उपनाम रखा था । अंत तक सबको उनके दर्शन प्रिय ही लगते ।

मैं तो एकदम छोटा था । मुझे पूज्यश्री दररोज नई-नई सुंदर

कहानियां कहते । कभी बहिर्भूमि जाते समय भी कहानी कहते । छोटे बालक को इससे ज्यादा क्या चाहिए ?

उसके बाद भी हमारे संबंध बहुत उष्माभरे रहे । सं. २०५४ में अहमदावाद चातुर्मासमें मैं उनको कभी-कभार मिलने जाता । मुझे देखकर पूज्यश्री बहुत ही खुश होते । प्रत्येक मुलाकातमें अंतिम वाक्य यह होता : तू अब वापस कब आयेगा ? (मुझे हमेशा तू कहकर ही बुलाते । गाढ आत्मीयता हो वहीं एसा संबोधन हो सकता हैं ।)

अहमदाबाद से विहार के समय भी मुझे जल्दी आने के लिए कहा था । २०५५ के चातुर्मास के बाद मेरी स्वयं की भावना भी डीसा से विहार करके अहमदाबादमें पूज्यश्री को मिलने की थी । ४५ आगम का अध्ययन पूज्यश्री के पास करने की तीव्र भावना थी । उनका अध्ययन तलस्पर्शी था । अतः तीव्र आकांक्षा थी । लेकिन कुदरत को यह शायद मंजूर नहीं होगा । चातुर्मास के बाद मैं विहार करूं इससे पहले आज के दिन पूज्यश्री का देह-विलय हो गया ।

पू. भद्रगुप्तविजयजी के लगभग तमाम पुस्तकें पू. रामचंद्रसूरिजी म. पढते । पढकर प्रभावित हो जाते : वाह ! कैसा अद्‌भुत लिखा है ?

पू. भद्रगुप्तसूरिजी के लिए इससे ज्यादा दूसरा कौन सा प्रमाणपत्र हो सकता हैं ?

पू.आ.श्री यशोविजयसूरिजी :

एक बार पूज्यश्री की वाचना सुनने को मिली । मेरी आदत के अनुसार मैं उनके मुखमें से निकलते शब्दों के पीछे अशब्द अवस्था को देख रहा था । शब्द तो एक बहाना हैं, एक माध्यम हैं; आपको मिलने का । शब्दों के उपयोग के बिना महापुरुष आपको कैसे मिल सकेंगे ?

पूज्यश्री के शिक्षागुरु पू. प्रेमसूरिजी । पू. प्रेमसूरिजी एक अच्छे शिल्पी थे । उन्होंने अनेक शिल्पों का (मुनिओं का) सर्जन किया ।

गांधीजी के लिए मैं बहुतबार कहता हूं : गांधीजी स्वयं इतने विद्वान नहीं थे, परंतु उनका अनुयायीवर्ग उनसे भी ज्यादा विद्वान

था । फिर भी उन सब विद्वानों को उन्होंने एक शृंखलामें बांध लिया था ।

पू. प्रेमसूरिजी की गांधीजी के साथ इस अपेक्षा से तुलना कर सकते हैं । इन्होंने जहाँ-जहाँ शक्तियां देखी उन सबको खींच लिये । भिन्न-भिन्न शक्तिओं को धारण करनेवाले कितने महात्माओं को उन्होंने तैयार किये ? सचमुच ही वे उत्कृष्ट शिल्पी थे । उनके अनेक शिल्पोंमें से एक नमूनेदार शिल्प है : पू. भद्रगुप्तसूरिजी ।

पू. प्रेमसूरिजी एक बात के खास आग्रही थे : जीवन निर्मल ही होना चाहिए । जीवन की चद्दरमें कोई दाग लग जाय, वह वे चलाते नहीं थे ।

इस लिए ही इनके समुदायमें विशुद्ध संयमी महात्माओं की श्रेणि तैयार हो सकी हैं ।

पू. भद्रगुप्तविजयजी को आज आप भावांजलि देने के लिए एकत्रित हुए हैं । तो इस निमित्त क्या करेंगे ? उनकी पुस्तकें अवश्य पढें । अगर सभी पुस्तकें न पढ सको तो उनकी अंतिम बिमारी के समय लिखी हुई सुलसा, लय-विलय, शोध-प्रतिशोध इत्यादि पुस्तकें तो खास पढें । वह उनका उत्कृष्ट सर्जन है ।

✱ दलपत सी. शाह (अध्यापक) :

पूज्यश्री के साथ मेरा बहुत बार रहना हुआ हैं । खास करके शिबिर-संचालक के रूपमें रहा हूं । बालकों पर किस तरह अनुशासन करना ? वह मैं उनसे सीखा हूं । उनके पास टीचिंग-पावर था । विद्यार्थीओं को किस तरह पढाना ? वह कला मैं उनसे सीखा हूं ।

वे कितने निःस्पृह थे ? वह भी जानने जैसा हैं । मृत्यु से पहले उन्होंने कहा था : आज ऐसा रिवाज हो गया हैं, जिसकी ज्यादा ऊंची बोली बोली जाय वह महान । मेरे पीछे ऐसी कोई बोली न बोलें । मेरे शव को कोई विशिष्ट स्थान पर नहीं, लेकिन सामान्य स्थान पर ही दहन करें । मेरे पीछे कोई स्मारक, कोई मूर्ति या मंदिर इत्यादि न बनायें ।

ऐसी निःस्पृहता बहुत कम देखने मिलती हैं !

⌘ ⌘ ⌘

पू.पं.श्री मुक्तिविजयजी, जिनके पास पूज्यश्री ने
वि.सं. २०१२ में अध्ययन किया था ।

७-११-२०००, मंगलवार
कार्तिक शुक्ला - ११

✱ 'मोक्ष के कर्ता भगवान हैं ।' - ऐसा मानोगे तो ही साधना का प्रथम चरण शुरु होगा ।

'भगवान विश्व के कर्ता हैं ।' इस बात को हम नहीं स्वीकारते, क्योंकि यह बात नहीं घटती, परंतु साधना के क्षेत्रमें तो भगवान का कर्तृत्व स्वीकारना ही पड़ेगा । इसलिए ही यह ललित विस्तरा ग्रंथ हैं ।

इसका स्वीकार किये बिना हमारी तथाभव्यता का परिपाक नहीं हो सकेगा । यद्यपि, ऐसा भी कह सकते हैं : तथाभव्यता का परिपाक हुआ हो अथवा होनेवाला हो उसे ही भगवान की *शरण स्वीकारने का मन होता हैं ।*

आप जब भगवान को संपूर्ण रूप से समर्पित बनते हो तब भगवान आपकी संपूर्ण जवाबदारी सम्हालते हैं, आपको प्रतिदिन आवश्यक मार्गदर्शन दिया करते हैं । कभी गुरु द्वारा देते हैं, कभी पुस्तक द्वारा, कभी किसी ,घटना द्वारा या कभी स्वप्न द्वारा भी भगवान मार्गदर्शन देते हैं । भगवान अनेक रूप से आते हैं ।

(२५) अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं ।

भगवान के पास अप्रतिहत दर्शन ज्ञान न हो तो इतने विशाल फलक पर उपकार नहीं हो सकता । सर्वज्ञता के बिना सामने के आशय-भूमिका इत्यादि जान नहीं सकेंगे । इसके बिना पूर्णरूप से उपकार हो नहीं सकता ।

कुछ ऐसे जिज्ञासु होते हैं, जो आते हैं जिज्ञासु का ढोंग करके, परंतु सचमुच तो यह बताने ही आते हैं : हम भी साधक हैं । हम साधना करते हैं । हम भी जानते हैं ।

पू.पं. भद्रंकर वि.म. के पास ऐसे भी बहुत साधक आते थे । परंतु पू.पं. भद्रंकर वि.म. अपने स्वभाव के अनुसार उनका सब सुन लेते थे । पहले सामनेवाले को संपूर्ण खाली करने के बाद ही स्वयं योग्य लगे वह बोलते थे ।

राता महावीर तीर्थमें उपधान माल के समय (वि.सं. २०३२) एक मिनिस्टर सभामें थोड़ा विपरीत बोले थे । मुझे उसी समय प्रतिवाद करने का मन हुआ, किंतु वडीलों की उपस्थितिमें तो कुछ बोल नहीं सकते । फिर मैंने पू.पं. भद्रंकर वि.म. को पूछा : हमारी तरफ से क्यों कुछ जवाब नहीं ?

'उसके विचार जो थे वे उसने बताये । उनको स्वीकार करने के लिए हम कोई बंधे हुये नहीं हैं । उनकी बात समझे, ऐसे सभामें थे ही कितने ? अब अगर विरोध करें तो उनकी बात मजबूत बने । पहले शायद दो जन जानते होंगे । विरोध करें तो सभी जानने लग जाये । हम ही विरोध द्वारा उसकी बात को पुष्ट क्यों बनायें ?' पू.पं. भद्रंकर वि.म.ने मुझे यह जवाब दिया था ।

आज भी यह जवाब मुझे बराबर याद हैं । उनकी यह नीति मैं भी अपनाता हूं ।

✱ अप्रतिहत वर ज्ञान और दर्शन के धारक भगवान हैं । सभी लब्धियां साकार (ज्ञान) उपयोगमें ही होती हैं । वह बताने के लिए यहाँ प्रथम ज्ञान रखा हैं ।

(२६) वियट्टछउमाणं ।

इस विशेषण से आजीवक (गोशाले का मत) मत का निरसन हुआ है । 'धर्म-तीर्थ का नाश होता हो तब भगवान अवतार धारण

करते हैं', ऐसा वे मानते हैं । जैसे गीतामें श्री कृष्णने कहा हैं : यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि र्भवति भारत !..... तदा तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ।

आजीवकों का भी ऐसा ही मत था ।

परंतु यहाँ कहते हैं : भगवान तो संपूर्ण रूप से छद्मस्थ अवस्था से पर हो गये हैं : अविद्या उनकी नष्ट हो गई हैं ।

'मोक्ष से अगर कोई वापस नहीं ही आता तो संसार खाली नहीं हो जाता ?' ऐसा प्रश्न मत करना । जितने तीनों काल के समय हैं, उससे भी ज्यादा जीव संसारमें हैं, जो कभी भी खाली होंगे नहीं । यदि ऐसा मानेंगे तो जीवों की क्रमशः मुक्ति होते संसार पूरा खाली हो जायेगा, पर यह कभी हुआ भी नहीं और होगा भी नहीं ।

✱ आज्ञा के दो प्रकार हैं : निश्चय और व्यवहार ।

जड़ पदार्थों के लिए एक निश्चय आज्ञा ही हैं । जब हमें साधना करनी हो तो व्यवहार आज्ञा माननी पड़ती हैं । तो ही हम उपादेय का आदर और हेय का अस्वीकार कर सकेंगे ।

पू. हेमचंद्रसागरसूरिजी : एक तरफ भगवान की आज्ञा हैं : पुद्गल स्वयं का कार्य करते हैं । दूसरी तरफ भगवान की आज्ञा हैं : पुद्गल शत्रु हैं । उसे छोड़ो । क्या समझना ?

पूज्यश्री : हम कर्मसत्ता से दबे हुए हैं । भगवान हमें हमारा सिंहत्व (आत्मत्व) जानने को कहते हैं । पुद्गल छुटे नहीं वहाँ तक आत्मत्व जान नहीं सकते ।

भगवान की इतनी ही आज्ञा हैं : जिस जिस प्रवृत्ति से कर्मबंधन होता हो वह वह कार्य कभी न करें । जिस प्रवृत्ति से कर्म टूटते रहे उस उस कार्य को करते कभी रुको मत ।

परभावमें जाने पर कर्मबंधन होगा ही ।

स्वभावमें आने पर कर्मबंधन रुकेगा ही ।

इसलिए ज्ञानसिद्ध बनना पड़ेगा । पुद्गलों के बीच रहने पर भी ज्ञानसिद्ध कर्मों से लिप्त नहीं होता । स्वार्थरूपी काजल के घर जैसे संसारमें रहे हुए सर्व जीव लिप्त होते हैं, लेकिन ज्ञानसिद्ध लिप्त नहीं होता ।

'लिप्यते निखिलो लोको, ज्ञानसिद्धो न लिप्यते ।'

– ज्ञानसार

परंतु यह सब सीखने से पहले व्यवहारमें निष्णात बनना पड़ेगा । यदि सीधा यह दृष्टिकोण अपनाने गये तो कानजी के मत के अनुयायीओं के जैसी हालत होगी, जो पूजा–प्रतिक्रमण आदि सब छोड़ देते हैं ।

साधना के मार्गमें क्रमशः आगे बढो तो ही मंझिल पर पहुंच सकते हो । बिना नींव की इमारत बनाने जाओ तो क... क... ड... भूस होकर ही रहेगी ।

⌘ ⌘ ⌘

आपश्री द्वारा भेजी गई 'कहे कलापूर्णसूरि ३' एवं मन्नारगुडी से पु.नं. २ प्राप्त हुई । हररोज सुबह सामायिकमें इन्हीं पुस्तकों पर वांचन चल रहा हैं। आपका संकलन एवं गुरु भगवंत की वाचना इतनी गजब की हैं कि मानो वे फलोदीमें नहीं, बल्कि बेंगलोरमें हमारे समक्ष बैठकर समझा रहे हैं । सामायिक का समय कब पूरा होता हैं पता नहीं चलता । महोपाध्याय यशोविजयजी म.सा. को विमलनाथ भगवान की प्रतिमा देखकर तृप्ति नहीं होती हैं बल्कि देखने की जिज्ञासा बढती हैं । उसी भांति हमें आपका साहित्य पढकर ऐसे साहित्य ज्यादा से ज्यादा पढने की जिज्ञासा बढती हैं । पू. गुरु भगवंतश्री ज्यादा से ज्यादा ऐसी प्रवचन गंगा की धारा प्रवाहित करते रहे एवं आप उस धारा को हम तक पहुँचाते रहें ।

– ***अशोक जे. संघवी***

बेंगलोर

मंदिर के शिखर पर पूज्यश्री

८-११-२०००, बुधवार
कार्तिक शुक्ला - १२

* भगवान की परम करुणा से ही इतनी धर्म सामग्री मिली हैं । भगवान की वाणी सुनते जो आनंद आता हैं, भगवान के प्रति बहुमान पैदा होता हैं तो आगे-आगे की भूमिका स्वाभाविक रूप से मिलती जाती हैं ।

व्यवहार से देखें तो हम आधे रास्ते पर आ गये हैं । भगवान को जिस क्षण आप अलग रखते हो उसी समय आपका मुक्तिमार्ग तरफ का प्रयाण रुक जाता हैं । भगवान क्या नहीं देते ? साधना, सद्गति, बोधि सब कुछ देते हैं । अभय, चक्षु, बोधि इत्यादि सब कुछ देनेवाले भगवान हैं ।

एक-एक विशेषण द्वारा अन्य अन्य दार्शनिकों के मतों का यहाँ (नमुत्थुणंमें) खंडन हुआ हैं । पू. हरिभद्रसूरिजीने यह सब दार्शनिक भाषामें लिखा हैं । हमारे पास दिन कम हैं । कहना ज्यादा हैं । अतः दार्शनिक भाषा गौण करके आगे बढते हैं ।

स्वरूप और परोपकार ये दोनों भगवान की संपदा हैं । स्वरूप उत्कृष्ट न हो तो उत्कृष्ट परोपकार कैसे हो सकता हैं ? जिसे छोटा ही कुटुंब चलाना हो तो छोटी दुकान, छोटा धंधा चलता है, किंतु बड़े कुटुंबवाले को तो बड़ा धंधा करना पड़ता हैं । भगवान समस्त

जगत के उद्धार का मिशन लेकर बेठे हैं । इनके पास कितने उच्च प्रकार की स्वरूप-परोपकार आदि संपदाएं होनी चाहिए ?

मोक्षमें जाने के बाद ये शक्तियां बंद हो जाती हैं, ऐसा न मानें, आज भी ये शक्तियां काम कर ही रही हैं ।

सैनिक लड़ते हो तब सरकार की जवाबदारी होती हैं : कम होती वस्तु पूरी करने की । हम मोह के सामने लड़ते हों और निर्बल बने तब बल देने की भगवान की जवाबदारी हैं । जरुरत हैं, मात्र भगवान के साथ अनुसंधान की । सैनिक के पास इतनी ही अपेक्षा हैं : वह देश को वफादार रहे । भक्त के पास से इतनी ही अपेक्षा हैं : वह भगवान को समर्पित रहे ।

(२७) जिणाणं जावयाणं ।

कंटकेश्वरीने जैसे कुमारपाल के उपर गुस्सा किया : मेरी बलिप्रथा क्यों अटका दी ? मोहराजा भी हमारे पर गुस्सा करता हैं : मेरे मुकाम को छोडकर भगवान के मुकाममें क्यों तू गया ? कुमारपाल कंटकेश्वरी के सामने मक्कम रहा, वैसे हमें भी मक्कम रहना हैं । भगवान की शरणमें जाना हैं । भगवान की तो स्पष्ट बात हैं : मैंने मोह आदि पर जय प्राप्त किया हैं, मेरी जो शरण ले उसके भी मोह का मैं नाश करता हूं । तो ही मैं अरिहंत ! मैं मात्र जीतनेवाला नहीं, जीतानेवाला भी हूं ।

राग, द्वेष, मोह आदि के आक्रमण तो होते ही रहेंगे । बड़े साधक के जीवनमें भी ऐसे हमले आते हैं । यदि न आते हो तो उपाध्यायजी म. जैसे यों नहीं गाते :

'तप - जप - मोह महा तोफाने, नाव न चाले माने रे ।'

साधना के मार्ग पर साधक को ऐसे अनुभव होते ही रहते हैं । इस अनुभव का यहाँ वर्णन हैं ।

इसलिए ही योगशास्त्र के ४थे प्रकाशमें विषय-कषाय और इन्द्रियों के जय के बाद मनोजय करने को कहा हैं ।

हमारी परंपरा भी यही हैं । इसलिए ही वैराग्यशतक, इन्द्रिय-पराजयशतक इत्यादि पढाये जाते हैं । वैराग्यशतक, इन्द्रिय पराजयशतक आदि छोड़कर मात्र व्याकरण आदिमें पड़े तो खतरा उत्पन्न हो सकता हैं ।

* ज्ञानसार, योगसार, अध्यात्मसार, आगमसार (पू. देवचंद्रजीका) इत्यादि ग्रंथ सारभूत हैं । दूसरा कुछ न कर सको तो इन ग्रंथों का अभ्यास अवश्य करें । इन ग्रंथों से संक्षेपमें हमें सारभूत पदार्थ मिल जाते हैं ।

आगमसार पू. देवचंद्रजी की कृति हैं । मैंने गृहस्थावस्थामें ही कंठस्थ किया हैं । नयचक्रसार भी इनका ग्रंथ हैं, लेकिन कठिन हैं, इसलिए नहीं कहता ।

आज हमारा ध्येय ही बदल गया हैं । हमारी रुचि ही बदल गई हैं । अध्यात्म की ओर रुचि हो तो ये सब ग्रंथ पढने की इच्छा होगी न ? रुचि हो वहाँ शक्ति का उपयोग होता ही हैं । हमारी शक्तियां हंमेशा हमारी इच्छा का ही अनुसरण करती हैं । आत्मा की ओर मूड़ने की तीव्र इच्छा ही सम्यग्दर्शन हैं ।

* अरूपी पवन कार्य से मालूम पड़ता हैं ।

अरूपी आत्मा गुण से जान सकते हैं । ज्ञानादि गुण आत्मा के अलावा दूसरी जगह कहीं देखा हैं ?

हमारे ज्ञानादि गुण प्रभु के साथ तन्मय बनने के लिए हैं । शिक्षक का ज्ञान विद्यार्थीमें आ सकता हो तो भगवान के गुण हमारे अंदर संक्रान्त क्यों नहीं हो सकते ?

* दीपक स्वयं जलता हैं । किंतु दूसरे को जलाने की वह शक्ति धारण करता हैं । दीपक दूसरे को जलाये तो वह थोड़ा भी कम नहीं होता । भगवान भी दीपक हैं । स्वयं राग-द्वेष को जीतनेवाले हैं, अन्य को भी जीतानेवाले हैं ।

(२८) तिण्णाणं तारयाणं ।

भगवान स्वयं संसार तैरे हुए हैं । इनके आश्रित को भी तिरानेवाले हैं । जहाज मात्र स्वयं नहीं तैरती, दूसरे को तैराती भी हैं ।

भगवानने इस समुद्रमें छोटी नौकाएं (देशविरति की) भी रखी हैं, परंतु शर्त इतनी : नौकाओं द्वारा आखिर बड़ी स्टीमर पकड़ लेनी ।

*** चलनेवाला गिर जाये तो उसे कोई उठानेवाला मिलेगा ही । गिर जाने के भय से कोई चलना बंद नहीं करता ।**

साधनामें गिर गये तो क्या होगा ? ऐसे सोच कर साधना शुरु करना बंध कर दें तो कैसे चलेगा ?

चंडकौशिक जैसे को भी भगवान तारने आते हों तो हमें तारने नहीं आयेंगे ?

भगवान हम को सदा तारने की इच्छा रखते ही हैं, किंतु कठिनाई यही हैं : हम ही तैरना नहीं चाहते हैं । हम ही निःशंक बनकर भगवान को नहीं पकड़ रहे हैं ।

प्रत्युत, हम हमारे तारनेवाले को हमारी ओर खींचने का प्रयत्न कर रहे हैं । अग्निमें या कुंएमें पड़ा हुआ आदमी स्वयं को खींचनेवाले को मदद तो न करे, पर प्रत्युत स्वयं के बचानेवाले को खींचने का प्रयत्न करता हो तो क्या समझना ?

(पू. हेमचंद्रसागरसूरिजी पधारे ।)

मुनि भाग्येशविजयजी : समाप्त कराने आये ।

पूज्यश्री : समाप्त कराने नहीं, सार सुनने के लिए आये हैं। पू.पं. भद्रंकर वि.म. के पास ऐसा बहुत सीखने मिला हैं । किसी घटनामें से वे अच्छा ही ग्रहण करते ।

टेढी-टेढी लकीरें करते बालक को उपालंभ देने की जगह एक (१) लिखकर बताओ तो काम हो जायेगा । वह सीख जायेगा । वह जितना करे उसकी अनुमोदना करो ।

किसीने संपूर्ण आलोचना न ली हो तो विचारें : इतनी तो ली ! जितनी ली उतनी तो शुद्धि होगी ! परंतु उसके उपर गुस्सा न करें । उसे अन्य दृष्टांतों के द्वारा संपूर्ण आलोचना लेने के लिए प्रेरित करें ।

(२९) बुद्धाणं बोहयाणं ।

संपूर्ण जगत अज्ञान-निद्रामें सोया हो तब भगवान उसे झकझोरते हैं, जगाते हैं । **स्वयं जागृत हुआ आदमी स्वाभाविक रूप से ही दूसरे को जागृत करने का प्रयत्न करेगा । भगवान स्वयं जाग गये हैं । और दूसरे को भी जगानेवाले हैं ।**

भगवान तो हमारे माता-पिता, बंधु, नेता आदि सब कुछ हैं। वे नहीं जगायें तो कौन जगायेगा ?

लेकिन हम भगवान को पराये मानते हैं । इसलिए ही फुरसत

के समय ही भगवान का स्मरण करते हैं न ? भगवान सर्वस्व हैं, ऐसा कभी लगा ? सर्वस्व लगे तो भगवान के बिना एक क्षण भी रह सकते क्या ?

(३०) मुत्ताणं मोअगाणं ।

भगवान कर्मों के बंधन से मुक्त बने हुए हैं । दूसरे को भी मुक्त बनानेवाले हैं ।

कर्म का नित्य बंध करनेवाले हमें मुक्ति अच्छी लगती हैं या नहीं ? यही सवाल हैं । छुटकारा (मुक्ति) अच्छा लगता हो तो कर्म का बंधन कैसे अच्छा लगता ? जिस-जिस प्रवृत्ति से कर्म का बंधन होता हो वह-वह प्रवृत्ति क्यों न रुके ?

सार मात्र इतना ही हैं : जिस प्रवृत्ति से कर्मबंधन हो वह नहीं करनी ।

माषतुष मुनि को मात्र इतना ही सीखाया गया था : रोष-तोष न करें । कोई प्रशंसा करे तो खुश न हों । निंदा करे तो नाराज न हों । इतने ज्ञान को भावित बनाया तो केवलज्ञान पा लिया ।

थोड़ा ज्ञान हो वह चलता हैं, लेकिन वह भावित होना चाहिए। मैं इसलिए ही ज्यादा ज्ञान पर जोर नहीं देता, इसे भावित बनाने पर ज्यादा जोर देता हूं ।

एक भगवान को पकड़ लो । वे भगवान आपको जीता देंगे, तार देंगे, जगा देंगे और छुड़ा देंगे ।

जो कोई भी भगवान की शरणमें जाता हैं, उसके लिए ऐसा करने के लिए भगवान बंधे हुए हैं । क्योंकि भगवान '**स्वतुल्य-पदवीप्रदः**' हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

वढवाण, वि.सं. २०४७

९-११-२०००, गुरुवार
कार्तिक शुक्ला - १३

✱ चतुर्विध संघ के प्रत्येक सभ्य की जवाबदारी हैं : ऐसे कालमें भी पूर्वजोंने जो प्रयत्न करके शासन की अविच्छिन्न परंपरा दी, उस परंपरा को आगे चलाना ।

✱ बहुत बार विचार आता हैं : साक्षात् भगवान नहीं मिले यह अच्छा ही नहीं हुआ ? मूर्ख और निर्भागी को चिंतामणि मिल जाये तो वह कौआ उडाने के लिए उसें फेंक देगा । भाग्य के बिना उत्तम वस्तु समझमें नहीं आती, सफल नहीं बनती ।

साक्षात् भगवान अगर मिल भी गये होते तो हम मजाक ही उडाते ! बहुत से भवोंमें भगवान मिले ही होंगे, लेकिन हमने मजाक ही उडाया होगा ।

इसलिए अभी जो मिला हैं, उस पर बहुमान धारण करें तो भी काम हो जायेगा, कितनी दुर्लभ सामग्री मिली है हमें ?

मानव-अवतार, धर्म-श्रवण, धर्म-श्रद्धा और धर्म का आचरण - इन चार को भगवान महावीर देवने स्वयं दुर्लभ बताये हैं । हमें ये दुर्लभ लगते हैं ?

✱ **भगवान अच्छे हैं, ऐसा तो लगा, किंतु भगवान मेरे**

हैं, ऐसा लगा ? भगवान जगत के तो हैं, लेकिन मुझे क्या लेना-देना ? भगवान मेरे लगने चाहिए । जगत के जीव अपने लगने चाहिए । भगवान मेरे न लगे वहां तक प्रेम उत्पन्न नहीं होगा ।

शरीर, इन्द्रिय, परिवार, धन, मकान इत्यादि मेरे लगते हैं, पर भगवान मेरे हैं, ऐसा कभी लगता हैं ?

शरीर आदि तो यहीं रहेंगे । अंतिम समयमें ये सभी कह देंगे : अब हम आपके साथ नहीं आयेंगे । आप आपके मार्ग पर पधारो ! अलविदा ! जिसके साथ पांच-पच्चीस वर्षों तक रहना हो उसके साथ दोस्ती करनी और सदाकाल रहनेवाले के साथ उपेक्षापूर्वक वर्तन करना, यह कैसी बात ?

(३१) सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं ।

इस विशेषण से सांख्य मत का निरसन हुआ हैं ।

भगवान सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं ।

कर्म के बादल का आवरण दूर होते आत्मा चंद्र की तरह प्रकाशित हो उठती हैं । वह सब की ज्ञाता और सर्व की दृष्टा बनती हैं ।

✱ ज्ञानादि गुण जीव से भिन्न भी हैं, अभिन्न भी हैं । लक्षण, संख्या, प्रयोजन और नाम से गुण भिन्न हैं । गुण-गुणी के अभेद से अभिन्न भी हैं ।

हम खिड़की-दरवाजे इत्यादि बंध करके बैठे हैं । कहीं से आत्मारूपी चंद्र का प्रकाश आ न जाये । ज्ञानी कहते हैं : दरवाजा खोलो । दरवाजा खोलना मतलब ज्ञान और ज्ञानी के प्रति आदर करना । ज्ञान के प्रति आदर बढने पर ज्ञान आता ही हैं । इसलिए ही कहा हैं :

'जिम जिम अरिहा सेवीये रे,
तिम तिम प्रगटे ज्ञान सलुणा ।'

- पं. वीरविजयजी

यह तो भगवान या गुरु के दर्शन के बिना पच्चक्खाण पार नहीं सकते, इसलिए ही भगवान के दर्शन करते हैं और गुरु के वंदन करते हैं । यह नियम नहीं होता तो हम दर्शन करते या नहीं यह भी सवाल हैं ।

✱ क्रोध की तरह विषय की लगनी भी आग हैं । क्रोध दिखता हैं, विषय की आग दिखती नहीं इतना अंतर हैं । विषय की आग बिजली के शोर्ट जैसी हैं । दिखती नहीं लेकिन अंदर से जला देती हैं ।

भगवान के गुणों के ध्यान से ही विषय की आग शांत होती हैं।

'विषय-लगन की अगनि बुझावत, तुम गुण अनुभव धारा;
भई मगनता तुम गुण रसकी, कुण कंचन कुण दारा ?'

- पू. उपा. यशोविजयजी

✱ भगवान स्वयं कहते हैं : मत्तः अन्ये मदर्थाश्च गुणाः।

गुण मुझसे अन्य हैं और मुझसे अनन्य भी हैं । मैं ही हूं साध्य जिनका ऐसे गुण हैं । गुणवृत्ति से अलग एकान्तिक कोई मेरी प्रवृत्ति नहीं हैं ।

गुण, लक्षण आदि से भिन्न हैं ।

उदाः गुण का लक्षण अलग हैं । मेरा (आत्मा का) लक्षण अलग हैं ।

संख्याः द्रव्य एक हैं । गुण अनेक हैं ।

फलभेद : द्रव्य का कार्य अलग हैं । गुणों का कार्य अलग हैं ।

नाम : द्रव्य का नाम अलग हैं । गुणों के नाम अलग हैं।

इन सब दृष्टि से गुण मुझसे भिन्न हैं । किंतु दूसरी दृष्टि से गुण और मैं एक भी हैं ।

क्योंकि गुणों का भी साध्य आखिर मैं हूं । गुण, गुणी के बिना कहीं रह नहीं सकते ।

(३२) सिव - मयल - मरुअ - मणंत - मक्खयमव्वाबाह - मपुणरावित्ति - सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं ।

भगवान शिव, अचल, अरुज, अनंत, अक्षय, व्याबाधा और पुनरागमन रहित सिद्धिगति नाम के स्थान को प्राप्त हुए हैं ।

व्यवहार से भगवान का स्थान सिद्धशिला हैं, किंतु निश्चय से स्वस्वरूप ही हैं ।

वह (सिद्धिगति) सर्व उपद्रव से रहित होने से अचल हैं ।

शरीर-मन न होने के कारण पीडा न होने से अरुज हैं ।

क्षय न होने के कारण अक्षय हैं ।

अंत न होने के कारण अनंत हैं ।

आबाधा-रहित होने के कारण अव्याबाध हैं ।

वहाँ जाने के बाद वापस आना नहीं हैं इसलिए अपुनरावृत्ति हैं ।

पू.आ.श्री विजय कलाप्रभसूरिजी :

श्री हरिभद्रसूरिजी म., मुनिचंद्रसूरिजी - दोनों महापुरुषोंने प्रभु-स्तवनारूप ललित-विस्तरा, नामक टीका और पंजिका लिखी हैं । हमने चार-चार महिने तक इस ग्रंथ पर जो कुछ सुना हैं ।

पू. गुरुदेवने बहुत ही सुंदर शैली से भगवान अच्छे लग जाय इस तरह हमें समझाया । इस तरह हमने किसी समय भगवान को पहचानने का प्रयत्न नहीं किया हैं । ब्राह्मण कुलमें जन्म लेने पर भी हरिभद्र किस तरह भगवान को पहचान सके ? एक क्षण भी भगवत्-स्मरण बिना की नहीं होगी । तो ही ऐसा लिख सके होंगे ।

पूज्यश्री का जीवन भी भगवन्मय ही हैं । अतः एव वे इस पर बोलने के अधिकारी हैं । भगवान पर प्रेम होने के कारण ही नादुरस्त तबीयत होने पर भी वाचना, जहां तक शक्य हुआ, बंद नहीं रखी हैं । हम ना कहें तो भी बंद नहीं रखी ।

पूज्यश्री जैसे तो हम बन नहीं सकते, किंतु इनके चरणोंमें नतमस्तक प्रार्थना करते हैं : आप भगवान को जिस तरह पहचानते हैं, इस पदार्थ को ग्रहण करने की हमें निर्मल प्रज्ञा मिले, यही आपके पास तमन्ना हैं । पूज्यश्री का आभार मानें उतना कम हैं । ७७ वर्ष की उम्रमें भी पूज्यश्री अप्रमत्त हैं । थोड़ा बुखार या सर्दी हो जाय तो हमारे जैसे व्याख्यान बंद कर देते हैं, पर पूज्यश्री कभी बंद नहीं रखते । इसमें पूज्यश्री स्वयं का परिश्रम नहीं देखते ।

अतः अब यात्राएं शुरु होने पर भी वाचना, समय आने पर चालू रहेगी ।

पूज्यश्री : भगवान की आज्ञा विरुद्ध कुछ बोला या आपको कटु लगे वैसा बोला हो तो हार्दिक मिच्छामि दुक्कडं ।

सिद्धगिरिमें हैं वहां तक लोगों की भीड़ भी रहेगी । वासक्षेप का सब आग्रह रखते हैं, लेकिन वासक्षेप की रजकण उडते खांसी या ऐसा कुछ होगा तो यह सब (वाचना आदि की) प्रवृत्ति भी बंद हो जायेगी, उस पर विचार करें ।

⌘ ⌘ ⌘

अंजनशलाका प्रतिष्ठा, भीमासर - कच्छ, वि.सं. २०४६

१२-११-२०००, रविवार

मृग. व. - १

य: एव वीतराग: स:, देवो निश्चीयतां तत: ।
भविनां भवदम्भोलि: स्वतुल्य-पदवी-प्रद: ॥

✱ जिन-जापक, तीर्ण-तारक, बुद्ध-बोधक और मुक्त-मोचक भगवान हैं, ललित-विस्तरामें यह हमने देखा । अत: भगवान 'स्वतुल्यपदवीप्रद' हैं, यह निश्चित हुआ । यह जानते कितना आनंद होता हैं ?

दीन-दु:खी की सेवा करो तो क्या मिलेगा ? जो खुद का पेट भर नहीं सकता वह आपका पेट क्या भर सकेगा ? जो स्वयं राग-द्वेष से ग्रस्त हैं वे आपका क्या भला करेंगे ?

जिस भगवान के पास ऐसी उत्कृष्ट सिद्धियां मिल सकती हो, फिर भी वह प्राप्त करने की इच्छा न हो वह कितना कमभाग्य होगा ? हम तो हमारी वृत्तिओं को जानते हैं न ? सुबह से शाम तक हमारी वृत्तियां कैसी ? उसका पता हमें नहीं चलता ? भगवान और हम स्वयं-दो ही सब जान सकते हैं ।

✱ भगवान मोक्ष देने के लिए तैयार हैं । आपको मात्र याचना करने की जरूरत हैं ।

भोजन भूख दूर करने के लिए तैयार हैं । आपको मात्र खाने की जरूरत हैं ।

हम स्वयं तैयार न हो तो भगवान क्या करेंगे ? कमी हमारी या भगवान की ?

गुरु के योग से ही परमगुरु का योग होगा । गुरु पर भक्ति बहुमान बढे उतना आपको परम-गुरु का योग मिलता रहेगा । पंचसूत्रकारने वहां तक कह दिया : **गुरु-बहुमाणो मोक्खो ।**

गुरु बहुमान से मोक्ष मिलता हैं, ऐसा नहीं कहते, परंतु गुरु बहुमान स्वयं ही मोक्ष हैं, ऐसा कहते हैं ।

✱ आज वाचना रखनी नहीं थी, किंतु वासक्षेप इत्यादिमें, लोगों की भीड़में ही समय पसार हो उससे अच्छा वाचना रखें।

आपको जरुरत न हो, पर मुझे आपको देना हैं न ?

आधोइमें प्रथम उपधान के समय लोगोंने गुलाब-जामुन पसंद न किये । (कभी देखे नहीं थे - चखे नहीं थे) लेकिन जबरदस्ती खिलाये, तब काम हुआ । मुझे भी ऐसा करना पड़ता हैं ।

✱ राग-द्वेष आदि आपको पुराने मित्र लगते होंगे, तात्कालिक छोड़ न सको तो भी ये छोड़ने जैसे हैं, इतना तो अवश्य स्वीकारें ।

भगवान जैसी वीतरागता भले न मिले पर राग-द्वेष की कुछ मंदता तो आनी ही चाहिए । यही साधना का फल हैं । रुचि-अरुचि के प्रसंगमें दिमाग स्वस्थता न गंवाये तब समझें : राग-द्वेषमें कुछ मंदता आयी हैं ।

✱ छजीव-निकाय के साथ-क्षमापना करनेवाले हम साथ रहनेवालों के साथ क्षमापना नहीं करते हैं । इसलिए ही 'आयरिय-उवज्झाए' सूत्र हैं । नहीं तो वंदित्तु (पगाम सिज्जाय) और अब्भुट्ठिओमें क्षमा आ ही गई हैं । अब बाकी क्या रहा ? नहीं, अभी शास्त्रकारोंको बाकी लगा : इसलिए ही वे कानमें पूछते हैं : आप 'खामेमि सव्व जीवे' इत्यादि तो बोले, पर आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, साधर्मिक, कुल, गुण आदि सहवर्ती के साथ क्षमापना की ?

(मृ.कृ. ५ के दिन इन्दौरमें कालधर्म पाये हुए पूज्य मुनिश्री कलहंसविजयजी (पू.आ.भ. के संसारी साले) के देववंदन और गुणानुवाद हुए ।)

⌘ ⌘ ⌘

सिद्धांत महोदधिपू. आ. प्रेमसूरिजी म.

१६-११-२०००, शुक्रवार
मृग. व. - ६

✱ सुबह आरीसाभुवनमें १०० प्रतिमाओं की अंजनशलाका-प्रतिष्ठा ।

✱ सुबह ९.०० से १.०० अंकिबाई धर्मशालामें पू. प्रेमसूरिजी की संयम-शताब्दी के निमित्त पू. आचार्यश्री की गुणानुवाद-सभा ।

शत सहस लख ने,
कोटि कोटि वार हुं वंदन करुं,
तारक परमगुरु वीरना वारस,
तने ध्याने धरुं,
जे पाट श्री छोत्तेरमी,
सुविशुद्ध धर मंगल-करुं,
सूरि प्रेम पावन चरणमां,
नत मस्तके वंदन करुं ।

✱ **पूज्य गणिश्री मुनिचंद्रविजयजी :**

सूरि प्रेम वंदनावली छत्रीसी के रचयिता हैं : पूज्य आचार्यश्री जगवल्लभसूरिजी महाराज । शासन प्रभावकता के साथ कवित्व-शक्ति भी पूज्यश्री को मिली हैं । जो विरल व्यक्ति को ही मिलती हैं ।

पू.आ.श्री विजयप्रेमसूरिजी को मैंने देखे नहीं हैं, किंतु सुने जरुर हैं । अनंतर या परंपर इन पूज्यश्री का भी हम पर उपकार हैं ।

हमारे पू. गुरुदेव (पू.आ.श्री विजय कलापूर्णसूरिजी महाराज) को राजनांद गांव (M.P.) में पू. रूपविजयजी म. के पास आते जैन प्रवचन पढकर वैराग्य हुआ था । जैन प्रवचनों के देशक पू. रामचंद्रसूरिजी को तैयार करनेवाले पू. प्रेमसूरिजी ही थे । इस तरह पूज्यश्री का हम पर भी उपकार हैं ।

आपके पास शायद आपकी सात पीढी की यादी भी नहीं होगी । हमारे पास भगवान महावीरस्वामी से लेकर अब तक की संपूर्ण परंपरा हैं ।

पूज्यश्री सुधर्मास्वामी की ७६वीं पाट पर आये हुए हैं ।

पिंडवाड़ा के पास नांदिया की पुण्यधरा पर वि.सं. १९४०, फा.सु. १५ के दिन पूज्यश्री का जन्म हुआ था । पूर्णिमा के दिन बहुत महापुरुषोंने जन्म लिया हैं ।

कलिकाल-सर्वज्ञ श्री हेमचंद्रसूरिजी का का.शु. १५, श्रीमद् राजचंद्र और नानक का भी का.शु. १५, बुद्ध का वै.सु. १५ के दिन हुआ था ।

अमावस्या के दिन सूर्य और चंद्र साथमें होते हैं । 'अमा' याने 'साथमें', 'वस्या' यानि 'वास' । सूर्य-चंद्र का साथ वास हो वह 'अमावस्या' कही जाती हैं । पूर्णिमा के दिन इससे विपरीत स्थिति होती हैं । यानि की सूर्य और चंद्र आमने-सामने होते हैं । पूर्णिमा के दिन जन्मे हुए ज्यादा करके भीमकांत गुणयुक्त नेतृत्व वाले होते हैं । पूज्यश्रीमें ये दोनों गुण थे । इस लिए ही पूज्यश्री २५० जितने श्रमणवृंद का सफल नेतृत्व कर सके थे ।

जहाँ जहाँ विचरण किया वहाँ वहाँ पूज्यश्रीने चारित्र की प्रभावना की हैं । गुजरात, राजस्थान, कर्णाटक इत्यादि प्रदेशों की अनेक हस्तीओं को उन्होंने स्वयं की तरफ आकर्षित की । इस कालमें यह कोई छोटी सिद्धि नहीं हैं ।

इनकी खींचने की शक्ति, इनका वात्सल्य, इनकी करुणा को दिखानेवाला एक प्रसंग कहता हूं ।

वि.सं. १९९८ (या १९९६ ?) में पूज्यश्री का निपाणीमें चातुर्मास था । व्याख्यान के बाद प्रभावनामें नारियल की प्रभावना होती थी ।

एक अजैन (लड़का) बार बार नारियल लेने आता था । ट्रस्टीओं की चकोर नजर से वह छुपा न रहा । ट्रस्टीओं ने उस लड़के को पकड़ा, धमकाया और १५-२० प्रभावना के नारियल निकलवाये ।

पूज्यश्री यह दृश्य देख रहे थे । उन्होंने उस जैनेतर लड़के को बुलाया । धमकाते ट्रस्टीओं को अटकाये । १५-२० नारियल लड़के को वापस दिलाये और कहा : रोज तू मेरे पास आना ।

शिवप्पा नामका यह लिंगायती ब्राह्मण-शिशु रोज पूज्यश्री के पास आने लगा और थोड़े समयमें पांच प्रतिक्रमण सीख गया ।

पूज्यश्री के अपार वात्सल्य से मुग्ध बना वह लड़का दीक्षा लेने भी तैयार हो गया । वह बालक आगे जाकर पूज्य आचार्यश्री विजय गुणानंदसूरिजी महाराज बना, जिनके पास पू. चंद्रशेखर वि., पू. रत्नसुंदरसूरिजी जैसे अनेक प्रभावक पढ चूके हैं ।

ऐसे थे रत्नपरीक्षक पूज्य प्रेमसूरिजी, जिन्होंने अपने कुनेह और करुणा से चारों तरफ से अनेक प्रतिभाओं को आकर्षित की थी ।

अभी पू. सागरजी म. के गुणानुवाद के प्रसंग पर पू. धुरंधरविजयजी महाराजने पं. मफतलाल का हवाला देकर कहा था कि जैनशासन के अर्वाचीन चार स्तंभ हो गये :

(१) जिन-मंदिरों के उद्धारक पू. नेमिसूरिजी ।

(२) श्रावकों के उद्धारक पू. वल्लभसूरिजी ।

(३) आगमों के उद्धारक पू. सागरजी म. ।

(४) संयमीओं के उद्धारक पू. प्रेमसूरिजी, पू. रामचंद्रसूरिजी ।

इस कालमें विशिष्ट प्रकार के संयमी तैयार करके पूज्यश्रीने बहुत ही उपकार किया हैं ।

पूज्यश्री के चरणोंमें अगणित वंदन ।

पू. नवरत्नसागरसूरिजी :

'प्रेम' नाम ढाई अक्षर का हैं । प्रेम को जान ले वह पंडित कहा जाता हैं ।

'पोथी पढ-पढ जग मूआ, पंडित भया न कोय;
ढाई अक्षर प्रेम का, पढे सो पंडित होय ।'

– कबीर

पू. प्रेमसूरि म.में सचमुच ही प्रेम का प्रवाह उमटता था । कठोर लोगों के हृदयमें भी वैराग्य का दीपक प्रकटाने का भगीरथ काम उन्होंने किया था ।

अभी गणि श्री मुनिचंद्रविजयजीने कहा उसी तरह चार शासन-स्तंभ हो गये ।

पू. सागरजी महाराजने अकेले ने ही यह भगीरथ कार्य किया । खंडित प्रतोंमें भी प्रकांड प्रज्ञा से टूटे हुए आगम पाठ जोड़े, वे असल प्रतमें भी बादमें वैसे ही मिले ।

संयम के उद्धारक, पू. प्रेमसूरिजीने बहुत शासन-सेवा की हैं । जहाँ गये वहाँ चारित्र की प्रभावना की हैं ।

'गमतानो करीए गुलाल' (जो अच्छा लगे उसे बांटे), खुद को अच्छा लगता चारित्र अनेकों को दिया । इनके गुण हममें भी आये, ऐसी मंगलकामना ।

पूज्य कलापूर्णसूरिजी :

चातुर्मास के प्रारंभ से अब तक एक होकर हम रहे हैं । और आगे भी रहेंगे । ऐसी अच्छी परंपरा चले तो अच्छा ही हैं न ? इसमें शासन की शोभा ही हैं न ?

'हमारे श्रमण एक ही पाट पर हैं ।' ऐसा जानकर श्रावकवर्ग को कितना आनंद होगा ?

पू. प्रेमसूरिजी की संयम शताब्दी हैं । दीक्षा ही सच्चा जन्म हैं, आध्यात्मिक जन्म हैं ।

घर के मुख्य व्यक्ति चले जाये, वापस न आये तो मन कैसा व्याकुल रहता हैं ? हमारी आत्मा आज खुद के घर से बाहर चली गयी हैं । अंदर हालत कैसी हुई होगी ?

चेतना-शक्ति आज बाहर भटक रही हैं ।

चारित्र इसका नाम जो चेतना की शक्ति को अंदर ले जाये ।

चारित्र मानव को ही मिलता हैं । पांचों परमेष्ठीमें एक भी परमेष्ठी चारित्र-रहित नहीं हैं । इसलिए ही पांचों परमेष्ठी मानव के बिना बन नहीं सकते ।

ऐसे चारित्र को स्व-जीवनमें उतारना कठिन हैं तो अन्योंमें उतारना तो अति-कठिन हैं । यह कठिन काम पू. प्रेमसूरिजीने स्व-जीवनमें कर दिखाया हैं ।

भगवान और भगवान के शासन के प्रति उन्हें गाढ प्रेम था ।

जो पू. रामचंद्रसूरिजी के जैन प्रवचन पढकर मुझे वैराग्य हुआ, उन पू. रामचंद्रसूरिजी को तैयार करनेवाले पू. प्रेमसूरिजी थे ।

पाट पर बैठकर भले प्रेमसूरिजी बोलते नहीं थे, किंतु नीचे तो बड़े बड़े को भी दीक्षा दे देंते, भले कोलेज पढकर आया हो या चाहे वहाँ पढकर आया हो ।

वि.सं. २०१४में चडवाल संघ के समय पू. प्रेमसूरिजी के पहलीबार दर्शन हुए । तब सब पदस्थ साथ थे । हम भी संघमें जुड़ गये । उसके बाद वह चातुर्मास सुरेन्द्रनगरमें साथमें किया ।

एतदर्थ पू. कनकसूरिजीने सप्रेम अनुमति दी । पांच ठाणा हम अलग समुदाय के होने पर भी किसी को पता भी न चले कि अलग समुदाय होगा ।

उस समय पू. प्रेमसूरिजीने प्रेम के पाठ सीखाये, प्रेम की गंगामें स्नान कराया, पू. प्रेमसूरिजी के बाद पू.पं. भद्रंकरविजयजी म. को पकड़े । तीन चातुर्मास उनके साथ रहे ।

शिष्यों को तैयार करने की उनकी कला सीखने जैसी हैं । शिष्यों को तैयार करने वे खुद बाधा लेते : तू ४५ आगम न पढे वहाँ तक मुझे दूध का त्याग !

वह शिष्य उनके वात्सल्य से भीग न जाये तो ही आश्चर्य !

बोलने की अपेक्षा जीवन अधिक बोधप्रद बनता हैं । यह उनके जीवन से जानने मिलता हैं । आप बोलेंगे तो एकाध घण्टा ही, मगर आपका जीवन निर्मल होगा तो २४ घण्टे अन्यों को प्रेरणा मिलती ही रहेगी ।

निर्मल जीवन से वे हमेशा प्रेरणा देते ही रहते थे ।

अतः एव मुनि अवस्थामें रहा हुआ मुनि व्याख्यानादि न दे तो भी जगत का योग-क्षेम करता रहता हैं ।

ऐसे मुनि के प्रभाव से ही जंबूद्वीप से दुगुना बड़ा होने पर भी लवण समुद्र उसे डूबाता नहीं हैं ।

हम सब इनके जैसे आराधक बनें यही शुभेच्छा ।

पू. यशोविजयसूरिजी :

✱ स्व नाम धन्य महायोगिवर्य पू प्रेमसूरिजी म. हमारे युग के अनन्यतम साधक थे । इनकी साधना को शब्दोंमें बांध नहीं सकता हूं । मात्र वंदन करके शिल्पी के रूपमें वर्णन करूंगा ।

एक शिल्पी को किसीने पूछा : अजोड़ शिल्प कैसे बनाया ? शिल्पीने कहा : 'शिल्प तो अंदर था ही । मात्र बिनजरुरी भाग मैंने निकाल दिया ।'

पू. प्रेमसूरिजी, पास आये हुए किसी भी साधक का हीर परखकर उसका बिनजरुरी भाग निकालकर सशक्त शिल्प तैयार करते ।

शिल्पी के रूपमें वे अजोड़ थे । उन्होंने जैसे शिष्यों को दिये हैं, वैसे किसीने नहीं दिये ।

बालमुनि को चोकलेट का प्रलोभन भी देते । पू. जयघोषसूरिजी को बालमुनि के रूपमें ही अच्छी तरह संभाले थे ।

९-९ मुनिओं को शतावधानी बनाने के बाद तुरंत ही कह दिया : सार्वजनिक रूप से यह प्रयोग बंद करो ।

मुनिओं को प्रसिद्धि के नहीं, सिद्धि के शिखर पर वे चढाना चाहते थे ।

आपको पता नहीं होगा : गुरु की कठोरतामें कोमलता के दर्शन शिष्य कैसे करता हैं "

दयानंद के गुरु थे : वीरजानंद । बहुत ही क्रोधी । गुरु के क्रोध को पुण्य प्रकोप कहते हैं ।

दयानंद की आश्रम साफ करने की बारी थी ।

वीरजानंदने देखा : एक कमरेमें थोड़ा कचरा पड़ा हैं । गुरुने दयानंद को पीठमें झाडू से धो डाला । १६ दिन तक घाव बताकर दयानंद कहते : देखा ? यह गुरु की प्रसादी हैं ।

चंडरुद्राचार्य जैसे गुरु न मिले, उसका कितना दर्द हमें हैं ?

चंदना जैसे गुरु न मिले, उसका कितना दर्द हमें हैं ?

पू. प्रेमसूरिजी अनन्य शिल्पी थे - साधना जगत के ।

कर्मकांडी, ध्यानी, योगी, मांत्रिक, प्रवचनकार इत्यादि उन्होंने दिये हैं ।

पिंडवाड़ा धन्य बन गया हैं, उनके जन्मसे ।

सद्गुरु के रूपमें बहुत उच्च व्यक्ति थे ।

पू. प्रेमसूरिजी के पास, मैंने देखा हैं : कोई साधक उनके पास आते ही वे समझ जाते : १०-१५ जन्म से यह साधक किस धारामें बहता आया हैं ? स्वाध्याय, वैयावच्च, भक्ति, जो धारा हो उसमें बिठा देते ।

उनका तीसरा नेत्र जागृत था । वे इसके द्वारा साधक को पहचान लेते और उसकी दिशामें दौड़ाते ।

यह जन्म साधनामें दौड़ने के लिए ही मिला हैं ।

इस तरह सैंकड़ों साधकों को तैयार किये हैं । परंपरा से तो लाखों साधकों को तैयार किये हैं ।

आज के युग के बहुत बड़े भक्तियोगाचार्य, जिनके लिए 'ऋषि' शब्द के प्रयोग का मन होता हैं, वैसे पू. आचार्यश्री विजयकलापूर्णसूरीश्वरजी म. हमारे बीच बिराजमान हैं । पू. प्रेमसूरिजी, पू. भद्रंकरविजयजी म. भले गये, लेकिन पू. कलापूर्णसूरिजी जैसे विद्यमान हैं, वह हमारा सद्भाग्य हैं । ऐसे ऋषियों की ओरा रेन्ज बहुत लंबी होती हैं ।

सद्गुरु के प्रसाद के बिना साधना किसी भी तरह उठाई नहीं जा सकती ।

अरणिक मुनि की साधना गुरु की प्रसादी से ही हुई । नहीं तो कोमल कायामें धगधगती शिलामें संथारा करने की शक्ति कहाँ से आये ?

तीर्थंकर की कृपा हम पर नित्य बरसती ही रही हैं । लेकिन कृपा बरसती हो तब हमें स्वयं को खोलने की जरुरत हैं । ९९% कृपा, मात्र १% प्रयत्न ही हमारा । यह प्रयत्न भी कृपा को खोलने के लिए ही हैं ।

पू. प्रेमसूरिजी को १०० साल हुए । बहुत बड़ा अंतर नहीं हैं । मैं तो कहूंगा : २५०० वर्ष भी बहुत बड़ा अंतर नहीं हैं । आज भी वाइब्रेशन ग्रहण कर सकते हैं ।

इनकी साधना-धारा को ग्रहण करने के लिए आज के दिन कटिबद्ध बनकर प्रार्थना करते हैं : एकाध अंश हमें मिलो ।

पू. सिंहसेनसूरिजी :

जयवंत जिनशासन को यहाँ तक लानेवाले ऐसे महापुरुष हैं । भगवानने तो शासन स्वनिर्वाण तक चलाया । किंतु उसके बाद उसे जयवंत रखनेवाले ऐसे महापुरुष थे ।

मैंने तो पुज्यश्री को देखे नहीं हैं । एक प्रसंग कहता हूं, जिससे उनकी निखालसता, वात्सल्य, संगठन-प्रेम आदि का पता चले ।

उस्मानपुरा जिनालय की प्रतिष्ठा पू. उदयसूरिजी की निश्रामें होने पर भी पू. प्रेमसूरिजी को विनंति कराकर दोनोंने साथमें मिलकर प्रतिष्ठा कराई थी ।

ऐसे महापुरुषों की आज जरुरत हैं ।

पूज्यश्री की दीक्षा का आज मंगलदिन हैं । इस क्षेत्र के प्रभाव के कारण ऐसा चैतन्य प्रकटे कि वह साधक उत्तरोत्तर आगे बढता रहे ।

पू. महोदयसागरजी :

यहाँ बैठे हुए हमारेमें से बहुतोंने पूज्यश्री के दर्शन नहीं किये होंगे । मैंने भी नहीं किये । लेकिन हमारे पू. गुरुदेव के मुख से आदरपूर्वक नाम बहुतबार सुना हैं ।

तपागच्छ के बड़े साधु समुदायमें पू. प्रेमसूरिजी का बड़ा हिस्सा हैं । माता से भी अधिक वात्सल्यपूर्वक उन्होंने साधुओं को तैयार किये हैं । दीक्षा के बाद भी उन्होंने अद्भुत तालीम दी हैं ।

हमारे गुरुदेव पू. गुणसागरसूरिजीने आचार्य पदवी के प्रसंग पर घोषणा की थी : 'सब आचार्य भगवंत एक होते हो तो मैं मेरे गच्छ की सामाचारी के लिए आग्रह नहीं रखूंगा ।'

पू. प्रेमसूरिजी के कानमें यह बात आयी । उन्होंने इस भावना की अनुमोदना की ।

पू. प्रेमसूरिजी के अनेकानेक प्रसंगोंमें से एक प्रसंग कहता हूं : आचार्य पदवी के लिए योग्य होने पर भी उनमें अद्भुत निःस्पृहता थी । एक बार वे वयोवृद्ध मुनिश्री जिनविजयजी की वैयावच्च करने के लिए पाटणमें रहे थे । पहले से ही वैयावच्च का रस उनमें जोरदार था । पैर दबाने से लेकर मात्रु परठवने तक का कार्य भी आनंदपूर्वक करते । पर-समुदाय के महात्माओं की भी सेवा करते ।

उस समय राधनपुरमें पू. दानसूरिजी की निश्रामें उपधान थे । पू. दानसूरिजी को चैत्र शुक्ल १४ का दिन आचार्य पद के लिए सुंदर लगा । कमलशीभाई (राधनपुर के उत्तम श्रावक) को पू. दानसूरिजीने यह बात की । लेकिन प्रेमविजयजी को समझाना कैसे ? वह समस्या थी । कमलशीभाईने यह काम हाथमें लिया । पाटण गये : 'गुरु म. आपको याद करते हैं ।'

तबीयत बराबर नहीं होगी-ऐसा समझकर तुरंत ही विहार कर राधनपुर पहुंच गये ।

गुरु को स्वस्थ देखकर विचारमें पड़ गये : क्या कारण होगा ? उसके बाद गुरुने आदेश किया : तुम्हें आचार्य पदवी लेनी हैं । ये शब्द सुनते ही हम जैसों को आनंद होता हैं, पर पूज्यश्री का मुंह म्लान बन गया । अश्रुधारा बहने लगी ।

जो ऐसे मानता हो कि मैं आचार्य पदवी के लिये अयोग्य हूं, वही उस पद के लिये योग्य समझें ।

'तीर्थंकर समान पद का वहन करने की योग्यता मुझमें नहीं हैं ।' पूज्यश्रीने कहा ।

उस समय पू. दानसूरिजीने 'वीटो' लगा कर पद दिया ।

'आज्ञा गुरूणामविचारणीया ।'

ऐसी निःस्पृहता हममें भी प्रकट हो ऐसी भावना के साथ...

पू. दिव्यरत्नविजयजी (वल्लभसूरिजीके) :

आज से १०० वर्ष पूर्व इस भूमि पर जो प्रसंग बना वह हम भले ही नहीं देख सके, लेकिन उनका महोत्सव मनाने का सौभाग्य मिला, वह भी कम नहीं हैं ।

अगर कोई व्यक्ति बहरा-गूंगा हो उसे मिश्री-गुड़ खीलाया जाय तो उसकी प्रशंसा वह कैसे कर सकेगा ? वह मन ही मन गुनगुनायेगा, लेकिन बोल नहीं सकेगा ।

हमारी भी यही स्थिति हैं । उनके संयम के समय हममें से कोई उपस्थित नहीं होंगे ।

स्वार्थी संसारमें सच्चे साथी केवल गुरु हैं । गुरु के पास ४८ मिनिट का सामायिक भी अगर इतना आनंद देता हैं तो आजीवन सामायिक कितना आनंद देता होगा ?

वृक्ष स्वयं कष्ट झेलकर फल दूसरों को देते हैं । नदी अपना पानी दूसरों को देती हैं । हमारे पू. प्रेमसूरिजी भी ऐसे ही थे ।

पू. प्रेमसूरिजी श्रीफल की तरह उपर से कठोर थे, लेकिन भीतर से कोमल थे ।

आज के दिन संकल्प करना : जब तक चारित्र नहीं लूंगा, तब तक आयंबिल करूंगा या दूसरा कुछ भी त्याग करूंगा ।

पू.पं.श्री वज्रसेनविजयजी :

वि.सं. २००८ से मैं पूज्यश्री को बराबर पहचानता हूं । तब निवृत्ति निवासमें चातुर्मास था । मैं (संसारीपनेमें) मुमुक्षु मंडल के सभ्यरूपमें पुरबाईमें (वि.सं. २००६) था । पूज्यश्री तब आयंबिल खातेमें थे । पूज्यश्री के नाम के अनुसार गुण थे । बहुतों के नाम आनंदीलाल होता हैं पर आनंद की बुंद भी नहीं होती, लेकिन ये तो प्रेम के महासागर थे ।

१५-१७ मुमुक्षुओंमें मैं भी था । दो जन ८-८ वर्ष के थे । १७ वर्ष से कोई बड़ा नहीं था । उसमें से ९०%ने दीक्षा ली । 'प्रथम मुहूर्तमें दीक्षा ले उसे समेतशिखर की यात्रा का लाभ मिलेगा ।' ऐसा सुनकर पूज्यश्री को मैंने कहा था : 'दीक्षा मुझे लेनी हैं, लेकिन प्रथम मुहूर्तमें नहीं । मुझे समेतशिखर की यात्रा करनी हैं ।' पर पूज्यश्री टस के मस न हुए ।

'तेरे संयम के विकास के लिए तू पू. महाभद्र वि. को छोड़ना मत ।' ऐसा मुझे कहा था । सं. २०१९में राधनपुरमें चेचक (शीतला) निकले थे तब जावाल से राधनपुर के संघ पर पूज्यश्री का पत्र आता था : इस बालमुनि को बराबर संभालें ।

पूज्यश्री वचनसिद्ध थे । '१ली बुक महिनेमें हो जायेगी ।' कहते तो हो गयी ।

ऐसे प्रेमी महात्मा का सांनिध्य २० वर्ष तक मिला, देखने मिले, वह मेरा अहोभाग्य हैं ।

पू. कीर्तिसेनसूरिजी :

हम उनके हाथ से दीक्षित बने, १२ वर्ष साथमें रहे । पिंडवाड़ामें ३ चातुर्मास साथमें किये । उनका वर्णन वचनातीत हैं ।

उनका ब्रह्मचर्य निर्मल था । दैनिक एकासणेमें दो से तीन

द्रव्य से ज्यादा लिये नहीं हैं । स्वाध्यायमें लीनता बहुत ही थी । योग-क्षेममें अप्रमत्तता प्रतिपल देखने मिलती । उत्कृष्ट संयमवृत्ति तो नजर के सामने ही दिखती । कोई शिष्य आसन रखकर जाये तो ज्यादा आसन निकाल देते । १५ दिन से पहले काप नहीं निकालने देते । नीचे देखकर चलना, एकासन करना, स्थंडिल दोपहर को ही जाना, वाडेमें नहीं । इत्यादि गुण नेत्रदीपक थे ।

* ज्ञानी कौन कहा जाता हैं ? कितनी डीग्री प्राप्त करे तो ज्ञानी कहा जाये ? ९ पूर्व तक पढा हुआ भी अज्ञानी हो सकता हैं ।

आत्म-स्वरूप की तमन्ना न हो तो वह अज्ञानी ही होगा ।

किसी जिज्ञासुने गुरु को पूछा : चार गतिमें भयंकर दुःख हैं । साधनामें भी दुःख हैं । दूसरा कोई रास्ता हैं ?

गुरुने कहा : गुणानुवाद करना, गुणी को वंदन करना - वह तीसरा मार्ग हैं ।

आज हम इसलिए ही इकट्ठे हुए हैं । अनुमोदना का प्रसंग खड़ा करके पू.आ.भ. जगवल्लभसूरिजीने बड़ा काम किया हैं ।

तीर्थयात्रा द्वारा संयमयात्रा पाकर भव-यात्रा का अंत करें, यही कामना ।

नवकार के जितने अक्षर हैं उतने साल (६८) उन्होंने संयम पाला था ।

पूज्य धुरंधरविजयजी :

पूज्यश्री को सर्वप्रथम मैंने इसी भूमिमें सं. २००६में देखे । चातुर्मास निवृत्ति निवासमें था । पू.पं. भद्रंकर वि.म. का कोटावाले की धर्मशालामें था । पू. जिनप्रभ वि.म. की थोड़े समय पूर्व ही दीक्षा हुई थी । प्रथम ही दर्शनमें हम एक दूसरे को जच गये । मैं पूज्यश्री की गोदमें बैठ गया ।

'तुझे दीक्षा लेनी हैं ?' इस प्रश्न के जवाबमें मैंने कहा : 'दीक्षा लेनी हैं ।' उन्होंने कहा : 'तो तेरी दीक्षा नक्की ।' उस समय बालदीक्षामें खतरा था । नररत्न वि. की दीक्षा के बाद बालदीक्षा नहीं हुई थी । मुमुक्षुमंडलमें १४ वर्ष के आसपास के किशोर थे ।

उस समय पूज्यश्री के साथ भानुविजयजी यह सब संभालते । पूज्यश्री का यही मिशन था : साधु बढाने । सहयोगी तो बादमें मिले । १२ वर्ष के बाद रामविजयजी मिले । उसके पहले भी संघर्ष करते ही रहे । गुरु को १० शिष्य होने के बाद ही ११वाँ शिष्य मेरा ऐसी प्रतिज्ञा थी ।

दीक्षा लेनेमें उन्हें स्वयं बहुत तकलीफ पड़ी हैं । व्यारा से भागकर ३६ मील एक रात्रिमें चलकर बाद में गाडीमें बैठकर यहाँ तलेटीमें दीक्षा ली हैं । धर्मशालामें ले सके वैसा संयोग नहीं था । मंजूरी के बिना कौन दीक्षा दिलाने की हिंमत करेगा ? अभी तो तलेटीमें कोई दीक्षा नहीं लेता । लेकिन उन्हें आदिनाथ प्रभु की कृपा मिलनेवाली होगी ।

किसीने उन्हें खींचे नहीं, स्वयं खींचाकर आये हैं । जन्मांतरीय अधूरी साधना पूरी करने ही आये होंगे ।

भगवान महावीर छद्मस्थ अवस्थामें रहे, उस जगह (नांदियामें) उनका जन्म हुआ हैं । आबु, नांदिया, दियाणा, मुंडस्थल, वडगाम, वासा, ओसिया, भांडवजी इत्यादि स्थलोंमें भगवान महावीर विचरे हैं । इन सब स्थानोंमें भगवान महावीर हैं । भगवान के इन पवित्र परमाणुओं को उन्होंने ग्रहण किये होंगे ।

'श्रमणों को बढाना हैं । बिना श्रमण, शासन नहीं चलेगा ।' यह उनका मिशन था ।

कस्तुरभाई आये तो भी यही पूछते : यह (ओघा) कब लेना हैं ? जिसके साथ नजर मिलाते उसे दीक्षा प्रायः मिल जाती, ऐसी इनकी लब्धि थी ।

वि.सं. २०२०में पिंडवाड़ामें उनका चातुर्मास था । ५५ साधु थे । मैंने २०२०में पिंडवाड़ामें उनके साथ एक ही चातुर्मास किया हैं ।

दीक्षा का मिशन उठाया पू. प्रेमसूरिजीने । चलाया उनके वफादार शिष्य पू. रामचंद्रसूरिजीने ।

पू. रामचंद्रसूरिजी की दीक्षा के पहले पू. प्रेमसूरिजीने १० मुनिओं को तैयार किये । १० दीक्षा हो गई थी । उन सबको पू. दानसूरिजी के शिष्य बनाये । प्रारंभमें ही इतना प्रभाव था तो बादमें कितना बढा होगा ? संसार से खींचने के बाद वे मुनिओं

को आगे भी बढाते । पू. रामविजयजी को सरस्वती की इस गुफामें साधना कराई ।

किसी बहनने उनके व्याख्यान की प्रशंसा की, अतः स्वयं व्याख्यान नहीं देते थे ।

प्रवचनकार रामविजयजी, `भानुविजयजी, चंद्रशेखर वि. आदि सबका वे उपयोग कर लेते ।

बड़े-बड़े शक्तिशाली आचार्य पर पूज्यश्री नाराज हुए हो तो उन्हें सालों तक एक भी शिष्य न हुआ हो, ऐसा हमने देखा हैं ।

हमारा अस्तित्व उन्हें आभारी हैं । मूक रहकर उन्होंने असाधारण कार्य किया हैं ।

पूज्यश्री को शासन के लिए बहुत ही चिंता थी ।

दवा की भूल के कारण मुझे लकवा होने से वे चिंतित हो गये । पूज्यश्री शिवगंज थे । मैं नाणामें था । वे बेड़ामें आये । वहाँ ६०० आराधकों का उपधान होने पर भी वहाँ नहीं रुककर नाणामें मेरे पास आये । साधु का भोग देकर गृहस्थों की कभी उन्होंने खुशामद की नहीं हैं ।

'चिंता मत कर । तू चलने लग जायेगा ।' गोदमें बिठाकर उन्होंने ऐसा मुझे कहा । उस समय जिनसेन वि.ने बहुत ही सेवा की थी । मुझे शिवगंज ले गये । जीये वहाँ तक मुझे जामनगर होस्पिटलमें रखवाया । वहाँ के मुख्य व्यक्ति जीवाभाई को 'मेरा लडका हैं ।' ऐसे कहकर सूचना दी । नहीं तो जीवाभाई क्या पैसा खर्चते ?

मुझ पर उनका असीम उपकार ! मैं फिर विचित्र स्वभाव का । उनको अनेकबार नाराज करता । कर्म साहित्य के लिए ना कहता । फिर भी वे सब अंदर ऊतार जाते । मुझ जैसे अनेकों का ऐसा अपमान निगल जाते ।

हम से काम लेने की उनकी जोरदार ट्रीक थी । दीक्षा के समय मैं ३० इंच का था ।

दीक्षा के पहले मैं पूज्यश्री को मिलने मुंबई गया तो उन्होंने मुझे संथारा पोरसी गोखने बिठा दिया । पोणे घण्टेमें १७ गाथा करा दी और सूका मेवा दिलाया ।

पासमें आये कोई भी व्यक्ति की सूक्ष्म से सूक्ष्म बाबत का वे ध्यान रखते । उस समय के साधु समुदायमें मेरा नंबर १५५वां था । एक को साथमें लेकर सब शिष्यों की रोज रात को गिनती करते । रात को मुश्किल से दो घण्टे सोते ।

छेदसूत्रों को पूरे पचाकर बैठे हुए ये महापुरुष थे । उनके पास जो सूझ, दृष्टि थी वह दूसरे किसी के पास देखने नहीं मिली ।

प्राचीन प्रतों के संशोधक पू. पुण्यवि., पू. वल्लभसूरिजी के थे । मुझे शौक जगा, पू. पुण्यविजयजी के पास जाकर प्राचीन शास्त्र-संपादन सीखने का । मैं वहाँ नौ महिने तक गया । पू. पुण्यविजयजीने पुत्र की तरह मुझे प्रेम से सीखाया ।

रतिलाल नाथाभाई के यहाँ उद्यापन था । मैंने डरते-डरते पू. पुण्यविजयजी के पास पढने की बात की ।

सीधी कबूलात ही कर दी । कोई कह दे उससे अच्छा स्वयं ही कह देना । पू. प्रेमसूरिजी खुश हुए । पिता-पुत्र जैसा संबंध तेरा हैं । बहुत अच्छा । उसके बाद पू. पुण्यविजयजी के साथ मिलने की इच्छा पूज्यश्री को दिखाई । भर दोपहर १.०० बजे आये । ३ घण्टे दोनों बैठे । दोनों प्रसन्न हुए । पूज्यश्रीने संकल्प किया : मौका मिलते ही २५ साधु पुण्यविजयजी के पास भेजने ।

शासन को विजयवंत बनाने का उनका मनोरथ था । कोई शक्तिशाली साधु अलग न हो, वैसी उनकी इच्छा थी ।

२०२२ या २०२३में पुण्यविजयजी मुंबई गये । वहीं उनकी आयु पूरी हुई । २०२४में स्वयं गये । इस प्रकार उनका मिशन अधूरा रहा ।

पू. साहेबजीने विल बनाया : 'अचलगच्छ के क्षेत्रमें भा.सु. ५ को बारसा सूत्र सुनाना ।' उस समय ऐसी बात करनी खतरनाक थी ।

दूसरी सूचना : 'किसी भी ग्लान साधु की वैयावच्च करने के लिए मेरा साधु पहुंच जाये ।

भानुविजयजी के बाद (समुदाय को) जयघोषविजयजी संभाले, ऐसा उन्होंने विल बनाया । भानुविजयजी पहले जायेंगे, जयघोषविजयजी बादमें जायेंगे, यह नक्की था ? बननेवाली संभवित

घटना उन्हें दिखती थी । ऐसी थी उनकी दिव्यदृष्टि ! स्वर्गवास के बाद भी बहुत घटनाएं देखने मिली हैं ।

आज भी हम उनकी नजरमें हैं । ३२ वर्ष होने पर भी हमारी संभाल रखते हैं, ऐसा हमें नित्य लगता रहा हैं । होनेवाली घटना स्वप्नमें आती रहती हैं ।

रामविजयजी से लेकर सबको उन्होंने तैयार किये ।

पूज्यश्री की आज्ञा से मैंने जूनागढ चातुर्मास किया । उसके बाद कीर्तिचंद्र वि. का पत्र आया : पूज्यश्री की इच्छा हैं : अब आप जल्दी आओ । मैंने विहार किया । बोटाद पहुंचते चंद्रशेखर वि. मिले । हम साथमें रुके । बोटादमें ज्येष्ठ कृ. ११ को स्वर्गवास के समाचार मिले । चंद्रशेखर वि. तो तार पढकर चीख लगाकर बेहोश हो गये । २४ घण्टे तक चंद्रशेखर वि. रोये होंगे ।

उसके बाद हम स्वर्गभूमि खंभात पहुंचे । मैंने कीर्तिचंद्र वि. को पूछा : पू. प्रेमसूरिजी म.ने मेरे लिए क्या कहा ? 'कर्मप्रकृतिमें उसे (धुरंधर वि. को) रस नहीं हैं तो इतिहासमें आगे बढे ।' आज मुझे इतिहासमें रस हैं । ऐसे निराग्रही थे पूज्यश्री !

गुरु-लाघव के अनुसार पूज्यश्री का वर्तन था । जीवनमें बहुत बांधछोड़ की हैं, उन्होंने ।

उनकी कृपा से ही साधारण असाधारण हुआ ।

उनकी कृपा हटते ही असाधारण साधारण बने ।

सभीमें पू. प्रेमसूरिजी की शक्ति कार्य कर रही हैं । उनकी कृपा से गृहस्थ, डोकटर, वकील इत्यादि भी आगे बढ़े हैं ।

१०० वर्षमें उनसे संयम - दानका जो पुरुषार्थ हुआ वह अजोड़ हैं । उन्होंने आज तक कितने साधु दिये ? ८४ सालमें कितने साधु दिये ? थोड़ी गिनती कर लेना ।

पू. प्रेमसूरिजी न मिले होते तो मेरे जैसे को कभी दीक्षा नहीं मिलती । रमणलाल, दलसुख, जीवाभाई जैसे भी उस समय मुझे दीक्षा देने तैयार नहीं थे ।

अंतमें उन्होंने खुद के नाम के स्मारक या मंदिर बनाने की ना कही थी । साधु ही मेरे स्मारक हैं, ऐसा वे कहते थे ।

⌘ ⌘ ⌘

पट्टधर के साथ

२१-११-२०००, मंगलवार
मृगशीर्ष कृष्णा - ११

✱ अरिहंत चेइआणं ।

किसी भी ग्रंथ का रहस्य प्राप्त करना हो तो बारबार अनुशीलन करना चाहिए । एकबार पढकर छोड़ दें, यह नहीं चलता । एकबार पढने से 'यह ग्रंथ मैंने पढा हैं ।' इतना मिथ्या संतोष जरूर ले सकते हैं । लेकिन उस ग्रंथ का रहस्य पा नहीं सकते ।

✱ अरिहंतों की अनंत शक्तिओं का समावेश गणधरोंने नमुत्थुणं सूत्र की मात्र नौ संपदाओंमें कर दिया हैं । गागरमें पूरा सागर डाल दिया हैं ।

प्रथम स्वरूप संपदा हैं । शेष आठ उपकार संपदाएं हैं । अंतिम संपदा का नाम : 'प्रधान गुण - अपरिक्षयप्रधान फलाप्ति - अभय संपद्' हैं ।

मोक्षमें जाने के बाद भी भगवान द्वारा उपकार चालु रहता हैं यह इससे फलित होता हैं ।

बहुत लोग ऐसा मानते हैं : भगवान मोक्षमें गये तो यहां सब खतम हो गया ।

बहुत लोग तो आगे बढकर 'करुणा' को भी नहीं मानते । हम सब तर्कवादी हैं न ?

तर्क से प्रभु की करुणा जान नहीं सकते, भक्तिभाव कर नहीं सकते ।

भगवान के प्रति भक्तिभाव किये बिना चाहे जितनी क्रियाएं करो, वह सब शुष्क काय-क्लेश बनी रहेगी ।

भक्तिभाव मिल जाये तो एकमात्र चैत्यवंदन की हमारी क्रिया सभी ध्यान, योग और समाधि से चढ जाये ।

शरीर होने पर भी भगवान की करुणा को कर्म रोक नहीं सकते, तो शरीर-कर्म आदि से संपूर्ण मुक्त हो जाने के बाद भगवान की करुणा को कोई कैसे रोक सकता हैं ? आज भी भगवान मोक्षमें बैठे-बैठे करुणा फैला रहे हैं । मात्र हमें अनुसंधान करने की जरूरत हैं । फोन आदि यंत्र द्वारा अन्य के साथ अनुसंधान करनेवाले हम भगवान के साथ मंत्र आदि से अनुसंधान हो सकता हैं, ऐसा विश्वास रखते नहीं हैं, यह हमारी बड़ी करुणता हैं ।

'प्रधान गुण अपरिक्षय' का अर्थ यही होता हैं : जो जो प्रधान गुण भगवानमें प्रकट हुए हैं, उनका कभी क्षय नहीं होता, ये गुण क्षायिक-भाव के बन गये । क्षायिक भाव के गुण कैसे जा सकते हैं ?

✱ पंचसूत्रमें '**अरिहंताइसामत्थओ**' ऐसे कहा हैं । मात्र अरिहंत नहीं, 'आइ' शब्द हैं । 'आइ' यानि 'आदि' । आदि शब्दसे सिद्ध, आचार्य - उपाध्याय, साधु इत्यादि लेने हैं । सबका सामर्थ्य मिल सकता हैं, अगर हम पात्र बनें ।

✱ बीस विहरमान भगवान हैं, उसी तरह छद्मस्थ भगवान अभी १६४० हैं ।

भगवान का सामर्थ्य समग्र ब्रह्मांडमें घूम रहा हैं । जिस-जिसका साधना-मार्गमें विकास हुआ हैं, होता हैं या होगा उसके मूलमें यह आर्हन्त्य ही हैं । आप मात्र अरिहंतमें आपका मन जोड़ो, प्रणिधान करो, जगतमें घूमता आर्हन्त्य आपके अंदर सक्रिय बनेगा, यों आप स्वयं अनुभव करोगे ।

हम दादा की यात्रा करने के लिए उपर जाते हैं । उपर २७००० जिनबिंब हैं, परंतु सभी मूर्तिओं के दर्शन-वंदन कर नहीं सकते हैं । मात्र आदिनाथ दादा आदि मुख्य-मुख्य के कर लेते हैं । फिर भी उनके प्रति कोई हमारी अवज्ञा नहीं हैं । हमारे पास समय नहीं हैं । भाव से तो सबके दर्शनादि करते ही हैं ।

इस चैत्यस्तव से सब प्रतिमाओं के वंदनादि का लाभ मिलता हैं ।

✱ स्थान, वर्ण, अर्थ, आलंबन और अनालंबन इन पांचों 'योगो'में पतंजलि के योग के आठों अंग आ गये ।

स्थानमें - यम, नियम, आसन ।

वर्णमें - प्राणायाम (पद्धतिसर उच्चारण करते श्वास लयबद्ध बनता हैं ।)

अर्थमें - प्रत्याहार, धारणा ।

आलंबनमें - ध्यान ।

अनालंबनमें - समाधि ।

स्थान आदिपूर्वक चैत्यवंदन किया जाये तो सचमुच ही समाधि तक ले जानेवाला महान अनुष्ठान बन सकता हैं ।

हमने तो अभी चैत्यवंदन, पूजा इत्यादि ऐसे बना दिये हैं कि दूसरे लोगों को 'यह तो मात्र शोरगुल हैं । यहां योग, ध्यान जैसा कुछ भी नहीं हैं ।' ऐसा कहने का मन हो जाये ।

जो स्थान आदि की दरकार किये बिना ही चैत्यवंदन आदि करते रहते हैं, वे स्वयं शासन-बाह्य हैं, ऐसा श्री हरिभद्रसूरिजी कहते हैं ।

ऐसा इस वाचनामें सुनने को मिलेगा । यह सुनोगे तो ही चैत्यवंदनमें भाव भर सकोगे । इसलिए ही कहता हूं : यात्रा शायद कम हो तो चला लेना, लेकिन वाचना सुनना चूकना मत ।

✱ ध्यान को लानेवाली अनुप्रेक्षा हैं ।
अनुप्रेक्षा को लानेवाली धारणा हैं ।
धारणा को लानेवाली धृति हैं ।
धृति को लानेवाली मेधा हैं ।
मेधा को लानेवाली श्रद्धा हैं ।

ये पांचों बढते जाये तो ही कायोत्सर्ग, ध्यान तक पहुंचने की प्रक्रिया बन सकती हैं ।

* अच्छे मुहूर्त का भी प्रभाव होता हैं । यहाँ अच्छे मुहूर्तमें प्रवेश किया तो आप देख रहे हैं : वाचनामें कभी विघ्न नहीं आया, किंतु चातुर्मास परिवर्तन के बाद विघ्न आया । फिर आरीसा भुवनमें अंजनशलाका निपटा कर यहाँ शुभ-मुहूर्तमें (पुष्य नक्षत्रमें) प्रवेश किया तो विघ्न गये ।

* **मैंने कभी यह नहीं सोचा : मैं बोलूंगा वह सुननेवाले को अच्छा लगेगा या नहीं ? मैं तो जिसकी जरुरत हो वही देता हूं, भले उसे अच्छा लगे या न लगे । सच्चा वैद्य तो वही कहा जाता हैं जो दर्दी को हितकारी हो वैसी ही दवा देता हैं, भले वह कडवी क्यों न हो ?**

'अरिहंत चेइआणं ।'

यहाँ हरिभद्रसूरिजी लिखते हैं :

'सहृदयनटवद् भावपूर्णचेष्टः ।'

सहृदयी अभिनेता की तरह भावपूर्वक आपकी चेष्टा होनी चाहिए ।

बहुत नट ऐसे सहृदयी होते हैं कि पात्र का अभिनय इतना जीवंत करते हैं कि देखनेवाले तो फिदा हो जाते हैं, लेकिन वे स्वयं भी भावविभोर बन जाते हैं । इस तरह ही भरत का नाटक करनेवाले वे नट केवलज्ञानी बने होंगे न ? वह बहुरूपी कितना सहृदयी होगा कि साधु का वेश स्वीकारने के बाद छोड़ा नहीं ।

ऐसे भावपूर्वक हमें ये सूत्र बोलने हैं । कपटी नटकी तरह दिखावा नहीं करना हैं, लेकिन निष्कपट भावपूर्वक चेष्टा करनी हैं ।

मुंबई - लालबागमें लाल फूलों से रोज भगवान की भावपूर्वक पूजा करते भक्त को एक दिन विजयरामचंद्रसूरिजीने कहा : आप प्रवचनमें कभी नहीं आते ?

उसने कहा : 'मुझे मंगल पीडा देता हैं, इसलिए मैं लाल फूलों से पूजा करता हूं । मुझे प्रवचन के साथ क्या लेना-देना ?'

धर्म-क्रिया पीछे का हमारा ऐसा मलिन उद्देश होगा तो आत्मशुद्धि नहीं होगी । यह भक्ति कपटी नट जैसी गिनी जायेगी ।

चैत्य का अर्थ प्रतिमा किस प्रकार किया हैं ? वह समझने

जैसा हैं । देखो : **'चैत्यानि प्रतिमालक्षणानि अर्हच्चैत्यानि ।'** इसके रचयिता हरिभद्रसूरिजी आगम-पुरुष हैं । उनकी बात आप अन्यथा नहीं कर सकते ।

चैत्य शब्द कैसे बना हैं ? वह भी उन्होंने खोला हैं । 'चैत्य' का मतलब चित्त, उसका भाव अथवा कर्म वह चैत्य । **'वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च'** पाणिनि ५-१-१२३ सूत्रसे ष्यञ् प्रत्यय लगने से चित्तका 'चैत्य' बना हैं । अर्थात् अरिहंत परमात्मा की प्रतिमा चित्त की प्रशस्त समाधि उत्पन्न करनेवाली हैं ।

जो लोग 'चैत्य' का अर्थ ज्ञान, वृक्ष या साधु करते हैं, उनके पास न कोई आधार हैं । न कोई परंपरा हैं । मात्र अपने मतकी सिद्धि के लिए ही चैत्य के चित्र-विचित्र अर्थ उनके द्वारा किये गये हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

आत्म-साधक अल्प होते हैं ।

लोकोत्तरमार्ग की साधना करनेवालोंमें भी मोक्ष की ही अभिलाषावाले अल्पसंख्यक होते हैं । तो फिर लौकिकमार्ग या जहाँ भौतिक सुख की अभिलाषा की मुख्यता हैं, वहाँ मोक्षार्थी अल्प ही होंगे न ? जैसे बड़ी बाज़ारोंमें रत्न के व्यापारी अल्पसंख्यक होते हैं वैसे आत्मसाधक की संख्या भी अल्प होती हैं ।

ओपरेशन के बाद, भुज, वि.सं. २०४६

२२-११-२०००, बुधवार
मृगशीर्ष कृष्णा - १२

✱ भगवानमें जितने गुण, जितनी शक्तियां प्रकट होती हैं वह कभी नष्ट नहीं होती हैं । यह बताने के लिए ही नौवी संपदा है ।

✱ **'उपयोगो लक्षणम्'** उपयोग एक मात्र जीव का लक्षण हैं । यही दूसरे चारों अस्तिकाय से जीव को अलग करता हैं । यह लक्षण स्वरूप-दर्शक हैं ।

'परस्परोपग्रहो-जीवानाम्' यह संबंध-दर्शक सूत्र हैं । दूसरों के लिए बाधकरूप संबंध बांधना अपराध हैं । दूसरों के लिए सहायकरूप संबंध बांधना प्रकृति को सहयोग रूप हैं ।

इस वस्तु को भूल जाने के कारण ही हम दूसरों को बाधक बनते आये हैं । जहाँ तक दूसरों को बाधा पहुंचायेंगे वहाँ तक हमें दूसरों की तरफ से बाधा आयेगी ही ।

जीवास्तिकाय की विचारणा हमें सर्व जीवों के साथ एक तंतु से बांधती हैं । दूसरों से हम स्वयं को अलग मानते हैं, अलग चौका जमाना चाहते हैं, अलग अस्तित्व खड़ा करना चाहते हैं, लेकिन यही हमारी बड़ी भूल हैं । यही मोह हैं ।

यहाँ कौन अलग हैं ? हम सब एक डाल के पंखी हैं । एक ही सूरज की किरण और एक ही फूल की पंखुडी हैं । एक ही हांडी के चावल हैं । दूसरे को छोड़कर केवल हमारा भला कर नहीं सकते ।

भगवान भगवान कैसे बने ? सर्व जीवोंमें स्व का दर्शन करने से ही भगवान भगवान बने हैं ।

इस संदर्भमें '**सव्वलोअभाविअप्पभाव**' विशेषण कितना चोटदार हैं ?

भगवानने सर्व जीवोंमें आत्मभाव स्थापित किया हैं ।

* भगवान भले सात राजलोक दूर हो, परंतु भक्त के मन तो भगवान यहीं हैं । क्योंकि दूर रहे हुए भगवान को खींचनेवाली शक्ति उसके पास हैं । पतंग भले आकाशमें हो, लेकिन धागा पासमें हो तो पतंग कहाँ जायेगी ? भगवान भले दूर हो, लेकिन भक्ति पासमें हो तो भगवान कहाँ जायेंगे ?

हृदय को सदा पूछते रहो : भक्ति की रस्सी पासमें हैं न ? भक्ति की रस्सी गई तो भगवान गये ।

भगवान जाते ही तुरंत मोह चढ बैठेगा ।

मोह, भगवान जाये उसी की राह ही देख रहा हैं ।

गुफामें से सिंह चला जाये फिर वाघ, भेड़िये आते देर कितनी ? हृदयमें से भगवान जाने पर पाप आते देर कितनी ?

* काउस्सग्ग हमें फल देता हैं, लेकिन इसके पहले इतनी शर्त हैं : आपके श्रद्धा, मेधा, धृति, धारणा और अनुप्रेक्षा ये पांचों गुण बढते होने चाहिए ।

इस 'अरिहंत चेइयाणं' सूत्र से चैत्यवंदन करनेवाला वंदनाकी भूमिका तैयार करता हैं और अवश्य (निर्वृतिमेति नियोगतः) मोक्षमें जाता हैं ।

* 'अरिहंत चेइआणं' सूत्र से जगतमें रहे हुए सर्व चैत्यों को (प्रतिमाओं) को वंदन पूजन इत्यादि का लाभ मिल जाता हैं ।

प्रश्न : जैन मुनि तो सर्वविरतिमें रहे हुए हैं । वे प्रतिमा का पूजन इत्यादि का उपदेश कैसे दे सकते हैं ? या कैसे अनुमोदना कर सकते हैं ?

उत्तर : यहाँ स्पष्ट लिखा हैं : मुनि पूजा के लिए उपदेश दे सकते हैं, अनुमोदना भी कर सकते हैं ।

समवसरणमें देव (सूर्याभ जैसे) नाटक करते हो तो साधु उठकर चले नहीं जा सकते । यह भी एक प्रभु-भक्ति हैं । केवली भगवान भी भगवान की देशना चालु हो तब वहाँ बैठे रहते हैं; कृतकृत्य होने पर भी । यह व्यवहार हैं, उनका विनय हैं, केवली भी विनय नहीं छोड़ते तो हम कैसे छोड़ सकते हैं ?

लुणावा (वि.सं. २०३२) में प्रभु का वरघोड़ा था । पधारने की विनंति होने पर किसी साधु की राह देखे बिना पू.पं. भद्रंकर वि.म. वहाँ पधार गये थे । ऐसा मैंने अपनी आँखों से देखा हैं ।

भगवान का यह विनय हैं ।

✱ साधु पूजा के लिए उपदेश दे सकते हैं, करा सकते हैं । यहाँ स्पष्ट लिखा हैं । साधु इस तरह उपदेश देते हैं : 'जिनपूजा करनी चाहिए । इससे श्रेष्ठ, पैसों का कोई अन्य स्थान नहीं हैं ।'

सामायिक इत्यादि स्वस्थानमें श्रेष्ठ हैं, लेकिन भगवान का विनय गृहस्थों तो पूजा द्वारा ही कर सकते हैं । फिर धनकी मूर्च्छा भी पूजा द्वारा टूट सकती हैं ।

जिन्हें धन की मूर्च्छा छोड़नी नहीं हैं वे सामायिक पौषध की बात आगे करके बैठे रहते हैं ।

'न पैसो, न टको, ढुंढियो धरम पक्को !' ऐसे लोगों को ढुंढक मत अच्छा लगता हैं, उसमें कोई आश्चर्य नहीं हैं । एक पैसे का भी खर्च नहीं हैं न !

पूजा के प्रभाव से ही श्रावक के जीवनमें भक्ति बढ़ती हैं । भक्ति बढ़ते विरति उदयमें आती हैं ।

सांपवाले खड्डेमें पड़े हुए बालक को बचानेवाली माता (बालक को भले दर्द हो या घाव लगे) दोष-पात्र नहीं हैं, उसी तरह गृहस्थों को द्रव्य-पूजा के लिए उपदेश देनेवाले साधु दोष-पात्र नहीं हैं । महादोषमें से बचाने के लिए अल्पदोष कभी जरूरी बन जाता हैं ।

प्राथमिक देशविरति के परिणाममें जिनपूजा और जिन-सत्कार करने की भावना पैदा होती ही हैं ।

यह सत् आरंभ होने से उपादेय हैं । असत् आरंभ से बचानेवाला हैं ।

इस *द्रव्यस्तवमें 'द्रव्य' का अर्थ तुच्छ नहीं करना हैं, किंतु* 'भाव' का कारण बने वह द्रव्य - ऐसा अर्थ करना हैं ।

✱ अभी अकाल की ऐसी भीषण परिस्थिति हैं कि पालीयादमें रूपयों से पानी बिक रहा हैं । परिस्थिति ऐसी भी हो सकती हैं कि एक रूपये का एक गिलास पानी मिले ।

ऐसे संयोगोंमें हमें पानी का उपयोग बहुत ही संभालकर करने जैसा हैं । हमारे बुझुर्ग तो कहते : पानी का घी की तरह उपयोग करना ।

✱ पुराने जमानेमें श्रावक विदेशमें कमाने जाते तो वहाँ स्थायी नहीं रहते थे । एकाध सफर करके वापस स्वदेश आ जाते थे और संतोष से धर्म-ध्यानपूर्वक जिंदगी बिताते थे । वे जानते थे : यह जन्म काम-अर्थ के लिए नहीं हैं, धर्म के लिए ही हैं ।

✱ **जो आत्मा पूजा से भावित बने, वह आगे जाते विरति से भावित बनेगी ही । मेरे लिए तो यह बात बिलकुल सत्य हैं । मुझे तो यह चारित्र भगवान की पूजा-भक्ति के प्रभाव से ही मिला हैं, ऐसा मैं मानता हूं ।**

बचपनसे ही मैं मंदिरमें से दोपर एक-डेढ बजे आता । देरी से आने की आदत आज की नहीं हैं । उस समय भी माता-पिता राह देखते थे । यद्यपि उनको कोई तकलीफ नहीं पड़ती थी । रोज की मेरी आदत से उनको आदत पड़ गई थी ।

✱ महापूजा इत्यादिमें भी विवेक और औचित्य रखने की जरूरत हैं, जिससे अन्य लोग अधर्म प्राप्त न करें । संपूर्ण मंदिर को भूषित करने वगैरहमें भी विवेक जरुरी हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

निश्चय और व्यवहार

भगवानने निश्चय और व्यवहार दो धर्मों का उपदेश दिया हैं । तत्त्वदृष्टि / स्वरूपदृष्टि निश्चय धर्म हैं और उस दृष्टि के अनुरूप भूमिका के योग्य प्रवृत्ति, आचारादि व्यवहार धर्म हैं । दोनों धर्म रथ के पहियों जैसे हैं । रथ चलता हैं तब दोनों पहिये साथ चलते हैं ।

पू. कनकसूरिजी म.सा.

२३-११-२०००, गुरुवार
मृगशीर्ष कृष्णा - १३

✱ तीर्थ की सेवा अवश्य आत्मानुभूति कराती हैं ।

'तीरथ सेवे ते लहे, आनंदघन अवतार ।'

'आनंदघन अवतार' का अर्थ है : आत्मानुभूति । उन्होंने (आनंदघनजी, पू. देवचंद्रजी इत्यादि) आत्मानुभूति प्राप्त की तो हम क्यों नहीं कर सकते ?

पांच महाव्रतों का पालन, विहार, निर्दोष गोचरी, चार बार सज्झाय, सात बार चैत्यवंदन इत्यादि प्रतिदिन करने के पीछे एक ही उद्देश हैं : आत्मानुभूति । ज्ञानाभ्यास के पीछे यही उद्देश हैं : आत्मानुभूति । ज्ञान तो हमारा मुख्य साधन हैं । उसे कभी गौण बना नहीं सकते । इसके लिए दूसरा गौण कर सकते हैं, परंतु ज्ञान गौण नहीं कर सकते ।

जिनागम अमृत का पान, ज्ञान द्वारा ही मिल सकेगा ।

ज्ञानमें भी मख्यता किस को देनी ? केवलज्ञान को कि श्रुतज्ञान को ?

श्रुतज्ञान ही चार ज्ञानमें ज्यादा उपकारी हैं । क्योंकि उसका आदानप्रदान हो सकता हैं, अन्य ज्ञानका नहीं । इसलिए ही अन्य चार ज्ञान गूंगे कहे हैं ।

मूल विधि तीसरे प्रहरमें विहार करने की हैं । वह ज्ञान की मुख्यता ही कहती हैं । पहली सूत्र-पोरसी, दूसरी अर्थ-पोरसी और तीसरी आहार-विहार नीहार पोरसी ।

* भगवतीमें एक बार ऐसा आया कि मुझे तो लगा : साक्षात् भगवानने ही मुझे यह दिया हैं ।

वहाँ आया : आत्मा के गुण अरूपी हैं ।

मुझे प्रतीत हुआ : भगवान के गुण भी अरूपी हैं । भगवान के क्षायिक हमारे क्षायोपशमिक हैं । किंतु उसके साथ एकाकार बनने से ये भी क्षायिक बन सकते हैं ।

कपड़ा, मकान, शरीर, शिष्य आदि 'मेरे' लगते हैं । लेकिन ज्ञानादि गुण 'मेरे' लगते हैं ? 'मेरे' न लगे वहाँ तक आप उसके पीछे दत्तचित्त नहीं बन सकते । शरीर के लिए, शरीर के साधनों के लिए 'मेरेपन' का भाव हैं, वैसा भाव आत्मा के लिए हैं ? हो तो मैं आपको नमन करूं ।

* 'शत्रुंजी नदी नाहीने ।'

कौन सी शत्रुंजी नदीमें नहाना ? इस नदीमें तो पानी भी नहीं हैं ।

मैत्रीभावना ही शत्रुंजी नदी हैं । इसमें स्नान करनेवाला ही शत्रुंजयी बन सकता हैं ।

'मुख बांधी मुख-कोश' यानि ?

वचन गुप्ति करनी । गुस्सा आ जाये तब भी बोलना नहीं । नहीं बोलने से बहुत अनर्थों से बच जायेंगे ।

* वंदन, पूजन, सत्कार, सन्मान इत्यादि से हमारा संबंध भगवान के साथ जुड़ता हैं । भगवान पर अनुराग हो तो ही वंदनादि करने का मन होता हैं । वंदनादि करने से भगवान पर अनुराग प्रकट होता हैं, ऐसा भी कह सकते हैं ।

* 'अरिहंत चेइआणं' अद्‌भुत सूत्र हैं । इसके द्वारा विश्वभरमें जिनप्रतिमा आगे होते वंदनादि का फल काउस्सग्ग करनेवाले को मिलता हैं ।

स्तुति आदि करना वह सन्मान । मानसिक प्रीति भी सन्मान कहा जाता हैं, ऐसा अन्य आचार्य कहते हैं ।

वंदन-पूजन-सत्कार-सन्मान इत्यादि सम्यग्दर्शन के लाभ के लिए हैं । इसलिए लिखा : बोधिलाभ ।

बोधिलाभ भी क्यों ? मोक्ष के लिए । इसलिए उसके बाद कहा : **'निरुवसग्ग वत्तियाए ।'** निरुपसर्ग का अर्थ मोक्ष । मोक्षमें कोई उपसर्ग नहीं हैं । इसलिए वह निरुपसर्ग कहा जाता हैं ।

प्रश्न : साधु-श्रावक को बोधिलाभ मिला हुआ ही हैं । फिर मांगने की क्या जरूरत ? बोधिलाभ हैं तो मोक्ष भी मिलेगा ही । फिर उसकी प्रार्थना क्यों ? मांगने की जरूरत क्या ?

उत्तर : क्लिष्ट कर्मों के उदय से मिली हुई बोधि चली भी जाय । इसलिए ही यहाँ उसके लिए प्रार्थना की गई हैं ।

और हमारा सम्यग्दर्शन क्षायोपशमिक भाव का हैं । इसलिए इसे बहुत ही संभालना पड़ता हैं । आया हुआ सम्यग्दर्शन चला न जाय । हो तो विशुद्ध बने, इसलिए यहाँ ऐसी याचना की गई हैं ।

इस कारण से ही भद्रबाहुस्वामी जैसोंने याचना की होगी न ?

'ता देव दिज्ज बोहि, भवे भवे पास जिणचंद ।'

बोधिलाभ मिलने के बाद ही मोक्ष का लाभ मिलता हैं । इसलिए ही बोधिलाभ के बाद 'निरुपसर्ग' रखा हैं ।

बोधिलाभ मिला तो केवलज्ञान और मोक्ष मिलेगा ही ।

✱ यह कायोत्सर्ग भले आप करते रहो, परंतु आपकी श्रद्धा का या मेधा का ठिकाना न हो तो उसका कोई मतलब नहीं हैं । इसलिए ही यहाँ लिखा : आपकी श्रद्धा, मेधा, धृति, धारणा और अनुप्रेक्षा इत्यादि बढता हुआ होना चाहिए ।

✱ श्रद्धा का अर्थ यहाँ प्रसन्नता किया हैं । मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से पैदा होती प्रसन्नता ही श्रद्धा हैं ।

भैंस के दहीं से नींद ज्यादा आती हैं । द्रव्य भी इस तरह असर करता हैं । उस तरह मूर्ति का उच्च द्रव्य हमारे अंदर प्रसन्नता क्यों न बढाये ?

भगवान की मूर्ति के शांतरस के पुद्गल हमारे सम्यक्त्व मोहनीय के पुद्गलोंमें निमित्त बने । इसलिए ही हमें प्रशम गुण का लाभ मिला ।

सरोवरमें चाहे जितना कचरा हो पर एक ऐसा मणि आता हैं कि जो डालते ही सभी कचरा तलमें बैठ जाता हैं । सरोवर का पानी एकदम निर्मल बन जाता हैं । मन के सरोवरमें श्रद्धा का मणि रखो तो वह निर्मल बने बिना नहीं रहता ।

ऐसी श्रद्धा के संयोग से ही श्रेणिक चित्त की निर्मलता पा सके थे । फलतः तीर्थंकर नाम कर्म बांध सके थे ।

ऐसी निर्मलता के स्वामी को कोई चलित नहीं बना सकता ।

ऐसी निर्मलता बढने के बाद मेधा बढानी हैं ।

श्रद्धा सम्यग्दर्शन हैं तो मेधामें सम्यग्ज्ञान हैं ।

कठिन ग्रंथ को भी ग्रहण करनेमें पटु बुद्धि वह मेधा हैं । संक्षेपमें ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होता चित्त का धर्म वह मेधा ।

निर्मल प्रज्ञा आगमोंमें रुचि धारण करती हैं, लेकिन मोहनीय से ग्रस्त मलिन प्रज्ञा आगमोंमें रुचि धारण नहीं करती । पापश्रुत पर उसे आदर होता हैं । निर्मल मेधावाले को पापश्रुत पर अवज्ञा होती हैं, गुरु-विनय और विधि पर प्रेम होता हैं । उसे ग्रहण करने का नित्य परिणाम होता हैं ।

बुद्धिमान दर्दी उत्तम औषधिमें ही रुचि धारण करता हैं उसी तरह निर्मल प्रज्ञावाला सद्ग्रंथमें ही रुचि धारण करता हैं ।

आपको सद्ग्रंथ प्रिय लगते हैं या खराब पुस्तकें प्रिय लगती हैं ? जो प्रिय लगते हो उसके उपर आपकी मेधा कैसी हैं ? पता चलेगा । सद्ग्रंथ का पठन मात्र कल्याण नहीं करता । उसके पहले आपके हृदयमें ग्रंथ के प्रति तीव्र रुचि होनी चाहिए

भगवान के दर्शन भी तो ही सफल हैं अगर वहाँ अत्यंत आदर भाव हो ।

'विमल जिन दीठां लोयण आज ।'

'अहो अहो हुं मुजने नमुं ।'

इत्यादि पंक्तियां भगवान की ओर तीव्र रुचि को प्रकट करती हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

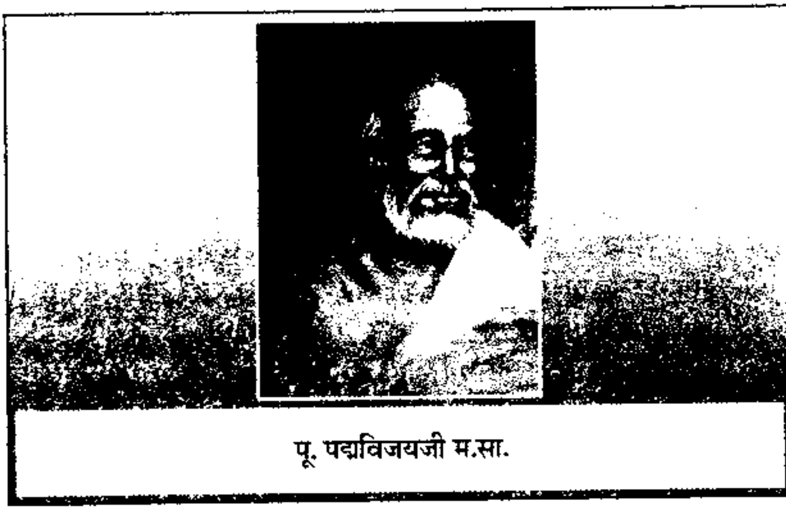

पू. पद्मविजयजी म.सा.

२५-११-२०००, शनिवार
मृगशीर्ष कृष्णा - ३०

✱ सद्धाए, मेहाए, धिइए, धारणाए, अणुप्पेहाए, वड्ढमाणीए ।

प्रभु निर्दिष्ट श्रुत धर्म चारित्र धर्म आज भी चालु हैं । आज भी वे विश्वकल्याण कर रहे हैं ।

चतुर्विध संघ का एकेक सभ्य सर्व जीवों के हितकर अनुष्ठानमें ही प्रवृत्ति करता हैं । इस लिए इनके प्रत्येक अनुष्ठान के साथ विश्व-कल्याण जुड़ा हुआ होता ही हैं । विश्व के सर्व जीवों के प्रति कितना मैत्रीभाव हैं ? वह उनकी प्रवृत्ति द्वारा व्यक्त होता हैं ।

इस मैत्रीभाव के आद्य स्रोत भगवान हैं । इसलिए ही चतुर्विध संघ का प्रत्येक सभ्य भगवान के प्रति पूर्णरूप से समर्पित होता ही हैं ।

भगवान के कहे हुए एकेक अनुष्ठान के प्रति वह पूर्णरूप से श्रद्धान्वित होता ही हैं ।

हरिभद्रसूरिजी ऐसे ही महान थे । इसलिए ही उनकी कृतिओंमें हमें अपूर्वता देखने मिलती हैं, नये-नये पदार्थ जानने मिलते हैं ।

हरिभद्रसूरिजी इस चैत्यवंदन सूत्र के लिए कहते हैं : यह अनुष्ठान समाधि का नहीं, महासमाधि का बीज हैं । यह बात मात्र लिखने के लिए नहीं लिखते; स्वयं वे जीकर लिखते हैं । इनके जीवनमें गुरु-परंपरा, बुद्धि और अनुभव – तीनों का सुभग समन्वय देखने मिलता हैं । जहाँ ये तीन होते हैं वहाँ अपूर्व वचन देखने मिलते ही हैं ।

✱ सद्गुण परायी वस्तु नहीं हैं, हमारी ही हैं । स्वच्छता बाहर की वस्तु नहीं हैं, अंदर की ही हैं । कचरा निकालते ही स्वच्छता हाजिर । दुर्गुण निकालते ही सद्गुण हाजिर ! ये सद्गुण हमारे स्वयं के हैं । बाहर से कहीं से प्राप्त करने नहीं हैं, अंदर रहे हुए हैं, उसे मात्र खोलना ही हैं । दुर्गुणों को हटाते ही आपके सद्गुण प्रकट होंगे ही ।

✱ आठ योग अंगोंमें अंतिम तीन धारणा, ध्यान और समाधि हैं । आठों अंगों का फल अंतमें समाधिमें प्रकट होता हैं । श्रद्धा आदिमें आठों अंग देखने मिलेंगे । धारणा तो हैं ही । अनुप्रेक्षामें ध्यान आ गया और काउस्सग्गमें समाधि आई ।

इसके पहले के पांचों अंग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार) भी यहाँ समाविष्ट हैं ही ।

यहाँ यम, नियम इत्यादि रहित मनुष्य आ सकता ही नहीं । जिनमुद्रा से 'आसन' आ गया ।

बहिर्भाव का रेचक, आत्मभाव का पूरक और कुंभक, इसके द्वारा भाव प्राणायाम आ गया ।

बहिर्गामी इन्द्रियों को रोककर अन्तर्गामी बनाई, उसमें प्रत्याहार आ गया ।

क्या बाकी रहा ? एक चैत्यवंदन को आप विधिपूर्वक और हृदयपूर्वक करो तो महासमाधि तक पहुंच सकते हो ।

यह जीवन ऐसी समाधि प्राप्त करने के लिए मिला हैं । इसकी जगह हम उपाधि प्राप्त कर रहे हैं । जहाँ हीरे मिल सकते हैं, वहाँ हम कंकर एकत्रित कर रहे हैं ।

श्रद्धा, मेधा आदि महासमाधि के बीज हैं, ऐसा यहाँ हरिभद्रसूरिजी कहते हैं ।

धृति का अर्थ मनकी एकाग्रता ! स्थिरता ! अनुष्ठान के प्रति विशिष्ट प्रीति !

ऐसी धृति आते ही चित्त एकदम शांत बनता हैं । आकुल-व्याकुल मनमें शुद्ध अनुष्ठान का अवतरण हो नहीं सकता । धृतियुक्त मनमें उत्सुकता नहीं रहती । ऐसा चित्त हो वहाँ अवश्य कल्याण होता ही हैं, धीरता-गंभीरता आती ही हैं । चिंतामणि हो वहाँ से गरीबी जाती ही हैं । चिंतामणि के पास आने के बाद भी इसके गुणों की जानकारी होनी चाहिए । नहीं तो वह चिंतामणि गरीबी दूर कर नहीं सकता । यहाँ भी धृति आदि के फायदे की जानकारी होनी चाहिए ।

चिंतामणि रत्न जैसा धर्म मिलते ही साधक का हृदय नाच उठता हैं, वह पुकारने लगता हैं : अब संसार कैसा ? मुझे अब **धर्म-चिंतामणि मिल गया हैं । अब संसार का भय कैसा ?**

✱ लोगस्स का दूसरा नाम 'समाधि सूत्र' हैं । 'उद्द्योतकर' भी उसका एक नाम हैं ।

लोगस्स हमें नाममें प्रभु देखने की कला सिखाता हैं । 'उसभ' (ऋषभ) यह शब्द आते ही आदिनाथ भगवान का संपूर्ण जीवन हमारे समक्ष आ जाता हैं या नहीं ? न आता हो तो प्रयत्न करें । इस कला को सीखने के लिए ही लोगस्स सूत्र हैं ।

अरिहंत चेइआणं हमें चैत्य (मूर्ति)में भगवान देखने की कला सीखाता हैं ।

मंत्रमूर्तिं समादाय, देवदेवः स्वयं जिनः ।
सर्वज्ञः सर्वगः शान्तः, सोयं साक्षाद् व्यवस्थितः ।

यह श्लोक याद हैं न ?

धारणा : धारणा की मोती की माला के साथ तुलना की गई हैं । अधिकृत वस्तु को नहीं भूलना उसका नाम धारणा ।

चित्त शून्य हो तो धारणा हो नहीं सकती, अन्य स्थानमें चित्त हो तो धारणा हो नहीं सकती ।

अधिकृत (प्रस्तुत) वस्तु हम बहुल बार भूल जाते हैं । एक काउस्सग्ग की बात नहीं हैं, किसी भी बाबत को हम भूल जायें तो वहाँ सफलता नहीं मिलती ।

प्रभु को याद रखना ही सफलता हैं ।

प्रभु को भूल जाना ही निष्फलता हैं ।

इतना याद रहे तो 'धारणा' आते समय नहीं लगता ।

लोगस्स चलता हो तब लोगस्समें चित्त लगना ही चाहिए । जो पंक्ति चलती हो वहीं चित्त लगा होना चाहिए । आगे-आगे के सूत्रों का भी विचार करो तो भी 'धारणा' नहीं कही जाती । विक्षिप्त चित्त कभी 'धारणा' का अभ्यास कर नहीं सकता । **विक्षिप्त चित्तवाला मोती को भी बराबर पिरो नहीं सकता तो प्रभु के साथ एकाकार कैसे बन सकता हैं ?**

धारणा के तीन प्रकार हैं : अविच्युति, वासना और स्मृति । यह धारणा यहीं लेनी हैं ।

कितनेक को श्रद्धा, मेधा, धृति, धारणा, अनुप्रेक्षा इत्यादि के संस्कार तुरंत ही पड़ जाते हैं । कितनेक को समय लगता हैं । कितनेक को जीवनभर ऐसे संस्कार नहीं आते । यहाँ पूर्वजन्म का कारण हैं । जिन्होंने पूर्वजन्ममें साधना की हो, उन्हें साधना तुरंत ही लागु पड़ती हैं । जिन्होंने कभी साधना शुरु की ही नहीं उसे यह जल्दी लागु नहीं पड़ती । पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण ही मनुष्य-मनुष्यमें इतना अंतर देखने मिलता हैं ।

✱ अनुप्रेक्षा को यहाँ रत्न को शुद्ध करनेवाली अग्नि की उपमा दी गई हैं । तत्त्वार्थ की अनुचिंता करनी वह अनुप्रेक्षा हैं ।

अनुप्रेक्षा यानि ध्यान । अनुप्रेक्षामें उपयोग होता ही हैं । उपयोग के बिना अनुप्रेक्षा हो नहीं सकती । उपयोग हो वहाँ ध्यान आ ही गया । वाचना, पृच्छना, परावर्तना उपयोग के बिना भी हो सकते हैं । लेकिन अनुप्रेक्षा उपयोग के बिना कभी हो ही नहीं सकती ।

यह अनुप्रेक्षा ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से मिलती हैं । इससे संवेग बढता हैं । उत्तरोत्तर वह विशेष सम्यक् श्रद्धान रूप से होती हैं । अंतमें वह केवलज्ञान की भेट धरती हैं ।

अग्नि रत्नमें से अशुद्धि दूर करती हैं उसी तरह यह अनुप्रेक्षा की अग्नि कर्म-मल को जलाकर केवलज्ञान देती हैं ।

✱ आज्ञापालन के बिना संयमजीवन शक्य नहीं हैं । गुरु आज्ञापालनसे ही संयमजीवनमें विकास होगा ।

दो वर्ष मैंने आपकी बात मानी । अब आपको मेरी बात माननी हैं । कच्छ-वागड़ को हराभरा करना हैं । दादा के क्षेत्र को संभालना है । कच्छ-वागड़में जाकर क्या करना हैं ? ऐसा मत सोचें । वागड़में जो भाव हैं वे दूसरे कहीं देखने मिलेंगे ? कच्छ-वागड़में जाकर क्या करना हैं ? ऐसा पूछनेवाले को मैं पूछता हूं : प्रतिष्ठा आदिमें जाकर क्या करना हैं ?

मुझे पूछो तो कहूंगा : धामधूम इत्यादि मुझे थोड़े भी पसंद नहीं हैं । जिस क्षेत्रमें थोड़े घर, थोड़ा आना-जाना हो वह क्षेत्र मुझे ज्यादा पसंद आता हैं ।

हम दक्षिण इत्यादिमें गये वह कोई फिरने या प्रसिद्धि के लिए नहीं गये । वह बात अब पूरी हो गई । **ज्यादा प्रसिद्धि अब मेरे लिए तो साधनामें बड़ा पलिमंथ (विघ्न) बन गया हैं ।**

⌘ ⌘ ⌘

तीर्थंकर भगवंत की महिमा

- तीर्थंकर भगवंत मुख्य रूप से कर्मक्षय के निमित्त है ।
- बोधिबीज की प्राप्ति के कारण हैं ।
- भवांतरमें भी बोधिबीज की प्राप्ति कराते हैं ।
- वे सर्वविरति धर्म के उपदेशक होने से पूजनीय हैं।
- अनन्य गुणों के समूह के धारक हैं ।
- भव्यात्माओं के परम हितोपदेशक हैं ।
- राग, द्वेष, अज्ञान, मोह और मिथ्यात्व जैसे अंधकारमें से बचानेवाले हैं ।
- वे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और त्रैलोक्य प्रकाशक हैं ।

पदवी प्रसंग, मद्रास, वि.सं. २०५२, माघ शु. १३

२६-११-२०००, रविवार
मृगशीर्ष शुक्ला - १

✱ दैनिक क्रियाओंमें जो सूत्र बोलते हैं, उसके कुछ रहस्य ललित-विस्तरा जैसे ग्रंथों से ख्यालमें आते हैं । विधिपूर्वक यदि ये चैत्यवंदन आदि क्रियाएं की जाये तो श्रद्धा, मेधा आदि महासमाधि के बीज बन जाते हैं । अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण इत्यादिमें आता 'करण' शब्द समाधि का ही वाचक हैं । शब्द से जो कह नहीं सकते उसे अपूर्वकरण कहते हैं । उस समय साधक की दशा गूंगा आदमी मिठाई खाता हैं, किंतु वर्णन नहीं कर सकता उसके जैसी होती हैं । तब आरोपित सुखकी भ्रमणा नष्ट हो जाती हैं ।

अनारोप-सुखं मोह-त्यागादनुभवन्नपि ।
आरोपप्रियलोकेषु, वक्तुमाश्चर्यवान् भवेत् ॥

- ज्ञानसार

हम सब आरोप सुख से अभ्यस्त हैं । शरीर आत्मा न होने पर भी उसमें आत्मा का आरोप करते हैं । सुख न होने पर भी सुख का 'आरोप' करते हैं । सुख का आरोप इसका मतलब ही सुख की भ्रमणा !

भगवान की कृपा के बिना यह भ्रम नहीं मिटता ।

'आरोपित सुख-भ्रम टल्यो रे, भास्यो अव्याबाध;
समर्युं अभिलाषिपणुं रे, कर्ता साधन साध्य ।'

– पू. देवचंद्रजी

समाधि दशा पैदा होते ही सब भ्रम टूटकर चूर-चूर हो जाता हैं ।

एक नवकार के काउस्सग्गमें भी यह ताकत हैं आपको समाधि दे दें । भले एक नवकार बहुत छोटी क्रिया हो, परंतु उसकी ऊर्जा बहुत हैं ।

लेकिन हमारी क्रिया तो इतनी सुपरफास्ट चलती हैं कि बेचारी समाधि को कहीं प्रवेश करने की जगह ही नहीं मिलती । हमारी क्रिया अर्थात् राजधानी एक्सप्रेस ! हम क्रिया करने के लिए ही करते हैं । परंतु यही मेरा आनंद हैं । ऐसा मानकर कभी क्रियाएं नहीं करते । अगर इस तरह क्रियाएं करें तो प्रत्येक क्रिया ध्यान बन जाये, प्रत्येक काउस्सग्ग समाधि बन जाये ।

प्रत्येक काउस्सग्ग के समय हमारे श्रद्धा, मेधा आदि बढते ही जाने चाहिए ।

श्रद्धा हो तो ही मेधा आती हैं ।
मेधा हो तो ही धृति आती हैं ।
धृति हो तो ही धारणा आती हैं ।
धारणा हो तो ही अनुप्रक्षा आती हैं ।

* यात्रा तलहटी से ही शुरु हो सकती हैं । जहाँ हम हों वहीं से साधना का प्रारंभ हो सकता हैं । घाटीमें रहनेवाला आदमी कभी शिखर से यात्रा शुरु कर नहीं सकता ।

तलहटी पर से उपर जाने के बाद ही हिंगलाज का हडा आदि स्थान क्रमशः पार करके ही आदिनाथ भगवान को भेटना हैं । आदिनाथ भगवान ऐसे सस्ते नहीं । साडे तीन हजार सीढियाँ चढने के बिना आदिनाथ भगवान नहीं मिलते । कष्टपूर्वक जो भगवान मिलते हो उनके दर्शनमें भी कैसे भाव आते हैं ?

* इस जिनवाणी के श्रवण से जीवनमें जांच करें : कषायों की कटुता कितनी दूर हुई ? मैत्री की मधुरता कितनी बढी ? यह जांच आप ही कर सकेंगे, दूसरा कोई कर नहीं सकता ।

साधना ज्यों ज्यों परिपक्व बनती जाती हैं, त्यों त्यों इच्छाओं का नाश होता जाता हैं, कम होती जाती हैं । पहले अनेक प्रकार की इच्छाएं साधक को होती थी, परंतु अब वह इच्छाएं कर-करके थक गया हैं । इच्छाएं ही उसे दुःखरूप प्रतीत होती हैं ।

'इच्छाएं स्वयं दुःख हैं ।' यह जितना जल्दी समझमें आये उतना अच्छा ! हम इच्छाओं को पूर्ण करने का परिश्रम करते हैं, पर ज्ञानी कहते हैं : इच्छाएं कभी किसी की पूर्ण हुई हैं ? **इच्छा हु आगास-समा अणंतया** । इसमें से छूटने का एक ही मार्ग हैं : इच्छाओं को हटा देनी । यद्यपि इच्छाओं को हटानी आसान नहीं हैं । बहुत कठिन बात हैं । क्योंकि इच्छाओंमें ही हमने सुख मान लिया हैं । **हम इच्छाओं को पूर्ण करने का परिश्रम करते हैं, लेकिन ज्ञानी कहते हैं : इच्छाओं को नष्ट करो । उसमें आपको कुछ गंवाना नहीं हैं । गंवाना है सिर्फ आपका दुःख !**

सुखी होने का इसके बिना कोई अन्य मार्ग नहीं हैं ।

* **प्रश्न :** श्रद्धा आदि न होने पर भी ऐसा बोलने से मृषावाद नहीं लगता ?

उत्तर : उसका कौन निषेध करता हैं ? परंतु श्रद्धाहीन बुद्धिमान ऐसा कभी करता ही नहीं । वह विचारकर ही करता हैं । शायद आप कहेंगे : श्रद्धाहीन बुद्धिमान '**सद्धाए मेहाए** ।' इत्यादि नहीं बोलता क्या ? परंतु, आपकी विचारणा मात्र एकांगी हैं । जिसमें आपको श्रद्धा की कमी लगती हैं उसमें सचमुच पूर्ण श्रद्धा की कमी नहीं होती । जिसमें पूर्ण श्रद्धा की कमी हो वह तो ऐसा कभी करता ही नहीं । श्रध्धा भी मंद, तीव्र, तीव्रतम वगैरह अनेक रूपसे होती हैं । मंद श्रद्धा होने के कारण हमें भले न दिखे, लेकिन वह होती ही हैं । वह श्रद्धा उसके आदर इत्यादि से जान सकते हैं ।

श्रद्धा, मेधा आदि शायद तीव्र न भी हो, परंतु आदर भी आ जाये तो भी हमारा बेड़ा पार हो जाय । आदर ही इच्छायोग हैं । **इच्छायोग सामान्य वस्तु नहीं हैं । इच्छायोगवाला साधक अर्थात् बाज़ारमें प्रतिष्ठित व्यापारी । भले उसके पास पुंजी नहीं हैं, लेकिन बाज़ारमें आबरु हैं । आबरु के कारण उसे व्यापारी रूपये देंगे ही । क्योंकि उन्हें विश्वास होता हैं : यह हमें रूपये देगा ही ।**

हमारे पास आदर रूपी आबरु हो तो श्रद्धा, मेधा इत्यादि एक दिन मिलेंगे ही ।

आदर जोरदार हो और शायद हमारा कभी उपयोग न भी रहे तो भी ज्यादा चिंता न करें । आदर ही उपयोग को खींच लायेगा ।

गन्ना, गन्ने का रस, गुड़, मिश्री और शक्कर - इन पांचोंमें मीठास क्रमशः ज्यादा से ज्यादा होती हैं उसी तरह श्रद्धा आदिमें मीठाश क्रमशः ज्यादा से ज्यादा होती हैं ।

गन्ने के स्थान पर आदर हैं । आदर अटूट रहे तो श्रद्धा आदि मिलेंगे ही । गन्ने पासमें हैं तो रस, गुड़ इत्यादि भी मिलेंगे ही । सबका मूल आदर हैं । जैसे मिश्री शक्कर आदि का मूल गन्ना हैं ।

⌘ ⌘ ⌘

सम्यकत्व के लक्षण

शम : उदयमें आये हुए या आनेवाले क्रोधादि कषायों को शांत करने की भावना रखकर, समता रखनी।

संवेग : इच्छा हैं बल्कि मात्र मोक्ष प्राप्ति की।

निर्वेद : संसारी जीव की प्रवृत्ति हैं, परंतु संसार के पदार्थोंमें आसक्ति नहीं हैं ।

अनुकंपा : जगत के सर्व जीवों को स्व-समान मानकर सबके प्रति वात्सल्यभाव, करुणाभाव ।

आस्तिकता : श्रद्धा, जिनेश्वर और उनके द्वारा बोधित धर्ममें अपूर्व श्रद्धा ।

तीर्थमाल प्रसंग, कटारिया - कच्छ, वि.सं. २०४७

२७-११-२०००, सोमवार
मृगशीर्ष शुक्ला - द्वि. - १

✱ जैनेतरों को भी नोट लेनी पड़े कि यहाँ (जैनोमें) ऐसी जोरदार योगसाधना हैं कि जो महासमाधि तक तत्काल पहुंचा दे, ऐसी शैलीमें यह ललित विस्तरा टीका श्री हरिभद्रसूरिजी द्वारा लिखी गई हैं ।

पूर्वाचार्योंने कैसा सुंदर तैयार करके हमारे सामने रखा हैं । पर हमारे पास खाने की फुरसत नहीं हैं । खाने जितना भी हम प्रमाद उडा नहीं सकते हैं । दूसरा आदमी ज्यादा से ज्यादा आपके लिए स-रस भोजन बना देगा, लेकिन खाने की क्रिया तो आपको ही करनी पड़ेगी न ? शास्त्रकार ज्यादा से ज्यादा तो मुक्ति की सुंदर प्रक्रिया आपके सामने रख देते हैं, परंतु साधना तो आपको ही करनी पड़ेगी न ?

✱ चैत्यवंदन आदिमें स्थान, वर्ण, अर्थ और आलंबन का प्रयोग करना है । बहुत काल के अभ्यास के बाद इन चारों के फलरूप अनालंबन योग मिलता हैं ।

ज्यादा करके काउस्सग्गमें अनालंबन योग प्राप्त होता हैं । काउस्सग्ग से पहले बोला जाता सूत्र अरिहंत चेइआणं महत्त्वपूर्ण

सूत्र हैं । **'वंदणवत्तियाए'** इत्यादि द्वारा जिन-चैत्यों को वंदन करने की तीव्र इच्छा व्यक्त होती हैं । बढती जाती श्रद्धा-मेधा वगैरह से बहुत कर्मों की निर्जरा होती हैं । कर्म-निर्जरा होते मन निर्मल और निश्चल बनता हैं । ऐसे मनमें अनालंबन योग का अवतरण होता हैं ।

कषाय इत्यादि की अवस्थामें चित्त चंचल बनता हैं, आत्मप्रदेश अत्यंत कंपनशील बनते हैं । विषय-कषायों के आवेश शांत होते हैं, तब चित्त निर्मल और निश्चल बनता हैं । विषय-कषायों का आवेश जिन-चैत्यों के वंदन-पूजन-सत्कार-सन्मान आदि की तीव्र इच्छा से शांत होता हैं ।

जैनशासनमें निर्मलता रहित निश्चलता का कोई मूल्य ही नहीं हैं । विश्व को संहारक अणुबोंब की 'भेंट' देनेवाले वैज्ञानिकोंमें कम निश्चलता नहीं होती । चूहे को पकड़ने के लिए तैयार होती बिल्लीमें कम निश्चलता नहीं होती । किस काम की ऐसी निश्चलता ?

निर्मलता केवल भक्तियोग से ही आती हैं ।

दिगंबर और श्वेतांबरमें यहीं अंतर हैं । दिगंबरोंमें प्रथम तत्त्वार्थ पढाया जाता हैं । वहाँ पंडित तैयार होते हैं । जब श्वेतांबरोमें नवकार आवश्यक सूत्र इत्यादि पढाये जाते हैं । इससे यहां श्रद्धालु भावुक तैयार होते हैं । श्रद्धावान् ही धर्म का सच्चा अधिकारी हैं । मेधावान् नहीं, प्रथम श्रद्धावान् चाहिए । इसलिए ही **'सद्धाए मेहाए'** लिखा, **'मेहाए सद्धाए'** नहीं लिखा ।

मैं तो बहुतबार भावविभोर बन जाता हूं । कैसी सुंदर हमें परंपरा मिली हैं । जहाँ बचपन से ही दर्शन-वंदन-पूजन के संस्कार मिले । इसके कारण ही भक्ति मुख्य बनी ।

भक्ति को जीवनमें प्रधान बनायें, यदि आगे बढना हो । अगर पंडित बनने गये, भक्ति छोड़ दी तो अभिमान आये बिना नहीं रहेगा । अभिमान से कभी विकास नहीं होता । हा, विकास का आभास जरूर होता हैं ।

एक भक्ति आ गई तो सब कुछ आ गया ।

यशोविजयजी भक्ति योग के कैसे प्रवासी होंगे : जिन्होंने भगवान को कह दिया :

'प्रभु उपकार गुणे भर्या, मन अवगुण एक न समाय ।'

परंतु छद्मस्थ अवस्थामें अवगुण न हो यह कैसे हो सकता हैं ? कल एक साध्वीजीने यह प्रश्न पूछा था ।

मैं कहूंगा : प्रभु के साथ एकाकारता के समय निकली हुई ये पंक्तियां हैं । जिस क्षण चेतना परमात्ममयी होती हैं उस क्षण अवगुण रहते ही नहीं । दीपक जलता हो वहाँ तक अंधेरा कैसे आ सकता हैं ? प्रभुमें उपयोग हो वहाँ तक दुर्गुण कैसे आ सकते हैं ?

ये समाधि दशा के उद्‌गार हैं । समाधि दशामें से नीचे आने के बाद तो अवगुण आ सकते हैं, लेकिन अवगुण आने के बाद ऐसा साधक कभी उन्हें थपथपाता नहीं । हम तो कषायादि को थपथपा रहे हैं ।

'तुम न्यारे तब सब ही न्यारा, अंतर कुटुंब उदारा ।'

पू. उपा. यशोविजयजी के ये उद्‌गार प्रभु-विरह के सूचक हैं ।

*** अन्नत्थ ऊससिएणं ।**

उच्छ्‌वास, निःश्वास, खांसी, छींक, जंभाई, डकार, अधोवायु, चक्कर, पित्तकी मूर्च्छा, सूक्ष्म अंग, सूक्ष्म श्लेष्म और सूक्ष्म दृष्टि का संचार आदि (अग्नि, पंचेन्द्रिय की आड, चोर, स्व-पर राष्ट्र का भय) सोलह आगार हैं । मतलब कि ऐसा होने से कायोत्सर्ग का भंग नहीं होता ।

कायोत्सर्ग-ध्यान का कितना प्रभाव ? मनोरमा के कायोत्सर्ग के प्रभाव से सुदर्शन सेठ के लिए सूली सिंहासन बन गई । चतुर्विध संघ के कायोत्सर्ग के प्रभावसे यक्षा साध्वीजी सीमंधर स्वामी के पास पहुंच सके । वाली के कायोत्सर्ग के प्रभाव से रावण का विमान अटक गया था ।

* आज अंतिम वाचना हैं । अंतिम वाचनामें गुरु-दक्षिणा के रूपमें क्या दोगे ? मैं मांगू ? मैं मात्र आज्ञापालन मांगता हूं । आप गुरु की आज्ञा को सदा स्वीकारने के लिए तत्पर रहो, इतनी ही अपेक्षा हैं । पू. कनकसूरिजी हलवदमें थे । एकेक साध्वीजी के ग्रुप को चातुर्मास के लिए कह रहे थे और सभी 'तहत्ति' करके स्वीकार करते थे ।

इसे देखकर पू. प्रेमसूरिजी के कान्तिविजयजी स्तब्ध बन गये थे : साधुओं को चातुर्मास भेजने की व्यवस्था जुटाने के लिए हम हेरान-हेरान हो जाते हैं । यहां पर कितना सहज आज्ञापालन ? वह भी साध्वीओं (स्त्रीओं) में ?

प्रभु और गुरु की आज्ञा निश्चल मनसे पालोगे तो समझ लेना : मोक्ष आपकी मूठीमें हैं । संसार आपके लिए सागर नहीं रहेगा, डबरा बन जायेगा । इसे तैरना नहीं पड़ेगा, मात्र एक ही छलाँग लगाओगे और सामने पार !

⌘ ⌘ ⌘

अपार्थिव आस्वाद

भव्यात्मन् ! भोजन के षड्रस पौद्‌गलिक पदार्थ जीह्वा के स्पर्श से सुखाभास उत्पन्न करते हैं । कंठ के नीचे चले जाने के बाद उसका आस्वाद चला जाता हैं, जबकि आत्मामें रहा हुआ शांतरस सर्वदा सुख देनेवाला हैं । उसमें पौद्‌गलिक पदार्थों की जरुरत नहीं होती । वह आत्मामें छुपा हुआ हैं । आत्मा द्वारा ही प्रकट होता हैं ।

दीक्षा पदवी प्रसंग, वि.सं. २०५७, पालिताना

१-१२-२०००, शुक्रवार
मृगशीर्ष शुक्ला - ५

(पू. गणिश्री मुक्तिचंद्रविजयजी को पंन्यास पद, पू. तीर्थभद्र वि. तथा पू. विमलप्रभ वि. को गणि-पद तथा बाबुभाई, हीरेन, पृथ्वीराज, चिराग, मणिबहन, कंचन, चारुमति, शान्ता, विलास, चन्द्रिका, लता, शान्ता, मंजुला और भारती - ये चार पुरुष और दस बहनों का दीक्षा प्रसंग । कल्पनाबहन की दीक्षा मृग. शुक्ला ११ को हुई ।)

पू.आ.श्री विजय कलापूर्णसूरिजी :

आज चतुर्विध संघ आनंद-उल्लासमय हैं । पंन्यास, गणिपद तथा चौदह प्रव्रज्या के मंगल प्रसंग हैं । जिनशासन की बलिहारी हैं : ऐसे प्रसंग देखने मिलते हैं । दूसरे कहाँ ऐसा देखने मिलेगा ?

प्रेमभाव भी कैसा ? हर प्रसंगमें प्रत्येक आचार्य भगवंतभी उपस्थित हो ही जाते हैं । यहाँ भी आप अनेक समुदाय के अनेक आचार्य भगवंतों को देख सकते हो ।

ऐसे बड़े प्रसंग पर ऐसे भयानक अकाल के प्रसंगमें जीवदया की टीप होनी ही चाहिए । हमारे मुहूर्त को थोड़ा ही समय हैं । उतने समय तक आप जीवदया का कार्य कर लो, ऐसी मेरी इच्छा हैं ।

पूज्य कलाप्रभसूरिजी :

विश्वमें अजोड़ जैनशासन हमें जन्म से मिला हैं । अगर यह शासन नहीं मिला होता तो ऐसे प्रसंग हम देख नहीं सकते थे, मना नहीं सकते थे । पूर्व जन्ममें जानते या अनजानते हमें शासन को देखकर प्रेम हुआ ही होगा । इसलिए ही यह शासन मिला हैं ।

जिनेश्वरोंने फरमाइ हुई प्रव्रज्या विश्व का महान आश्चर्य हैं । छोटी-छोटी उम्रमें सर्व त्याग के मार्ग पर जानेवाले को देखकर हृदय झुक जाता हैं । इसका अनुमोदन हृदयसे हो जाये तो भावि कालमें अवश्य सर्व त्याग का मार्ग खुलेगा ।

दूसरा प्रसंग हैं, पद-प्रसंग का । दुनिया से अलग ही प्रकार का लोकोत्तर प्रसंग हैं । आप पू. गुरुदेव के पीछे रहे हुए चित्रमें देख सकते हो : स्वयं भगवान शिष्यों को गणधर पद दे रहे हैं । इसका मतलब यह हैं कि स्वयं की शक्तिओं की स्थापना भगवान उनमें कर रहे हैं ।

जैनशासन का साधु इच्छा-रहित होता हैं । परम-पद के अलावा उसे दूसरे किसी पद की इच्छा नहीं होती । पू. गुरुदेव ही खुद योग्य शिष्य को योग्य पद दे रहे हैं । विनीत शिष्य गुरुआज्ञा को सत्कार करके पद स्वीकार करता हैं ।

तीन मुनिओंमें एक को पंन्यास पद और अन्य को गणिपद-प्रदान यहाँ हो रहा हैं ।

तीनों मुनिओं की इच्छा नहीं थी कि हमें पद मिले ।

आपके यहाँ अमुक एज्युकेशन के बाद डीग्री मिलती हैं ।

समस्त आगम ग्रंथों की अनुज्ञा का अर्थ हैं : पंन्यास पदवी ।

भगवती की अनुज्ञा का अर्थ हैं : गणि पदवी ।

इस प्रसंग पर संपत्ति, शक्ति और समय का योगदान अनेक व्यक्तिओंने दिया हैं, वे सब धन्यवाद के पात्र हैं ।

पूज्य धुरंधरविजयजी :

अंतिम चार महिने से एक-सा आनंद का माहोल जमा हुआ हैं, वह विहार की पूर्व संध्या तक जमा हुआ ही रहेगा ।

यह भूमि (सात चोवीसी धर्मशाला) भाग्यशाली हैं कि यहाँ बिना आमंत्रण सर्व साधु भगवंत पधारे हैं । ऐसा लाभ तो किसी

को ही मिलता हैं । पूज्यश्री की निश्रामें पूरे चातुर्मासमें सबने आनंद की अनुभूति की हैं ।

कोई संयोग ही ऐसा : पूज्यश्री पधारे और चारों तरफ से सर्व समुदाय के महात्मा आकर खींचाने लगे ।

सभी दूधमें शक्कर की तरह मिल गये ।

ऐसा दृश्य देखने का सौभाग्य इस धरती को मिला हैं ।

आपने साधर्मिक भक्ति जोरदार की ही हैं ।

अब कार्य रहा : जीवदया का ।

मनुष्य को भी पानी मिले या नहीं ? ऐसा समय आ खड़ा हैं, वहाँ पशुओं की हालत क्या होगी ? उसकी कल्पना कर सकते हो । पिंजरापोलोंमें निरंतर पशु आते रहते हैं, लेकिन पानी-घासचारा बहुत ही दुर्लभ और महंगा बना हैं, वह आप जानते ही हैं ।

छः जीवनिकाय की रक्षा के लिए ही हम दीक्षा लेते हैं । कसाई के सामने संघर्ष के लिए तैयार रहना, मोत को भी मीठी मानना, ऐसा खमीर जैन ही बता सकते हैं ।

अब आप ऐसा आयोजन करो कि जिससे अकाल की छाया दूर की जा सके ।

पूज्य कलापूर्णसूरिजी आज शिरमोर आचार्य भगवंत हैं । सबके आदर और श्रद्धा के पात्र बने हैं । आपको ऐसे गुरु मिले हैं उसका गौरव होना चाहिए ।

आप सब जीवदया के लिए पीछे नहीं पड़ेंगे, पूज्यश्री की बात प्रेम से स्वीकार लेंगे, ऐसी श्रद्धा हैं ।

नूतन पदस्थों तथा दीक्षितों को पूज्यश्री द्वारा हितशिक्षा

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो ।
माणुस्सत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि अ वीरिअं ।

- उत्तराध्ययन ४/१

* भगवान महावीर चार वस्तु अत्यंत दुर्लभ बताते हैं : मानवजन्म, गुरु के पास धर्मश्रवण, उस पर श्रद्धा (रुचि) और उसका आचरण ।

श्रवण होने के बाद भी श्रद्धा न हो तो श्रवण व्यर्थ जाता हैं । श्रध्धा होने के बाद उस मुताबिक जीवन न बने वहाँ तक उतनी खामी कही जाती हैं ।

आज तीन पदस्थ तथा चौदह आत्माएं दीक्षित बनी हैं । आज की घड़ी अतिधन्य हैं । यह उत्तमोत्तम जो पद मिले हैं, उसे कैसे शोभास्पद बनायें ? वह हमें गुरु भगवंत से जानना हैं ।

पंन्यास-गणि इत्यादि पद मिलने के बाद भार बढ जाता हैं । आप भी प्रधान बनते हो तब भार बढता हैं न ? पंन्यास-गणि पद की इतनी महत्ता हैं कि अगर इस प्रकार जीवन बनायें तो विपुल कर्म की निर्जरा होती हैं ।

गुणों की वृद्धि द्वारा ही कर्म की निर्जरा होगी । आप सब गुण प्राप्तिमें तत्पर बनो ।

आपके गुणों द्वारा संघमें उल्लास बढे, धन्य धन्य जिनशासन... ऐसे उद्‌गार निकल पड़े, ऐसा आपका जीवन होना चाहिए ।

नूतन दीक्षितों को कहना हैं : जो प्रतिज्ञा स्वयं भगवानने ली वह आपको मिली हैं, इसका महत्त्व कम न समझें । यह प्रतिज्ञा लेकर जीवनभर समतामें रहना हैं । जीवनभर पापक्रिया से दूर रहना हैं । थोड़ा भी पर-पीड़न न हो उसका ख्याल रखें ।

जिन-भक्ति, गुरु-भक्ति, शास्त्र-स्वाध्याय इत्यादिमें मग्न बनकर जीवन धन्य बनाना हैं ।

नूतन पंन्यासश्री मुक्तिचंद्रविजयजी :

परम करुणासागर इस युग के प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ प्रभु को अनंत वंदन ।

परम श्रद्धेय, मेरी जीवन नैया के सुकानी, परम तारक, पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री विजयकलापूर्णसूरीश्वरजी म.सा. तथा पू. गुरुदेव आचार्यश्री विजयकलाप्रभसूरीश्वरजी म.सा. को वंदन...

परम करुणासिंधु वर्तमान शासन नायक भगवान श्री महावीरदेवने जिस शासन की स्थापना की, वह २५०० से अधिक वर्ष बीतने पर भी आज जयवंत हैं, उसमें प्रभु की पाट-परंपरा के वाहक पू. आचार्य भगवंतों का महान योग-दान हैं ।

प्रभु श्री महावीर देवकी ७७वी पाट पर बिराजमान पूज्य

आचार्यश्री के पहले हुए ७६ महात्माओं का हम सब पर अनन्य उपकार हैं ।

शास्त्रकारोंने तीर्थंकरों की अनुपस्थितिमें आचार्यश्री को ही तीर्थंकर तुल्य कहे हैं : 'तित्थयरसमो सूरी'

बात भी सच हैं । एक अवसर्पिणी या उत्सर्पिणी कालमें तीर्थंकर तो मात्र २४ ही होते हैं, लेकिन शेषकालमें शासनकी बागडोर चलानेवाले कौन ? आचार्य भगवंत ।

आचार्य भगवंत राजा कहे गये हैं । आचार्य गच्छ का किस तरह संचालन करते हैं, आश्रितों का योग-क्षेम किस तरह करते हैं ? उस पर गच्छाचार पयन्ना आदि आगम ग्रंथमें विशद मार्गदर्शन दिया गया हैं ।

आचार्य अकेले तो संपूर्ण गच्छ को सब तरह से संभाल नहीं सकते । इसलिए उपाध्याय, गणावच्छेदक, प्रवर्तक, पंन्यास, गणि इत्यादि पदवीधर महात्मा गच्छ के संचालनमें आचार्यश्री को सहायक बनते हैं ।

बहुत को पता नहीं होगा कि यह गणि और पंन्यास पदवी क्या हैं ? दोनोंमें क्या अंतर ? मूलमें हमारा जैनशासन द्वादशांगी के आधार पर चल रहा हैं । द्वादशांगी को बचाने के लिए ही बारह वर्ष के दो-दो अकाल के बाद जैन श्रमण-संमेलनों का आयोजन हुआ था । द्वादशांगी के बचाव के लिए ही मथुरा और वलभीपुरमें वाचनाओं का आयोजन हुआ था । द्वादशांगी के बचाव के लिए ही देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणने संपूर्ण आगम ग्रंथों को पुस्तकारूढ किये थे । इसके पहले सभी आगम मुखपाठ से चलते ।

भगवान महावीर के निर्वाण के बाद देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणने देखा कि अब ऐसी प्रज्ञा नहीं हैं कि सुनकर मुनि याद रख सके । समय का तकाजा हैं कि आगमों को पुस्तकों पर लिखे जायें । यदि इस तरह नहीं किया गया तो भगवान की वाणी की यह अमूल्य संपत्ति नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगी । अपनी विशिष्ट प्रतिभा से देवर्द्धिगणिने आगमों को पुस्तकारूढ बनाकर महान युगप्रवर्तक कार्य किया । जिसकी नोट आज भी कल्पसूत्र के अंतमें हैं ।

आगमों के रहस्य बराबर समझाने के लिए ही आगमपुरुषश्री

हरिभद्रसूरिजीने १४४४ ग्रंथों की रचना की। आगमों के दुर्बोध पदार्थो को सरल बनाने के लिए ही शीलांकाचार्य तथा अभयदेवसूरिजीने उस पर टीकाएं रची। आगमों के उपनिषद् को प्राप्त करने के लिए ही कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्रसूरिजीने साड़े तीन करोड़ श्लोकों की रचना की, आगमों के पदार्थों को नव्यन्याय की शैलीमें उतारने के लिए ही उपा. यशोविजयजीने अकेलेने अनेक ग्रंथों की रचना की। भिन्न-भिन्न महात्माओंने भिन्न-भिन्न चरित्र ग्रंथ, प्रकरण ग्रंथ या गुजराती भी कोई साहित्य रचा वह भी आगम की ओर जाने के लिए।

आगमों को सुलभ बनाने के लिए ही पू. सागरजी महाराजने उसे संशोधित - संपादित कर मुद्रित बनाये।

आगम हमारी अमूल्य संपत्ति हैं। इसका एकेक अक्षर मंत्राक्षर से भी अधिक हैं। इसका एकेक अक्षर देवाधिष्ठित हैं। ऐसे पवित्र आगम विधिपूर्वक ग्रहण किये जाये तो ही फलदायी बनते हैं। साधु भी उसके योगोद्वहन करने के बाद ही अधिकारी बनते हैं। श्रावकों को नवकार इत्यादि के उपधान होते हैं उस प्रकार साधुओं को भी योगोद्वहन होते हैं। आचारांग, उत्तराध्ययन, कल्पसूत्र, महानिशीथ आदि के योगोद्वहन होने के बाद उस ग्रंथ का अधिकार मिलता हैं।

उदा. महानिशीथ के योगोद्वहन करनेवाला साधु ही दीक्षा-प्रतिष्ठा-उपधान आदि का अधिकारी बन सकता हैं।

भगवती सूत्र के योगोद्वहन करनेवाला ही बड़ी दीक्षा वगैरह का अधिकारी बन सकता हैं।

गणि-पदवी का अर्थ दूसरा कुछ नहीं, भगवती सूत्र के योगोद्वहन की अनुज्ञा। आपके उपधान की माल अर्थात् नवकार आदि सूत्रों की अनुज्ञा।

गणि-पदवीमें मात्र भगवती सूत्र की अनुज्ञा दी जाती हैं। पंन्यास पदवीमें सर्व आगमों के अनुयोग की अनुज्ञा दी जाती हैं। दोनों के बीच इतना महत्त्व का अंतर हैं।

हमारे यहाँ प्रथम पंन्यासजी के रूपमें पू.आ.श्री विजयसिंहसेनसूरिजी के शिष्य पू. सत्यविजयजी का नाम सुना जाता

हैं । वर्तमान कालमें पंन्यासजी महाराज के रूपमें समग्र जैन संघमें प्रसिद्ध पूज्यश्री भद्रंकरविजयजी गणि थे ।

२२ वर्ष पूर्व फलोदी चातुर्मास दरम्यान हम तीन (मैं, पूर्णचंद्र वि. तथा मुनिचंद्र वि.) हीरसौभाग्य काव्य पढ रहे थे, उस समय उसमें 'प्रज्ञांश' शब्द का प्रयोग देखने मिला । हीरसौभाग्य के रचयिता श्री देवविमल गणि लिखते हैं : हीरविजयसूरिजीने कुछ मुनिओं को 'प्रज्ञांश' बनाये । लगता है कि 'पंन्यास' शब्द का संस्कृतिकरण 'प्रज्ञांश' किया होगा अथवा प्रज्ञांश शब्दमें से पंन्यास शब्द बना होगा । (जानकार कहते हैं कि पंडित पद का न्यास वह पंन्यास पद, पंडित का पहला अक्षर पं + न्यास = पंन्यास)

परमगुरु की प्रज्ञा के अंश का जिसमें अवतरण हुआ हो वह 'प्रज्ञांश' कहा जाता हैं ।

भूतकालीन विषयक स्मृति ।

वर्तमानकालीन विषयक बुद्धि ।

भविष्यकालीन विषयक मति ।

कुछमें स्मृति होती हैं, लेकिन बुद्धि नहीं होती । बुद्धि होती हैं तो स्मृति-मति नहीं होती । मति होती हैं तो बुद्धि नहीं होती । एक ही व्यक्तिमें तीनों शक्तियाँ हो ऐसी घटना विरल होती हैं । तीनों एक स्थानमें हो उसे प्रज्ञा कही जाती हैं । इस प्रज्ञा का अंश जिसमें अवतरित हुआ हो वह 'प्रज्ञांश' कहा जाता हैं ।

आज पूज्यश्री जब पंन्यास-पद प्रदान कर रहे हैं, यद्यपि गत वर्ष ही इस पदवी की बात थी, विज्ञापन भी हो गया था, परंतु पदवी न होने से बहुत लोग विचारमें पड़ गये होंगे, मगर नियति हो उसी प्रकार से काम होता हैं । और जो होता हैं अच्छे के लिए ही । नहीं तो ऐसा सिद्धक्षेत्र कहाँ मिलनेवाला था ? अनंत सिद्धों का क्षेत्र यहीं हैं, लेकिन साथ-साथ हमारे समुदाय के नायक पू. जीतविजयजी तथा पू. कनकसूरिजीने गृहस्थावस्थामें यहीं चतुर्थव्रत ग्रहण किया था । पू. कनकसूरिजी की पंन्यास-पदवी यहीं पर हुई थी । पू.उपा.श्री प्रीतिविजयजी की दीक्षा यहीं पर हुई थी ।

ऐसे परमपवित्र स्थानमें ऐसे महान तारक गुरुदेव की निश्रामें... जिन गुरुदेव के वरद हस्त से पदवी आदि प्राप्त करने के लिए बड़े-

विद्वान मुनि भी आतुर रहे हैं । दो साल पहले सुरतमें पूज्यश्री की खास निश्रा प्राप्त करने के लिए ही मुनिश्री अजितशेखरविजयजीने मुहूर्त इत्यादि भी गौण किया था । मुनिश्री अजितशेखरविजयजी की पंन्यास-पदवी पूज्यश्री के हाथों सुरतमें हुई थी । इसके लिए तीन बार मुहूर्त बदलाये थे । चाहे जो मुहूर्त आये लेकिन पूज्यश्री की निश्रा मिले, यही मेरे लिए मुख्य हैं । पद-ग्रहण करनेवाले ज्योतिष आदिमें विद्वान मुनिश्री की ऐसी श्रद्धा थी । ऐसे श्रद्धेय गुरुदेवश्री की मंगलनिश्रा हमें मिल रही हैं, वह हमारा बड़ा सद्भाग्य हैं ।

यह पद-प्रदान हो रहा हैं उस प्रसंग पर मैं तो मात्र इतना ही कहूंगा : मैं इस पद के लिए योग्य बनूं, पदसे होते मद से दूर रहूं । श्री जिनशासन की यत्किंचित् भी सेवा करके धन्य बनूं - इतना ही मनोरथ हैं ।

बचपनमें हममें संस्कार देनेवाले संसारी मातुश्री भमीबेन इस अवसर पर याद आये बिना नहीं रहते हैं । दीक्षा के बाद नित्य योगक्षेम करनेवाले पूज्य दोनों गुरुवर्य तथा विद्यागुरु पू.पं.श्री कल्पतरुविजयजी म. को कैसे भूल सकते हैं ? हमारे सहाध्यायी पू.पं.श्री कीर्तिचंद्रविजयजी, पू. कुमुदचंद्रविजयजी, पू. पूर्णचंद्रविजयजी को भी कैसे भूल सकता हूं ?

मेरी प्रेरणा से बालवयमें मेरे साथ दीक्षित बननेवाले गणिश्री मुनिचंद्र वि. का हर कार्यमें मुझे पूरा साथ-सहकार मिला हैं ।

इस प्रसंग पर मैं सबका कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करता हूं ।

इस पद के लिए मैं योग्य बनूं-ऐसी चतुर्विध संघ समक्ष याचना करता हूं ।

नूतन गणिश्री तीर्थभद्रविजयजी :

अनंत सिद्ध भगवान को तथा जिन्हें गुरुमैया कह सकूं ऐसे पूज्य आचार्य भगवंत को नमस्कार करके, सर्व गुरु-भाईओं को नमस्कार करके जो कुछ अंतर की बात हैं वह दो ही शब्दमें व्यक्त करनी हैं ।

आज के शुभ दिन पूज्य गुरु भगवंतने जिस पद का दान किया हैं, उस प्रसंग पर याद आते हैं : भगवान महावीरस्वामी और गौतमस्वामी । मदसे धमधमते इन्द्रभूति को भगवान महावीर

के दर्शन होते ही प्रभु-करुणा के धोध से उनके दर्पका नाश हुआ । भगवानने दर्पका नाश कर गणधर-पद दिया ।

आजके दिन यही विनंती हैं । मेरे जीवनमें जो दर्प हैं, शरीर, नाम या रूप का जो दर्प हैं, उसका आप नाश करो । उसके बाद ही सच्चा पद मिलेगा । आज तो मात्र आरोप किया हैं ।

वास्तवमें हमें मिला नहीं हैं, मात्र आरोप हैं । उदार लक्षपति सेठ अपने गरीब दास को लाख रूपये की लोन दे और वह गरीब दास अगर खुद को लक्षपति माने तो हास्यास्पद हैं ।

आरोप किया हैं, वैसे गुणों को हम प्राप्त कर सकें, लोन को व्याजसहित वापस दे सकें, ऐसे गुण आये यही शुभेच्छा हैं ।

पूज्य गुरुमैया पूज्य आचार्य भगवंत, पूज्य कलाप्रभसूरिजी, पूज्य पंन्यास कल्पतरुविजयजी महाराज, पूज्य पंन्यास कीर्तिचंद्रविजयजी महाराज आदि सर्व गुरु भाईओंने मेरे जीवनमें जो कमी थी उसकी पूर्ति की हैं ।

संसारमें माता-पिता इत्यादि के उपकारों को याद करता हूं । उनके ही संस्कारों के प्रभावसे ऐसा समुदाय और ऐसा शासन मिला हैं ।

इन सबका ऋण अदा करने के लिए शक्तिमान बनूं, यही अभ्यर्थना हैं ।

नूतन गणिश्री विमलप्रभविजयजी :

जिसका वर्णन श्री सीमंधरस्वामीने किया ऐसे इस अनंत सिद्धों के निवासरूप सिद्धक्षेत्रमें, पूज्य गुरुदेव जैसों की निश्रामें ऐतिहासिक चातुर्मास प्रसंग पर १४-१४ दीक्षा प्रसंग और ३-३ पदवी प्रसंग का आयोजन हुआ हैं । हर तीर्थंकर खुद के शिष्यों को गणधर-पद पर स्थापित करते ही हैं । सुधर्मास्वामीसे दुप्पसहसूरि तक यह परंपरा चालु रहेगी ।

हमारा सद्भाग्य हैं : भगवान महावीर की ७७वी पाट पर हमें ऐसे गुरुदेव मिले हैं ।

इस पद के लिए दावा या अधिकार नहीं हो सकता । गुरु को योग्य लगे उसे योग्य पद दे सकते हैं ।

राव बहादुर, जे. पी. इत्यादि पदवियां देकर अंग्रेजोंने लोगों

को ठगने की कार्यवाही शुरु की थी । क्योंकि बड़े राजाओं को हाथमें लेने थे न ?

ऐसी पदवीयां यहाँ नहीं हैं । ये तो लोकोत्तर पदवीयां हैं । मुझे यह पदवी मिल रही हैं, लेकिन मैं कोई इसके लिए लायक नहीं हूं, लेकिन मैं लायक बनूं – ऐसी अपेक्षा रखता हूं ।

जड़ पत्थरमें भी आरोपण करने से देवत्व आता हो तो चेतनमें योग्यता क्यों नहीं प्रकट सके ?

पूज्यश्रीमें जो निःस्पृहता देखी वह कहीं देखने नहीं मिली हैं । प्रतिष्ठा, अंजनशलाका इत्यादिमें कभी शिलालेख के लिए पूज्यश्रीने इच्छा रखी हो – ऐसा जाना नहीं हैं । मद्रासमें दी जाती 'फलोदी-रत्न' पदवी को भी पूज्यश्रीने ठुकराइ थी ।

नाम और रूपसे स्वयं पर होने पर भी इनके नाम और रूप का कितना प्रभाव हैं ।

ऊटीसे मैसूर मैं आ रहा था । रास्तेमें तीन जंगली हाथी बैठे थे । वह जंगल बंडीपुर का था । मार्गमें पूज्यश्री की प्रतिकृति के दर्शन मात्र से विघ्न मिट गया । हाथी रवाना हो गये ।

राम के नाम पत्थर तैरते हैं... पत्थर जैसे हम 'कलापूर्ण' के नाम से तैर रहे हैं । महादेव के कारण बैल पूजा जाता हैं उसी तरह हम पूजे जा रहे हैं ।

इनके नामकी पुस्तकें बहुत-बहुत बिकती हैं । वह पुस्तक फिर दक्षिणकी सफरें या 'कहे कलापूर्णसूरि' पुस्तक हो । 'कहे कलापूर्णसूरि' पुस्तक की तो दो-दो आवृत्तियां खतम हो गई, अभी और मांग चालू हैं... उसमें पूज्यश्री का ही प्रभाव हैं ।

पूज्यश्रीने कभी कोई अपेक्षा नहीं रखी हैं । किसी भक्त के पास भी धर्म के अलावा दूसरी कोई बात करते नहीं हैं ।

इनकी अप्रमत्तता, उपयोगपूर्वक की इरियावहियं इत्यादि क्रियाएं, रजोहरण से प्रमार्जन करना, निरुत्सुकता (किसी प्रोग्राममें देखने जाये ऐसी उत्सुकता नहीं) इत्यादि अनेक नेत्र-दीपक गुण हैं ।

इसके साथ माता-पिता के उपकारों को भी कैसे भूल सकता हूं ? संसारी-पिताश्रीने पढाई के लिए मद्रास भेजा । दूसरे वर्ष संसारी बहन के वहाँ रहना हुआ, और पाठशाला के प्रभाव से धर्म-

संस्कार मिले । वहां से सद्भाग्य से भद्रेश्वर आया । वहाँ पूज्यश्री के संसारी श्वसुर पूज्य कमलविजयजी महाराज मिले । तंदुल मत्स्य की उन्होंने बात की । उनके साथ छसरा आया । दो प्रतिक्रमण का अभ्यास किया ।

उस समय पूज्यश्री का अंजारमें चातुर्मास हुआ । उसके बाद तो विहारमें भी साथ रहा । ७ वर्ष तक पूज्यश्री के साथ रहा ।

२० साल पहले यहीं के चातुर्मास के समय मेरे संसारी पिताश्रीने रसोड़ा खोला था । उसके बाद पूज्यश्रीने संयम-दान देकर आगमों का दान किया ।

पूज्य कलाप्रसूरिजी, पूज्य पंन्यास कल्पतरुविजयजी, पूज्य पंन्यास कीर्तिचंद्रविजयजी इत्यादि सबका मुझ पर उपकार हैं । पूज्य गणिश्री मुक्तिचंद्रविजयजीने योगोद्वहन की क्रियाएं कराइ । कभी आधी रात को भी क्रियाएं कराइ । उनका उपकार कैसे भूल सकता हूं ? पूज्य गणिश्री पूर्णचंद्रविजयजी, पूज्य गणि मुनिचंद्रविजयजी के पास मैंने अभ्यास किया हैं ।

(पूज्य आचार्यश्रीकी निश्रामें चलती सात ९९ यात्राओं का भार पूज्य पं. मुक्तिचंद्रविजयजी आदि पर डालकर मृग. शु. ६ की सुबह पूज्य आचार्यश्री पालीताणा से अहमदाबाद की तरफ ९९ वर्षीय पूज्य आचार्य श्री विजयभद्रंकरसूरीश्वरजी के वंदनार्थ विहार कर रहे थे तब समाचार मिले : आज ही पूज्य भद्रंकरसूरीश्वरजी महाराज कालधर्म पाये हैं ।)

⌘ ⌘ ⌘

आत्म-अवलंबन कैसे किया जाय !

पूज्यश्री : प्रथम परमात्मा को समर्पित होकर उनका अवलंबन लें । उनके गुणोंमें तादात्म्य होने से 'मैं कुछ हूं' इत्यादि अहंकाररूप विकल्परहित हो सकते हैं । ऐसा शुद्ध परिणाम आत्मा का अवलंबन हैं । ज्ञानस्वरूप ऐसे आत्मा की यह दशा ही समभाव हैं ।

- सुनंदाबहन वोरा

गृहस्थावस्था में पूज्यश्री, वि.सं. २०१०, फलोदी

पूज्यपाद आचार्यदेव
श्रीमद् विजयकलापूर्णसूरीश्वरजी का
जीवन - दर्शन

बडभागी राजस्थान :

'राजस्थान' शब्द सुनते ही मन आनंद से छलक उठता हैं । जिस देशमें विजयसेनसूरिजी जैसे महान जैनाचार्य, राणा प्रताप और दुर्गादास राठोड़ जैसे महान शूरवीर, भामाशाह और धरणाशाह जैसे महान दानवीर धनाढ्य, महायोगी आनंदघनजी तथा मीरांबाई जैसे भक्त आत्माएं पैदा हुई हैं वह राजस्थान सचमुच रत्नभूमि हैं । इसका नाम लेते ही कौन-सा राजस्थानी गौरव का अनुभव नहीं करता ? सिर्फ राजस्थानी ही नहीं, परंतु अन्य प्रांतीय लोग भी भक्तिभाव से जिनके चरणोंमें झुक पड़े ऐसी अगणित महान आत्माएं राजस्थान की धरती पर पैदा हो गई हैं ।

राजस्थान की सैंकड़ों पद्मिनीओंने जौहर कर खुद के सतीत्व का दीपक अखंड जलता रखा हैं । सैंकड़ो राजपूतोने देशरक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान दिया हैं । सैंकड़ों दानवीर धनाढ्योंने प्रजा के कल्याण के लिए खुद के धन-भंडारों को खुले रख दिये हैं ।

आज भी राजस्थान की प्रजा साहसिकोंमें अग्रणी हैं । भारत के कोने-कोनेमें राजस्थानी फैल गये हैं । शायद ही कोई ऐसा प्रांत होगा जहाँ राजस्थानी बच्चा न हों ।

समृद्ध फलोदी नगरी :

ऐसी महान धरती के एक संत की बात आज हमें जाननी हैं ।

राजस्थान की पुरातन राजधानी जोधपुर से ८० मील दूर फलोदी नाम का मनोहर नगर हैं ।

१७ जितने नयनरम्य जिनालय... ! उसमें भी पार्श्वनाथ भगवान के मंदिरमें नीलवर्णी, मनमोहक, शांत मुद्रायुक्त श्री पार्श्वनाथ भगवाननी प्रतिमा... ! अनेक रमणीय धर्मस्थान...! १००० से भी ज्यादा जैनों के घर !

ऐसी अनेक विशेषताओं से फलोदी शोभ रहा था, यद्यपि आज तो जैनों के घर बहुत कम हो गये हैं । व्यवसायार्थ मद्रास, मुंबई, रायपुर, पनरोटी, सोलापुर इत्यादि अनेक शहेरोंमें फलोदी निवासी जा बसे हैं ।

दादा लक्ष्मीचंदभाई :

आज से (वि.सं. २०४४) १०० से भी ज्यादा वर्षों पहले फलोदीमें लुक्कड़ परिवार के एक सेठ बसते थे । नाम था लक्ष्मीचंद ।

लक्ष्मीचंदभाई के तीन पुत्र : (१) पाबुदान, (२) अमरचंद, (३) लालचंद ।

तीनों भाईओं की प्रकृति अलग अलग...! **कुदरत सचमुच बहुत ही विचित्र हैं । उसने एक ही हाथमें पांचों अंगुली भी एक समान नहीं रखी ।** बड़े भाई पाबुदानभाई स्वभाव से सरल, शांत, धर्मनिष्ठ और उदात्त मनवाले थे । बीचके अमरचंदभाई व्यवहारकुशल थे । व्यवहार की प्रत्येक उलझन को अपनी विशिष्ट प्रतिभा से एकक्षणमें सुलझाते थे । छोटेभाई लालचंद खेल-कूद के शौकीन और थोड़े मनमोजी भी थे ।

तीनों की अलग-अलग शक्तियां एक-दूसरे को पूरक बनती थी और लक्ष्मीचंदभाई का परिवार सुखपूर्वक चल रहा था ।

लक्ष्मीचंदभाई मात्र नामसे ही लक्ष्मीचंद नहीं थे, लक्ष्मीदेवी की कृपा भी उनके उपर ठीक-ठीक थी । वे स्वभाव से उदार, कडक, बुद्धिशाली तथा कर्मठ होने के कारण सबसे विशिष्ट प्रतीत होते थे ।

उनके धर्मपत्नी शेरबाई भी ऐसे ही, नाम के मुताबिक गुणवाले थे । उनका शौर्य शेर-सिंह जैसा था । स्त्री-सहज भय उनकी रगमें भी नहीं था । पूरे गांवमें उनका प्रभाव था । बड़े-बड़े लोग भी उनकी सलाह लेने आते ।

वे जितने निर्भय थे उतने ही परोपकारी भी थे । आस-पास कोई बिमार हो तो दवा करने दौड़ जाते थे । घर का उपचार और औषधि की जानकारी भी जोरदार थी ।

लक्ष्मीचंदभाई के पुत्र पांबुदान और उनकी धर्मपत्नी खमाबाई ।

खमाबाई भी पाबुदान जैसे ही प्रकृति से भद्रिक, सरल, शांत और धर्म की रुचिवाले थे । (पूज्य आचार्यश्री बहुत बार कहते थे कि मेरी मां खमाबाई मुक्तिचंद्रविजयजी की मां भमीबेन जैसीही थी - आकृति और प्रकृति से मिलती-जुलती ।) फलतः उनके पूरे कुटुंबमें धर्म के संस्कार छा गये थे । पाबुदानभाई की संतानश्रेणिमें ३ पुत्र तो अल्पायुषी थे । थोड़ा समय जीकर मृत्यु पाये । पुत्रियोंमें चंपाबाई तथा छोटीबाई जीवित रहे ।

अक्षयराज का जन्म :

तीन पुत्रों की मृत्यु के बाद खमाबाई की कुक्षि से वि.सं. १९८०, वै.सु. २, शाम ५.३० बजे एक तेजस्वी पुत्ररत्न का जन्म हुआ । जिसका नाम रखा गया : **अक्षयराज** । सचमुच इस आत्मा का जन्म अक्षयराज्य (मोक्ष-पद) की साधना के लिए ही हुआ था । लेकिन यह बुआने कैसे जान लिया होगा ?

अक्षयराज, सचमुच बचपन से ही अद्‌भुत था । इसका आंतरिक व्यक्तित्व तो ओजस्वी था, लेकिन बाह्य व्यक्तित्व भी इतना ही हृदयग्राही था । गुलाब की कली जैसा हंसता-खीलता मुख-कमल, शांत-प्रशांत और मधुर वाणी... पासमें आते ही इसका व्यक्तित्व लोगों को आकर्षित करता था ।

४-५ वर्ष की उम्रमें अक्षय गांवमें चलती स्कूल (जिसे मारवाड़में 'गुरोशारी शाल' कही जाती हैं) में पढने गया । अंक, बारह-अक्षरी, गणित, लेखन इत्यादि के अभ्यासमें आगे बढने लगा । बुद्धि की पटुता और शांत स्वभाव से वह सब विद्यार्थीओंमें अलग प्रतीत होता था ।

मामा माणेकचंदभाई के साथ हैद्राबादमें अक्षय :

अक्षयराज के मामा माणेकचंदभाई अत्यंत धर्मिष्ठ और वात्सल्यवंत थे । अक्षयराज के प्रति उन्हें बहुत ही प्रेम था । अक्षय के मोहक व्यक्तित्व और प्रज्ञा-पाटव से फीदा हुए मामा माणेकचंद अक्षय को हैद्राबाद ले गये, जहाँ व्यवसाय के लिए खुद रहते थे । तब अक्षय की उम्र आठ साल की थी । अक्षय की माता धर्मिष्ठ थी उसी तरह मामा भी धर्म से रंगे हुए थे । अतः माता द्वारा मिले हुए धर्म-संस्कार मामा द्वारा पुष्ट हुए । अतः प्रभुदर्शन, नवकारसी, तिविहार, नवकार मंत्र का स्मरण आदि प्राथमिक नियमों का पालन उसमें सहजता से आ गये ।

मामा का अपार वात्सल्य :

अक्षय पर मामा के चार हाथ थे । उनकी चकोर नजरने छोटे से अक्षयमें छिपा हुआ विराट व्यक्तित्व देख लिया था । इसलिए ही अक्षयमें व्यावहारिक या धार्मिक... किसी भी शिक्षण की कमी न रहे इसका पूरा ध्यान रखते थे ।

मामा के अपार वात्सल्य के साथ व्यावहारिक शिक्षण के साथ धार्मिक अभ्यास भी वह करने लगा ।

चैत्यवंदन, सामायिक, प्रतिक्रमण के सूत्र, भक्तामर इत्यादि मामा स्वयं उसे सीखाते थे । स्वयं प्रतिक्रमण करने बैठते तब अक्षय को भी साथ बिठाते और उसके पास सकलतीर्थ इत्यादि सूत्र बुलाते । छोटे बालककी मीठी-मीठी वाणी सुनते मामा आनंद से भर जाते थे । अक्षयराज के जीवनबाग के लिए मामा सचमुच एक माली का काम कर रहे थे । छोटे से बीजमें छुपा हुआ विराट वटवृक्ष माली से अज्ञात कैसे रह सकता हैं ?

अक्षय का वापस फलोदी आगमन :

इस तरह मामा के साथ आनंदपूर्वक समय गुजर रहा था । मुश्किल से १२ महिने हुए होंगे और वहां (हैद्राबादमें) प्लेग की भयंकर बिमारी फैल गई । एक के बाद एक मौत होने लगी । ये समाचार सुनते ही फलोदीमें रहे हुए माता-पिता अत्यंत चिंतित हुए । वैसे भी माता का मन हंमेशा पुत्र को याद करनेमें लगा रहता हैं । बिमारी के ऐसे समाचार सुनकर कौनसी माता को चिंता

नहीं होती ? चिंतातुर हुई माताने अपने प्राणप्यारे इकलौते पुत्र को तुरंत फलोदी बुला लिया ।

विनयमूर्ति अक्षय :

अब अक्षय का शिक्षण पुनः फलोदीमें शुरु हुआ । एक देशी स्कूलमें पढने बैठा । नम्रता की जीवंतमूर्ति समान अक्षय शिक्षक को देखते ही देखते अति प्रिय बन गया । अक्षय के साथ शिक्षक का इतने प्रेम का घना संबंध हुआ कि अक्षय को शिक्षक के बिना चले किंतु शिक्षक को अक्षय के बिना नहीं चलता । शिक्षक के अक्षय पर चार हाथ थे । **सामान्य लोगों की ऐसी मान्यता हैं कि शिक्षक बुद्धिशाली पर कृपावृष्टि करते हैं । परंतु ऐसी बात सत्य नहीं हैं । अगर सच्ची हो तो भी संपूर्ण सत्य नहीं हैं । सत्य हकीकत तो यह हैं कि शिक्षक हमेशा नम्र और विनीत विद्यार्थी पर ही कृपावृष्टि करते हैं । अथवा ऐसा कहो कि उनकी अनिच्छा से भी कृपा बरस जाती हैं और वह विनीत विद्यार्थी बुद्धिशाली हो तो फिर पूछना ही क्या ? अक्षय विनीत होने के साथ बुद्धिशाली भी था । उसका ज्ञान विनय से शोभ उठा । मानो सोनेमें सुगंध प्रकट हुई । शंखमें दूध डाला गया ।**

नम्रतायुक्त अक्षय की बुद्धि देखकर शिक्षक एकदम प्रसन्न हुए और अक्षय को तीसरी कक्षा से पांचवीं कक्षामें बिठा दिया ।

जीवनमें झड़प से आगे कौन बढ़ सकता हैं ? बुद्धिशाली आगे बढ़ जाता हैं ऐसा मानते हो ? गलत बात हैं । नम्रतारहित बुद्धिशाली आदमी आगे बढता दिखे वह भ्रमणा हैं, उसी तरह बुद्धिरहित नम्र आदमी पीछे पड़ता दिखे वह भी भ्रमणा हैं । बाह्य दृष्टि से भले पीछे दिखे लेकिन वह थोड़ी भी प्रगति करता हैं वह मजबूत होती हैं, पतन की शंका से रहित होती हैं ।

नम्रतायुक्त बुद्धिशाली जो प्रगति करता हैं वह अजबगजब की होती हैं । दूसरे लोग देखते ही रह जाये और वह सड़सड़ाट विकास के सोपान चढता ही जाता हैं ।

जिस पर शिक्षक (गुरु) की कृपा उतरी हो वह जीवनमें कभी हारता नहीं हैं, उसका कभी पतन नहीं होता ।

शिक्षकने अक्षय को तीसरी कक्षा से पांचवी कक्षामें बिठाया वह बहुत ही संकेतभरी घटना हैं । यह घटना मानो अक्षय को कह रही थी : 'ओ अक्षय ! भावि जीवनमें तुझे इसी तरह सड़सड़ाट आगे बढना हैं । भाविके गुरु तुझे इसी तरह उन्नत आसन पर बिठाते रहेंगे ।'

शिक्षक के खुद के चार हाथ होने पर भी अक्षय कभी सहपाठी विद्यार्थीओं के साथ उद्धत वर्तन नहीं करता था । 'मैं ऊंचा हूं । अब मुझे कौन कहनेवाला ? शिक्षक तो मेरे हाथमें ही हैं ।' ऐसा विचारकर सामान्य विद्यार्थी बहक जाता हैं, उच्छृंखल बन जाता हैं, शिक्षक को हाथमें रखकर दूसरों पर जुल्म मचाने लग जाता हैं, लेकिन अक्षय ऐसा नहीं था । वह तो ज्यादा से ज्यादा नम्र बनता जा रहा था । बराबर उस आम्र-वृक्ष की तरह, जो फल आते ही नीचे झुक जाता हैं ।

अक्षय की ऐसी नम्रता देखकर शिक्षक ज्यादा से ज्यादा उस पर प्रसन्न रहने लगे । उनका अंतर पुकार रहा था : **'अक्षय अवश्य आगे बढेगा और सर्व को प्रिय बनेगा । क्योंकि आगे वही बढता हैं, जो उच्चता प्राप्त करने पर भी बहकता नहीं हैं, दूसरों को नीचा दिखाता नहीं हैं ।'**

इस प्रकार प्रारंभ से ही अक्षय अति विनीत था । बुद्धि के प्रमाणमें उसमें विनय की मात्रा जोरदार थी ।

करुणामूर्ति अक्षय की विचारणा :

अक्षय अब धीरे-धीरे बड़ा हो रहा था । उसके विचारों को पंख निकल रहे थे । उसका हृदय, उसका मन और विचार स्वभावसे ही कोमल थे । जब जब वह कोई घटना देखता तब अपने अलग दृष्टिकोण से उसका मूल्यांकन करता । हृदय कोमल होने से किसी का भी दुःख देख नहीं सकता था । **किसी को दुःख से ग्रस्त देखकर हृदयमें झटके लगते । दूसरे का हाथ कटा हुआ देखता दो ऐसा गहरा संवेदन होता कि मानो मेरा ही हाथ कट गया हैं, मुझ पर ही दुःख आ पड़ा हैं । ऐसी गहरी संवेदनशीलता के कारण उसमें ज्यादा से ज्यादा दयाभाव / करुणाभाव विकसित होता गया । उसकी गहरी संवेदनशीलता मात्र मानव-जगत या पशु-जगत तक ही**

सीमित नहीं थी । वह पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु आदिमें भी चैतन्य देखता । उसकी हत्यामें भी वेदना का अनुभव करता । क्योंकि जानता था कि पृथ्वी आदिमें भी चैतन्य होता हैं ।

जब वह मकान निर्माण कार्य के आरंभ-समारंभोंमें रगड़ते चूने को देखता, कुम्हार की भट्टीमें मरते जीवों को देखता, चक्की, कुम्हार का भट्ठा इत्यादिमें होती हिंसा को देखता तब उसका हृदय द्रवित हो उठता, उसका मन बोलने लगता : **अरेरे, पांच-पच्चीस साल की जिंदगी के लिए आदमी कितने आरंभ-समारंभोंमें डूबा रहता हैं ? कितने जीवों की निरर्थक कतल करता हैं ? कितने पापों का उपार्जन करता हैं ? थोड़े पैसे के लिए, थोडी-सी जिंदगी के लिए इतने सारे पाप ? कमाया हुआ धन, बनाये हुए बंगले, पाला हुआ परिवार - सब कुछ यहीं रखकर जाना और कमाये हुए पापों को साथ लेकर जाना - उसके फलस्वरूप नरक - निगोद के कातिल दुःखों को सहन करने - ऐसी मूर्खता कौन-सा समझदार आदमी करेगा ?**

छोटे-से अक्षयमें कितनी उन्नत विचारणा ? कोमल हृदय के बिना ऐसी विचारणा असंभव हैं ।

मात्र उसका मन ही नहीं, उसका तन भी कोमल था । इसलिए गली के लोग तथा स्नेहीजन उसे 'माखणीयो' कह कर बुलाते ।

कहानी सुनता अक्षय :

फलोदीमें एक बड़ी उम्र के धार्मिक वृत्तिवाले बहन रहते थे, जिनका नाम था : मोड़ीबाई । **(गुजराती - प्रथम आवृत्तिमें तथा समाजध्वनि आदि में मणिबेन छप गया हैं - वह गलत हैं ।)** उनका कंठ मधुर और धार्मिक ज्ञान भी अच्छा । वे रास, सज्झाय, ढाल, चरित्र इत्यादि गाते, पढते और समझाते । गली के लोग साथ मिलकर उमंग-उत्साह से सुनने आते, जिसमें यह अक्षय भी जाता। उसे इन महापुरुषों की जीवन-कथा सुननेमें अपूर्व आनंद आता और उन घटनाओंमें से प्रेरणा मिलती । शालिभद्र, धन्नाजी, गजसुकुमाल, मेतार्यमुनि, जंबूस्वामी इत्यादि की कथाएं सुनते अक्षय को भी विचार आते : 'मैं कब ऐसा बनूंगा ? कब संसार को छोड़कर जैनशासन का अणगार बनूंगा ?

अक्षय के फूटते विचार-झरण को मोड़ीबाई की इन कथाओं द्वारा वेग मिलता ।

अक्षय का मुख्य आनंद :

अक्षय का जीवन बचपनसे ही सादा, संयमी और प्रभु-प्रेमी था ।

न कोई खान-पान की लालसा...।

न कुछ पहनने-ओढने का पागलपन...।

न किसी खेल-कुद की आसक्ति...।

न बहुत बोलने का बावलापन...।

अक्षय बहुत ही कम-आवश्यक शब्द-ही बोलता ।

तो क्या अक्षय का जीवन नीरस था ? नहीं... उसका जीवन थोड़ा भी नीरस नहीं था, लेकिन रसपूर्ण था । किंतु उसे रस था परमात्मा पर ।

परमात्मा के रस को छोड़कर शेष सर्व रस उसके मन फीके थे । बचपन से ही उसकी चेतना ऊर्ध्वगामिनी थी । ऊंचे जाने, परमात्मा को प्राप्त करने के लिए तड़प रही थी । जिसे शिखर पर आरोहण करना हो वह घाटी के अंधकारमें क्यों पड़ा रहेगा ? प्रकाश से झगझगाते प्रदेश की ओर जाने की इच्छावाला अंधेरेमें क्यों लोटेगा ? परमात्मा की अमृत-सृष्टि की ओर जाने का इच्छुक, विनाशी और इन विषभरे पदार्थोंमें रस कैसे रखेगा ?

बचपन से ही अक्षय को परमात्मा की लगनी थी ।

अक्षय फिर हैद्राबादमें...

वत्सल मामा द्वारा तालीम :

इस तरफ मामा माणेकचंद अक्षय को भूले नहीं थे । अक्षय हैद्राबाद छोड़कर भले फलोदी चला गया, परंतु मामा के मन से हटा नहीं था । अक्षय का स्वभाव ही इतना शांत, सरल और नम्र था कि जिसके हृदयमें एक बार बस जाता वह कभी उसे भूलता नहीं । दूसरे भी नहीं भूलते तो मामा कैसे भूलेंगे ?

तीन वर्ष के बाद फिर १३ वर्ष के अक्षय को हैद्राबाद बुला लिया ।

वहाँ मामा के साथ अक्षय दुकानमें बैठता । दूसरे भी हर

कार्योंमें मामा को सहयोग देता । पूजा, प्रतिक्रमण आदि धार्मिक क्रियाकांड उनके साथ ही करता । इस तरह ढाई साल तक वात्सल्यवंत मामा द्वारा अक्षय को धार्मिक क्रियाकांड तथा व्यापार क्षेत्रमें तालीम मिलती रही ।

सगाई और लग्न :

वि.सं. १९९६में अक्षय फिरसे माता-पिता की सेवामें फलोदी आया तब माता-पिताने फलोदी गांव के एक धर्मिष्ठ और सुखी कुटुंबवाले मिश्रीमलजी बैद की सुपुत्री रतनबहन के साथ अक्षय की सगाई की, तब उसकी उम्र १६ साल की थी । माघ महिनेमें (माघ सु. ५) अक्षय के विवाह हुए और वैशाखमें मामा माणेकचंदभाई (हैद्राबादमें) गुजर गये । अक्षयमें धार्मिक - व्यावहारिक संस्कारों के सिंचन से स्वयं का जीवन-कार्य समाप्त हुआ जानकर मानो उन्होंने अपनी जीवन-लीला समेट दी ।

मामा अक्षय को बहुत ही तैयार हुआ देखना चाहते थे । काश ! अगर वे ज्यादा जीये होते ! तो वे देख सकते कि **यह अक्षय लग्न की दिवारोंमें बंद रहनेवाला कैदी नहीं हैं लेकिन अध्यात्म-गगनमें उडनेवाला गरुड हैं । लेकिन विधि विचित्र हैं ।** उसका किया हुआ स्वीकारना ही पड़ता हैं ।

शादी के बंधन से बंध गये होने पर भी अक्षयराजने कभी धार्मिक भावना नहीं छोड़ी । अरे, लग्न के दिनोंमें भी उसने कभी रात्रिभोजन नहीं किया । मारवाड़ीओं की शादी मतलब मौज-मजा के फव्वारे ! इसमें धार्मिक नियमों को टिका रखना सत्त्वहीन लोगों का काम नहीं हैं ।

अक्षय का पठन-रस :

अक्षय को पढने का अति रस था । उसे पूर्ण करने के लिए धार्मिक साहित्य को पढना कभी चूकता नहीं था ।

'जिनवाणी' (दिगंबरों की ओर से प्रकाशित होता हिन्दी सामयिक, जिसमें धार्मिक कथा, चिंतन आदि आता था ।) तथा काशीनाथ शास्त्री की धार्मिक कथाएं तथा दूसरे भक्तिप्रधान पुस्तकें इत्यादि साहित्य, उसके वांचन का विषय था । हलके साहित्य, तुच्छ नवलकथाएं, डीटेक्टीव उपन्यास इत्यादि वह पढता तो नहीं

था, परंतु स्पर्श भी नहीं करता था । **हलके साहित्य को पढना वह ज़हर पीने के समान मानता था ।**

बीभत्स साहित्य से बीभत्स विचारों की उत्पत्ति होती हैं । और उससे आचार भी उसी प्रकार का बनता हैं । आचार का बीज विचार हैं । जिसने स्वयं के हृदय-क्षेत्रमें शुभ विचारों के बीज बोये हैं वह अवश्य शुभ आचारों की फसल काटेगा । जो शुभ-आचारों का स्वामी बनेगा वह अक्षयराज ज़हर के प्याले समान खराब पुस्तकों का स्पर्श कैसे कर सकता हैं ?

अक्षय को एक बात पर पक्का भरोसा था : सर्वत्र ज्ञानरूप से प्रभु विलस रहे हैं । जगत के कोने-कोनेमें भगवान की ज्ञान-दृष्टि पड़ रही हैं । एक भी अपवित्र विचार कैसे हो सकता हैं ? इसे पैदा करनेवाले साहित्य का स्पर्श हो ही कैसे सकता हैं ? अक्षय दिमाग का कोना-कोना साफ कर पवित्र विचारों से भरने का प्रयत्न कर रहा था । वह जानता था, किया हुआ कोई भी शुभाशुभ विचार अपने संस्कारों को छोड़ता जाता हैं और जिंदगी को आकार देते जाता हैं । जिंदगी दूसरा क्या हैं ? विचारों की श्रेणि और उससे बनता आचार वही क्या जिंदगी नहीं हैं ?

प्रभुप्रेमी और संगीतप्रेमी अक्षय :

अक्षयराज को पठन के शौक के साथ संगीत का भी शौक था । संगीत के शौक का कारण था : प्रभु-भक्ति । **भक्ति से निरपेक्ष संगीत का शौक मारक हैं लेकिन भक्ति के लिए होता संगीत तारक हैं ।**

भक्ति की जमावट संगीत के कारण जोरदार होती हैं । अतः अक्षय स्नात्रपूजा, बड़ी पूजा, भक्ति भावना इत्यादि प्रसंगोंमें अवश्य जाता । वहाँ के संगीत मंडलमें स्वयं संगीत सीखता और स्तवन आदि गाने की प्रेक्टीस करता । उसका कण्ठ मधुर था इसलिए संगीत सीखते समय न लगा । थोड़े ही समयमें तो वह हार्मोनियम भी सीख गया । फिर स्वयं भी पूजा गाता, गवाता और दूसरे गायकों के साथ भी मिल-जुल जाता ।

अक्षय दररोज सुबह प्रभु-पूजा करता । २ से ३ घण्टे अत्यंत

शांति और भावोल्लासपूर्वक चैत्यवंदन आदि करता । कभी स्तवन गानेमें अति आनंद आता तो ज्यादा समय भी लग जाता ।

संगीत के ज्ञान की बाह्य-कला और भक्ति की आंतरकला से उसका जीवन समृद्ध बनने लगा ।

अक्षय के जीवनमें सबसे बड़ा रस कोई हो तो वह भक्ति का रस था । बहुत बार वह भगवान के पास घण्टों तक बैठा रहता... रोता... और प्रार्थना करता : **'ओ प्रभु दर्शन दो... दर्शन दो । कहाँ तक इस सेवक को पीड़ित करेंगे ? मुझे मेरे जीवनमें दूसरी कोई अपेक्षा नहीं हैं । एकबार तेरे दर्शन हो जाये तो मैं जीवन सफल मानूंगा ।'**

ऐसी प्रार्थनाओं से उसके जीवनमें पवित्रता का प्रपात बहने लगा । रात और दिन प्रभुको... मात्र प्रभुको ही याद करने लगा । प्रभु की विस्मृति को वह आत्महत्या समान मानने लगा । एक क्षण भी प्रभु-स्मरण रहित रह जाय वह उसे खंजर के घाव जैसी विषम लगने लगी । जिन प्रभु के उपकार से ये सारी सुंदर सामग्रीयां मिली हैं, उन प्रभु को भूल जाना उसके जैसी दूसरी कृतघ्नता कौन सी ?

प्रभु के दर्शन बिना नास्ता कर सकते हैं ? प्रभु की पूजा बिना खा सकते हैं ? प्रभु को याद किये बिना सो सकते हैं ? कदापि नहीं ।

उसका जीवन इतना प्रभुमय बन गया कि सुबह गांवमें रहे हुए मंदिर के दर्शन करने के बाद नवकारसीमें दूध पीकर गांव बाहर के मंदिरमें चला जाता और घण्टों वहाँ पसार करता । ११-१२ बजे के पहले वह कभी घर पर नहीं आता था ।

तो फिर धंधे आदिमें ध्यान देता या नहीं ? हां... वह धंधा करता था... लेकिन नाममात्र ही । जरूरत हो उतना ही, शायद जरूरत से भी कम ।

अक्षय व्यापारमें कम ध्यान देता और धर्ममें ज्यादा ध्यान देता वह मां को अच्छा नहीं लगा । पुत्र का धर्म और प्रभु-प्रेम देखकर वह अंतरसे अत्यंत खुश होती, परंतु उसे विचार आता कि मेरे अक्षय का धन के बिना क्या होगा ? आखिर मां का हृदय था ना ?

व्यवसाय के लिये माता की टकोर :

एक दिन दोपहर को भोजन के समय माताने अक्षय को कहा : 'बेटे ! इस तरह तुझे कहाँ तक रहना हैं ? तुझे भावि के लिए कोई विचार नहीं आता ?

समझदार को इशारा काफी हैं । माता की इस मार्मिक टकोर से अक्षयने व्यवसायार्थ परदेश जाने का निर्णय किया । पिता-चाचा इत्यादि की सलाह से मध्यप्रदेशमें रहे हुए 'राजनांद' गांवमें पहुंच गया ।

राजनांदगांवमें अक्षयराज :

इस छोटी और मेहंगी मानव-जिंदगीमें अक्षय को तो धर्म की ही कमाई करनी थी, किंतु व्यवहार के लिए धन भी चाहिए । इसलिए ही धनार्जनमें प्रवृत्त होने पर भी धर्म को भूला नहीं था ।

राजनांदगांवमें संपतलालभाई (जो फलोदी के ही थे ।) सेठ की पेढीमें काम करने के लिए अक्षय रह गया ।

अक्षय की धर्मनिष्ठा से सेठ अत्यंत खुश हुए । धर्मक्रियामें कोई विघ्न न आये उस तरह उन्होंने सुविधा कर दी ।

सेठ स्वयं धर्मी थे । इसलिए धर्मी अक्षय को देखकर प्रसन्न हुए... इतना ही नहीं और भी अक्षय धर्म-मार्ग पर आगे बढ़ता रहे वैसी प्रेरणा भी देते । रोज नवकारसी और तिविहार करते अक्षय को उन्होंने चौविहार के लिए प्रेरणा दी और रात्रिभोजनमें संपूर्णतया रोका ।

अक्षय की धर्मदृढता का एक प्रसंग :

अक्षय की धर्म-दृढता बताता एक प्रसंग बहुत जानने जैसा हैं ।

एक दिन दुकानमें बहुत काम था । कामकाजमें ही रात्रि के १२ बज गये । अक्षय को रोज प्रतिक्रमण करने का नियम । किंतु १२ बजे के बाद दैवसिक प्रतिक्रमण तो हो नहीं सकता । अब क्या करूं ? क्या सो जाऊं ? सामान्य आदमी तो ऐसा ही विचार करे कि चलो, आज वैसे भी प्रतिक्रमण हो नहीं सकेगा । सो जायें । गुरु के पास जाकर बादमें प्रायश्चित्त ले लेंगे । लेकिन अक्षयने ऐसा ढीला विचार नहीं करते सोचा : भले प्रतिक्रमण न हो सके, परंतु सामायिक तो हो सकेगी न ? सामायिक करके सोउं तो संतोष होगा कि आज का दिन बिलकुल धर्म की कमाई रहित नहीं गया ।

ऐसा विचारकर अक्षय सामायिक करने बैठा । कोनेमें बैठा हुआ अक्षय सेठ से छुपा न रहा । पूछा :

'क्यों अक्षय ! क्या कर रहा हैं ?'

'सामायिक ।'

'लेकिन आधी रात को ?'

'प्रतिदिन शाम को मुझे देवसिय प्रतिक्रमण का नियम हैं... आज बारह बज जाने से वह तो हो नहीं सकता, इसलिए सामायिक कर रहा हूं ।'

'अरेरे, तेरे नियम को मैं पूर्णतः भूल गया । किंतु अक्षय ! आज से तुझे कहता हूं कि दुकानमें चाहे जितना काम हो, फिर भी प्रतिक्रमण का समय होते ही तू निकल जाना । दुकान का काम तो होता रहेगा । मैं भले धर्म-क्रिया न कर सकूं, लेकिन तुझे अंतराय कहाँ दूं ?

इस प्रकार अक्षय को सेठ की तरफ से संपूर्ण अनुकूलता मिली । अक्षय से सेठ को संपूर्ण संतोष था । सेठजी मानते थे कि **जो आदमी खुद के धर्म को हृदय से वफादार हैं, वह आदमी खुद के सेठ को भी वफादार रहेगा । धर्म के प्रति जो बेवफा बने वह सेठ के प्रति वफादार रहे इस बातमें कोई दम नहीं ।**

राजनांदगांव के एक भव्य जिनालयमें श्री पार्श्वनाथ भगवान की श्यामवर्णी शांतरस बहाती मनोहर प्रतिमा हैं । उसकी पूजा और भक्तिमें अक्षयराज अत्यंत आनंदित होता । प्रतिदिन २ से २॥ घण्टे जितना समय पूजामें पसार होता । भगवान को देखकर अक्षय इतना पागल बन जाता कि खुद की जेबमें हो वे सब पैसे भंडारमें डाल देता ।

स्वतंत्र व्यवसाय करता अक्षय :

थोड़ा समय नौकरी करने के बाद सोने-चांदी का स्वतंत्र व्यवसाय शुरु किया । माता-पिता आदि को भी देशमें से यहाँ बुला लिया ।

सोने-चांदी के व्यवसायमें सफलता न मिलने पर कपड़े की दुकान शुरु की । उसमें धीरे-धीरे मास्टरी आने पर अच्छी सफलता मिल गई ।

अक्षयराज को धन की खास चिंता कभी करनी नहीं पड़ी । **उसे प्रभु पर पक्का भरोसा था । उनकी कृपा से सब कुछ बराबर हो रहा हैं और अवश्य होगा । यह उसका विश्वास विपत्ति के समय भी चलित नहीं होता था ।**

अक्षय का नित्यक्रम :

सुबह जल्दी उठकर अक्षयराज सामायिक और प्रतिक्रमण करते । प्रभु-दर्शन और नवकारसी कर पूजा करने जाते । २॥ घण्टे आनंदसे पूजा करके १० बजे दुकान जाते थे । उसके पहले ८.०० बजे पिताजी दुकान खोलकर बैठते ।

अक्षय का साधु-समागम :

एक बार राजनांदगांवमें पूज्य आचार्यश्री वल्लभसूरिजी के शिष्य मुनिश्री रूप वि.म. का चौमासा हुआ । उनके समागम और व्याख्यान-श्रवण से अक्षयराज की विराग-भावना को वेग मिला ।

पू. रूप वि.म. के पास 'जैन-प्रवचन' साप्ताहिक आता, जिसमें पूज्यपाद आचार्यश्री विजयरामचंद्रसूरीश्वरजी म.सा. के प्रवचन प्रकट होते थे । उस जैन-प्रवचन का पठन अक्षय को अत्यंत प्रिय लगा था । उसका प्रतिदिन पठन करने से अक्षयराज का संसार का अभिगम संपूर्ण बदल गया । **उसे संसार जलता घर, डरावना सागर और भयंकर जंगल सा लगने लगा । संसारमें नित्य भभकती विषय-कषायों की ज्वालाएं उसे साक्षात् दिखने लगी । संसार बुरा लगा । छोड़ने जैसा लगा, मोक्ष प्राप्त करने जैसा लगा और उसके लिए मुनि बने बिना दूसरा कोई मार्ग नहीं हैं-ऐसा लगने लगा ।** बचपनमें साधु बनने की भावनाएं अब जागृत होने लगी । वैराग्य दृढ बनने लगा ।

उसके बाद खरतर-गच्छीय मुनिवरश्री सुखसागरजी महाराज के चातुर्मास दौरान उनका परिचय हुआ । उन्होंने विरागी अक्षयराज को श्रीमद् देवचंद्रजी का साहित्य पढने और कण्ठस्थ करने की सलाह दी । देवचंद्रजी का साहित्य (चोवीसी इत्यादि) हाथमें आते ही अक्षयराज का भाग्य खुल गया । अध्यात्मलिप्सु अक्षयराज को लगा कि मैं जिसकी तलाश कर रहा हूं, वह मार्ग मुझे इसमें से ही मिलेगा और अध्यात्म-प्राप्ति की अदम्य तमन्ना के साथ पू. देवचंद्रजी

म. के स्तवनों की चोवीसी फटाफट कण्ठस्थ कर ली । भूखे ब्राह्मण को प्रिय लड्डु मिलने के बाद उसे खाते समय कितना ?

उसके बाद तो उनके साहित्यमें ज्यादा से ज्यादा आनंद आने लगा । उनके बनाये हुए ग्रंथ अध्यात्म-गीता, आगमसार इत्यादि पर चिंतन मनन करने लगा ।

भक्तियोग के साथ तत्त्वज्ञान का सुभग सुयोग होते अक्षयराज की आत्मिक विकासमें प्रगति होने लगी । कायोत्सर्ग और ध्यान की भी जिज्ञासा जगी । उस-उस विषय के योगशास्त्र आदि ग्रंथों का पठन करने के साथ प्रभु सन्मुख कायोत्सर्ग मुद्रामें एक घण्टे तक खड़े रहकर ध्यान का अभ्यास करने लगा ।

पू. आनंदघनजी, पू. देवचंद्रजी, पू.उ. यशोविजयजी - इन तीनों महापुरुषों की स्तवन चोवीशियां कण्ठस्थ कर प्रतिदिन प्रभु के सामने ३-४ स्तवन खूब ही उल्लासपूर्वक ललकारता । प्रभु के साथ एकमेक बन जाता और फिर कायोत्सर्गमें खड़े रहकर प्रभु-ध्यानमें लीन बन जाता ।

धर्मपत्नी रतनबहन :

अक्षयराज के धर्मपत्नी रतनबहन भी एक सुशील और संस्कारी स्त्री-रत्न थे । अपने माता-पिता द्वारा मिले धर्मसंस्कारों की वजह से स्वयं धर्म-प्रवृत्त रहते और अपने पतिदेव को भी संपूर्ण सहयोग देते । जीवनमें संतोष, सादगी, सेवा और समर्पण भाव के गुण सहज रूप से थे । सासु-श्वसुर को अपने माता-पिता तुल्य गिनकर उनकी सेवामें सदा तत्पर रहते । घर का काम करने के साथ वे भी प्रभु-दर्शन, सामायिक, प्रतिक्रमण, नवकारसी, चौविहार आदि धर्मक्रिया और नियमों के पालनमें उद्यत रहते ।

पुत्र-प्राप्ति :

अक्षयराज और रतनबहन को संतान के रूपमें प्रथम पुत्र ज्ञानचंद्र (जन्म संवत २०००) और द्वितीय पुत्र आसकरण (जन्म संवत् २००२) इन दो पुत्रों की प्राप्ति हुई ।

माता-पिता का परलोकगमन :

संवत् २००६में अक्षयराज के मातुश्री खमाबाई का स्वर्गवास हुआ और संवत् २००७में पिताश्री पाबुदानजी का भी स्वर्गवास हुआ ।

इस प्रकार मात्र एक ही वर्ष के अंतरमें घरमें से दोनों शिरच्छत्ररूप बुझुर्गों की विदाई होने से घर के ६ सभ्योंमें से ४ सभ्य हो गये।

इस प्रसंग से अक्षयराज के हृदयमें जोरदार झटका लगा : अनित्य-भावना से भरे हुए हृदय से वह विचारने लगा : **ओह ! संसार कितना अनित्य हैं । जिन्होंने मुझे जन्म दिया, जिनकी गोदमें मैंने अमृत पीया वे मेरे शिरच्छत्र देखते-देखते ही चले गये । कैसा क्षण भंगुर जीवन ! आदमी कुछ करे उसके पहले ही यमराज का बुलावा आ जाता हैं । मनुष्य सारी जिंदगी सुख की सामग्री अनेक पाप कर-करके एकत्रित करता हैं और आराम से उपभोग के लिए शांति से बैठने का विचारे उसके पहले तो बूढा हो जाता हैं । - और मौत का राक्षस एक साथ सब साफ कर डालता हैं...। किसीने १० लाख रूपये इकट्ठे किये या किसीने १० हजार इकट्ठे किये... परंतु मृत्यु के बाद क्या ? यहाँ की एक भी वस्तु परभवमें साथ चल नहीं सकती ।**

जिन्हें मैंने युवान होकर कूदाकूद करते देखे थे, उन जवांमर्दों को हाथमें लकड़ी लेकर चलते बूढे हो गये देख रहा हूं ।

जो बूढे थे उन्हें श्मसानमें सोते देख रहा हूं ।

जीवन तो नदी के प्रवाह की तरह तेजी से दौड़ रहा हैं । एक क्षण भी वह किसी के लिए रुकता नहीं । जीवन के वर्ष मानो हिरण की पूंछ पर बैठकर दौड़ रहे हैं । अभी तो मैं छोटा था । माता-पिता की गोद खौदंता था । आज युवान हूं । कल बूढा हो जाऊंगा । क्या यों ही जिंदगी पूरी हो जाएगी ?

धर्मरहित जिंदगीका क्या अर्थ हैं ? ऐसे तो कौए और कुत्ते भी कहाँ नहीं जीते ? वे भी क्या पेट नहीं भरते ? क्या खाना-पीना और मजा करना - यही जिंदगी हैं ? यदि ऐसा हो तो पशुओं को मनुष्य से श्रेष्ठ मानना पड़ेगा । मनुष्य की महिमा किस कारण से हैं ? सचमुच धर्म से ही मनुष्य मनुष्य बनता हैं, बड़भागी बनता हैं । जिसमें धर्म नहीं वह मनुष्य नहीं, परंतु पूंछ और सींग रहित पशु हैं पशु ! पशुता भरी जिंदगी अनेकबार जीये । अब इस जन्ममें तो ऐसा नहीं ही करना हैं । इस जन्ममें तो अवश्य दिव्यता प्रकट करनी ही हैं । यों ही

खाली हाथों यहाँ से नहीं जाना हैं । कुछ लेकर ही जाना हैं । मृत्यु के समय हृदयमें संतोष हो, आत्मा को तृप्ति हो, ऐसा कुछ करके ही जाना हैं ।

ब्रह्मचर्यव्रत धारण करता अक्षयराज :

इस तरह अक्षयराज के हृदयमें विचार का स्फुलिंग प्रज्वलित हुआ । उसने विचार को मात्र विचार के रूपमें न रखकर आचारमें ला दिया । उसी वर्ष (वि.सं. २००७) पूज्यश्री रूप वि.म.सा. के पास आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कर लिया । और संसारसे मन मोड़ लिया । इतना ही नहीं, लेकिन साधना के मार्ग पर आगे बढने कमर कसी । शरीर को शिक्षा देने और ध्यानमें निर्मलता लाने पू. श्री रूप वि.म. के (वि.सं. २००७) चातुर्मास दौरान १६ उपवास की तपश्चर्या की ।

अक्षयराज वैराग्य के मार्ग पर :

तपश्चर्या के साथ भक्तिमें लीनता, कायोत्सर्ग, जाप, आगमसारादि ग्रंथों का वांचन इत्यादि मिलने से अक्षयराज का वैराग्य दीपक दावानल बनकर भड़क उठा । उसका आतम-हंस संसार के पिंजरेमें से मुक्ति प्राप्त करने तड़प उठा और अपनी आत्मा को समझाने लगे : '**ओ आतम हंस ! कहाँ तक इस संसार के पिंजरेमें बंद रहना हैं ? संसार का पिंजरा तेरा निवासस्थान नहीं हैं, तेरे निवास का स्थान तो मुक्तिरूपी मानसरोवर हैं । बंद रहना यह तेरा स्वभाव नहीं, मुक्त गगनमें उड्डयन करना तेरा स्वभाव हैं । जिंदगी क्या बंधनोंमें ही पूरी कर देनी हैं ? जिस प्रकार अनंत जिंदगीयां बेकार गई उसी तरह इस जिंदगी को भी निरर्थक जाने देनी हैं ? ओ चेतन हंस ! समझ, समझ । हिंमत कर और बेड़ीओं को तोड़ दे । याद रख कि घरमें बैठे-बैठे आत्मा का दर्शन होता नहीं हैं । इसके लिए तो दीक्षा ही लेनी पड़ती हैं । तीर्थंकर भी जहाँ तक दीक्षा नहीं स्वीकारते वहाँ तक मनःपर्यव ज्ञान या केवलज्ञान नहीं होते । इसलिए ओ जीव ! जलदी कर । समय झड़प से पसार हो रहा हैं । अविरतिमें रहकर लोहे के गोले जैसा तू प्रतिक्षण अन्य जीवों को ताप और त्रास दे रहा हैं, तेरे कारण कितने जीव त्रास का अनुभव कर रहे हैं ? उस**

त्रास को दूर करने का एक ही मार्ग हैं : परमात्मा द्वारा प्ररूपित प्रव्रज्या का स्वीकार ।

दीक्षा के लिए दृढ प्रतिज्ञा :

इस तरह अक्षयराजने दीक्षा स्वीकारने का दृढ संकल्प कर लिया और यह निर्णय धर्मपत्नी को भी कह दिया : अब मुझे दीक्षा ही लेनी हैं । का.शु. १५ के बाद जो कोई भी प्रथम मुहूर्त आयेगा उस दिन मैं दीक्षा लूंगा और अगर रजा नहीं दो तो चारों आहार का त्याग । यह मेरी प्रतिज्ञा हैं ।

रतनबहन की चिंता :

दीक्षा की इस बात को प्रथमबार ही सुनकर रतनबहन के उपर तो मानो बिजली टूट पड़ी । वे तो तब चिंतामें पड़ गये । पतिदेव के सामने बोलना, झगड़ा करना या आज्ञा न माननी वह उनके स्वभावमें ही नहीं था । पतिदेव की यह बात खुद को बिलकुल अप्रिय थी.. लेकिन अब करना क्या ? उस होंशियार नारीने तुरंत ही अपने पिता मिश्रीमलजी को इस बात के समाचार दिये ।

रतनबहनने सोचा था कि मुझसे ये नहीं मानेंगे लेकिन मेरे पिताजी से तो अवश्य मानेंगे और वैराग्य का उभार ठंडा हो जायेगा उसके बाद कोई फीकर नहीं । लेकिन हुआ उलटा । पिताश्री का थोड़े ही दिनोंमें प्रत्युतर आया और रतनबहन तो स्तब्ध ही हो गये । अपेक्षा से अलग ही जवाब मिला । चिंता दूर होने की जगह बढ गयी । रतनबहन को लगा कि यह तो विचित्र हुआ । 'घरना बल्या वनमां गया, ने वनमां लागी आग ।' (घर के जले वनमें गये और वनमें भी आग लगी ।) रतनबहन के पिताने ऐसा क्या लिखा था कि जिससे रतनबहन चिंतित हुए ? मिश्रीमलजीने लिखा था :

'अक्षयराज की दीक्षा की भावना जानकर अत्यंत आनंद हुआ । मेरी भी वर्षों से दीक्षा लेने की भावना हैं, परंतु अब तक ले नहीं सका... लेकिन मुझे अगर ऐसा उत्तम सहयोग मिल जाये तो तुरंत ही दीक्षा की भावना हैं । आप भी उन्हें अनुकूलता कर दें । आपकी और दोनों बच्चों की कोई चिंता न हो उस प्रकार सारी व्यवस्था हो जायेगी ।'

पति और पिता दोनों एक हो गये । अब व्यथा कहाँ प्रकट करनी ?

रतनबहन धर्म की शरणमें :

जब मानव के पास बाह्य कोई आधार नहीं रहता तब वह धर्म की शरणमें जाने इच्छता हैं । रतनबहन को भी आखिर वही शरण लगा । वे सामायिक लेकर बैठ गये और चिंतन करने लगे : क्या करूं ? उन्हें पतिदेव का मार्ग कल्याणकारी लगा ।

सामायिक पूरी हो जाने के बाद रतनबहनने पतिदेव को कहा : आप संयम के कल्याणकारी मार्ग पर जा रहे हो, वह बहुत ही अच्छा हैं । मैं उसमें क्यों विघ्नरूप बनूं ? किंतु हमारा भी कुछ विचार किया या नहीं ? हमारा क्या ? हमारी भी संयममें रुचि जगाओ तो हम भी तैयार होकर आपके साथ दीक्षा लेंगे । अतः आप त्वरा न करें । हमारी राह देखें ।

इस बात से अक्षयराज द्विधामें पड़ गये । एक तरफ खुद की प्रतिज्ञा और दूसरी तरफ घरवालों की रुक जाने की याचना । क्या करूं ?

महात्मा की सलाह :

वहाँ विराजमान पू. सुखसागरजी के पास जाकर सलाह मांगी । उन्होंने कहा कि भाई ! तेरी भावना श्रेष्ठ हैं, परंतु त्वरा करनी योग्य नहीं हैं । मात्र अपनी आत्मा का हित कर लेना योग्य नहीं हैं । कुटुंब के जीवों का हित होता हो तो धैर्य रखनेमें ही लाभ हैं । फिर दीक्षा लेने से पहले गुरु का परिचय करना पड़ता हैं । साधु-क्रिया आदि का अभ्यास करना पड़ता हैं और विहार आदि की तालीम लेनी पड़ती हैं । इसलिए २-३ साल तुझे निकालने चाहिए । इससे तुझे भी लाभ होगा और तेरे बालकों को भी तू योग्य रूप से तालीम देता रहेगा । उन्हें संयम की रुचि जग जाय और वे अगर तैयार हो जाये तो तेरी जो प्रतिज्ञा हैं उसमें विघ्न नहीं पड़ेगा किंतु ज्यादा लाभ होगा और इस तरह विधिपूर्वक सब करने से ही संयम की साधनामें सफलता प्राप्त हो सकेगी ।

महात्मा की यह सलाह अक्षयराज को समुचित लगी । उसके अनुसार धीरे... धीरे... व्यापार वगैरह वे समेटने लगे और पू. सुखसागरजी म. के पास नवतत्त्व प्रकरण आदि का अभ्यास शुरु

किया । घरमें भी बालकों को धार्मिक सूत्र सीखाने लगे । सामायिकमें साथमें बैठाकर उन्हें धर्म की बातें, महापुरुषों की जीवनघटनाएं इत्यादि सरल भाषामें समझाते रहे ।

सद्‌गुरु की शोधमें :

अब लाख रूपयों का सवाल यह था कि दीक्षा तो लेनी है, लेकिन किनके पास ? गुरु किन्हें बनाना ? जिनके चरणोंमें जीवन का संपूर्ण समर्पण कर देना हैं, ऐसे संसार-तारक गुरुदेव की शोध करना यह महत्त्व का और कठिन कार्य हैं ।

वाहन चलानेवाला कप्तान सावधान चाहिए, प्लेन चलानेवाला पायलोट गाफिल नहीं चाहिए । मोटर चलानेवाला ड्राइवर असावधान नहीं चाहिए । उनकी एक मिनिट की असावधानता और अनेकों का जीवन खतरेमें... ड्राइवर, पायलोट या कप्तान से भी गुरु की भूमिका बहुत ऊंची हैं । वे (ड्राइवर आदि) तो मात्र इस भौतिक देहकी ही नुकसानी इस जन्म तक की ही कर सकते हैं, जब असावधान गुरु तो भवोभव बिगाड़ सकते हैं । इसलिए गुरु तो उत्तमोत्तम ही चाहिए । चाहे उनके चरणोंमें जीवन यापन कैसे कर सकते हैं ?

सद्‌गुरु की शोध के लिए शास्त्रमें १२ साल और ७०० योजन तक फिरने का कहा हैं ।

अक्षयराज गुरु का महत्त्व बराबर समझते थे । अतः उन्होंने अपने श्वसुर मिश्रीमलजी को इस बारेमें पूछा । उन्होंने कच्छ-वागड देशोद्धारक सुविशुद्ध संयममूर्ति पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजयकनकसूरीश्वरजी म.सा. का नाम दिया ।

उनके पास यह नाम कैसे आया ? बात ऐसी थी कि उनके नजदीक के संबंधी श्री लक्ष्मीचंदभाई कोचर, जो फलोदी के ही वतनी थे, उन्होंने पूज्य कनकसूरीश्वरजी म. के पास ही दीक्षा ली थी और उनके शिष्य मुनिश्री कंचनविजयजी म. के रूपमें सुंदर साधना कर रहे थे ।

पूज्यश्री कंचनविजयजीने गृहस्थावस्थामें सद्‌गुरु की शोध के लिए भारी प्रयत्न करके अंतमें पूज्यश्री कनकसूरीश्वरजी म.सा. को गुरु के रूपमें नक्की किये थे ।

अक्षयराज सपरिवार पूज्य गुरुदेव के पास :

चारित्र संपन्न अनेक आचार्य, मुनिगण हैं, उसमें वागड़ समुदाय के रूपमें सुप्रसिद्ध पूज्य दादाश्री जीतविजयजी म.सा. तथा उनके पट्टधर आचार्यदेव श्रीमद् विजयकनकसूरीश्वरजी म.सा. के साधु-साध्वी समुदाय की आचार-पालन की चुस्तता, तप, त्याग, विधि-आदर इत्यादि गुणों की बहुत ही प्रशंसा सुनने मिलती थी और साथमें फलोदी के ही ज्योतिर्विद् विद्वान् मुनिराज श्री कंचनविजयजी म. भी इसी समुदायमें दीक्षित बने थे । अतः उस समुदायमें ही दीक्षा लेने का श्वसुर-जमाइने निर्णय लिया और अक्षयराजभाई खुद के दोनों पुत्रों के साथ अहमदाबाद विद्याशालामें पूज्य संघस्थविर आचार्यश्री विजयसिद्धिसूरीश्वरजी म.सा. (बापजी म.) की निश्रामें चातुर्मास बिराजमान पूज्य आचार्यदेव श्री विजयकनकसूरीश्वरजी म.सा. के पास चातुर्मास रहे और संयम-योग्य तालीम लेने के साथ अभ्यासमें आगे बढते रहे । (वि.सं. २००९) और रतनबहन भावनगरमें पू.सा. निर्मलाश्रीजी के पास अभ्यास करने के लिए थोड़ा समय रहे ।

महाभिनिष्क्रमण के लिए मंथन :

इस प्रकार अक्षयराजभाईने अपने दोनों पुत्रों और उनकी माताको पूज्य गुरुभगवंतों की निश्रामें रखकर दीक्षा के लिए योग्य प्रकार से तालीमपूर्वक संयम की रुचिवाले बनाये । सबकी भावना संयम ग्रहण करने की हुई उसके बाद श्वसुर मिश्रीमलभाई को समाचार भेजे कि हम चारों की दीक्षा की पूरी तैयारी हैं । आप भी जल्दी आओ तो दीक्षा का मुहूर्त बता सकें ।

अक्षयराजभाई के पत्रसे मिश्रीमलजीभाई का संयम के लिए उत्सुक मन तैयारी करनेमें तत्पर बना, किंतु कुछ संयोगों के कारण जल्दी निकल नहीं सकते थे । इस हकीकत को जानकर अक्षयराजभाईने पूज्य गुरुदेव के पास, दीक्षा न ले सकूं वहाँ तक छः विगइ के त्याग की प्रतिज्ञा ली । मिश्रीमलभाई को वह बात विदित की । अक्षयराजभाई की ऐसी दृढता और प्रतिज्ञा जानकर मिश्रीमलजीभाईने तुरंत ही तैयारी की और पालिताणा बिराजमान पूज्यपाद तारक गुरुदेव श्री विजयकनकसूरीश्वरजी म.सा. तथा पू. मुनिवरश्री कंचनविजयजी म. आदि के पास जाकर दीक्षा के मुहूर्त

ले आये और दीक्षा का शुभ प्रसंग जन्मभूमि फलोदीमें ही करने का निर्णय किया ।

दीक्षा के लिए पूज्य गुरुदेव को विनंति :

वि.सं. २०१०, वैशाख शुक्ल १० का मंगलमुहूर्त लेकर मिश्रीमलजी फलोदी गये और दीक्षा का प्रसंग शानदार रूप से मनाने संघ के अग्रणीयों के साथ विचार-विनिमय कर आठ दिनके महोत्सव का आयोजन किया ।

दीक्षा देने के लिए पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयकनकसूरीश्वरजी महाराज को विनंति करने संघ के मुख्य-मुख्य भाईयों के साथ मिश्रीमलजी गये लेकिन कच्छ से राजस्थानमें... इतने दूर पहुंचने की उनकी शक्यता नहीं होने के कारण सब निराश हो गये । गुरुदेव की पुण्य-निश्रा के बिना आनंद कैसे आयेगा ?

अक्षयराजभाईने ये निराशापूर्ण समाचार सुने... लेकिन निराशा लानी अक्षयराज का स्वभाव नहीं था । वे तो आशाभरे हृदयसे निकले फिर से जोरदार विनंति करने... कैसे भी करके गुरुदेवश्री को फलोदी लाने ही हैं इस दृढ निश्चय के साथ कच्छ-भद्रेश्वर आये जहाँ पूज्य गुरुदेव बिराजमान थे ।

अक्षयराज अकेले ही आये थे । साथमें दूसरा कोई था नहीं । उन्होंने गुरुदेव को आग्रहभरी विनंति करते कहा : 'गुरुदेव ! आप को फलोदी आना ही पड़ेगा । मैंने आज से अट्ठम के पच्चक्खाण ले लिये हैं । जहाँ तक आप हां नहीं कहेंगे वहाँ तक मेरा पारणा नहीं होगा ।'

दीक्षार्थी अक्षयराजकी अंतरकी अपार भावना देखकर कृपालु गुरुदेवने एकबार तो कह दिया : 'हां... भले मैं आऊंगा ।'

अतः अक्षयराज का मन-मयूर नाच उठा । प्रतिज्ञा पूरी हो चूकी हैं, ऐसा समझकर पारणा किया ।

परंतु बाद में चक्र बदल गये । आनंदजी पंडितजी आदि सुश्रावकोंने पूज्य आचार्यश्री को ऐसी नादुरस्त तबीयतमें इतने दूर न जाने की सलाह दी । हार्ट के दर्दमें दूर न जाना हितावह हैं - यह समझकर आचार्य भगवंतने भी उनकी बात मान ली और उन्होंने अपने विद्वान् शिष्य मुनिप्रवरश्री कंचनविजयजी म. और उनके साथ

बुझुर्ग के रूपमें ध्यानप्रेमी पू. रत्नाकरविजयजी म. - इन दो महात्माओं को फलोदी वै.शु. १० के दीक्षा प्रसंग पर पहुंचने की आज्ञा दी। विनीत शिष्योंने नत-मस्तक होकर तुरंत ही बात स्वीकार ली। पूज्य आचार्य भगवंत के आशीर्वाद के साथ उन्होंने फलोदी की तरफ प्रयाण शुरु किया। और क्रमशः पहुंचे।

उस समय फलोदी का वैभव कुछ और ही था। सभी फिरके के मिलकर प्रायः एक हजार जैनों के घर थे।

प्रव्रज्या के पुनित पथ पर...

फलोदी के पुनित आंगनमें एक ही कुटुंबमें से पांच-पांच आत्माएं दीक्षित बन रही थी। अतः पूरा गांव हर्षके हिलोरे पर चढा था। गली-गलीमें एक ही बात सुनाई दे रही थी : दीक्षा... दीक्षा... और दीक्षा...! गुलाब की कली जैसे कोमल छोटे दो बालकों को दीक्षा के मार्ग पर जाते देखकर सबका हृदय गद्‌गदित हो रहा था। सब बोल रहे थे के - वाह ! प्रभुशासन की कैसी बलिहारी हैं कि छोटे बालक भी त्याग के मार्ग पर हंसते मुख प्रयाण कर रहे हैं। हम जैसे पामरों का अभी संसार छोड़ने का मन नहीं हो रहा हैं। धन्य माता ! धन्य पिता ! धन्य कुल ! धन्य कुटुंब ! धन्य दीक्षार्थी...!

एक पुण्यशाली आत्मा के कारण वातावरण कितना बदल जाता हैं ? अक्षयराज के मनमें उठे हुए प्रव्रज्या के पवित्र तरंग उनके श्वसुर, पत्नी, पुत्र आदि सर्व पर बिजली के वेग से फैल गये। सब दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गये। मानो कलिकाल के जंबूस्वामी !!!

दीक्षा-दिन :

'दीक्षार्थी' अमर रहो... दीक्षार्थी का जय जयकार ! मानव-जीवन का एक ही सार, बिना संयम नहीं उद्धार।' इत्यादि नाराओं से आज फलोदी की गलीयां गुंज रही थी। छोटे, बड़े, स्त्री-पुरुष, बालक, बालिकाएं सभी आनंद के कुंडमें स्नान कर रहे थे।

आज वै.शु. १० का दिन था। पांचों मुमुक्षु राजवंशी वेशमें सज्ज होकर वरसीदान उछालते-उछालते दीक्षा-मंडप की तरफ प्रयाण

कर रहे थे । अक्षयराज के आनंद की तो आज कोई अवधि ही नहीं थी । अनेक वर्षों का स्वप्न साकार होते देख कौन से आदमी को आनंद का अनुभव नहीं होता ? बचपन की भावना आज सच बन रही थी । विजयलब्धिसूरीश्वरजी महाराजने की हुई आगाही आज तद्दन सत्य बनती दिखाई दे रही थी । (वि.सं. १९९६में फलोदी चातुर्मास बिराजमान आचार्यश्री विजयलब्धिसूरीश्वरजी म.सा.ने अक्षयराज का हाथ देखकर कहा था कि – तू दीक्षा अवश्य लेगा । उस समय अक्षयराज परिणीत थे और दीक्षा की भावना मनकी गहराइमें सिकुड़ कर कहीं सो गयी थी ।)

अक्षयराज के लिए विशेष आनंद की बात तो यह थी कि खुद के कारण समग्र कुटुंब और श्वसुर भी संयम के मार्ग पर जा रहे थे ।

दीक्षार्थीओं के वरसीदान का वरघोड़ा आगे बढते-बढते जैन न्याती न्योरे के विशाल पटांगणमें पहुंचा, जहाँ दीक्षा के लिए विशाल मंडप बांधा गया था ।

मंडपमें दीक्षा की मंगल-विधि शुरू हुई । रजोहरण प्रदान हुआ । उस समय का दृश्य सचमुच रोमांचक था ।

हाथमें रजोहरण लेकर आनंद से नाचते दो बालकों को देखकर किसका हृदय गदगद् नहीं हुआ होगा ?

स्नान-मुंडनविधि के बाद मुनि-वेशमें सज्ज बने मुमुक्षुओंने मंडपमें प्रवेश किया तब तो सचमुच किसी अद्‌भुत सृष्टि का निर्माण हुआ हो वैसा लग रहा था । दीक्षा मंडपमें उपस्थित हुए सब लोगोंकी आंखें छोटे बाल मुनिओं पर टिकी हुई थी । स्त्रियाँ तो देख देखकर मानो तृप्त ही नहीं हो रही थी । उस समय सबके हृदयमें जो आनंद का सागर उछल रहा था – उस आनंद को व्यक्त करने के लिए शब्द भी असमर्थ थे । निरवधि आनंद को सीमित शब्दोंमें कैसे समा सकते हैं ?

पूज्य मुनिश्री रत्नाकरविजयजी म. तथा पूज्य मुनिश्री कंचनविजयजी म. दीक्षाकी मंगल विधि करा रहे थे । दिग्‌बंधकी किया होने के बाद पांचों नूतन मुनियों के शुभ नामों की इस प्रकार घोषणा की गई :

संसारी नाम	नूतन नाम
(१) मिश्रीमलजी (उ.व. ४९)	मुनिश्री कलधौतविजयजी
(बादमें बड़ी दीक्षा के समय मुनिश्री कमलविजयजी)	
(२) अक्षयराज (उ.व. ३०)	मुनिश्री कलापूर्णविजयजी
(३) ज्ञानचंद (उ.व. १०)	मुनिश्री कलापविजयजी
(बड़ी दीक्षा के समय मुनिश्री कलाप्रभविजयजी)	
(४) आशकरण (उ.व. ९)	मुनिश्री कल्पतरुविजयजी
(५) रतनबहन (उ.व. २९)	साध्वीजीश्री सुवर्णप्रभाश्रीजी

मुनिश्री कलधौतविजयजी और मुनिश्री कलापूर्णविजयजी ये दो पूज्य आचार्यश्री विजयकनकसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्य के रूपमें घोषित किये गये और बड़ी दीक्षा के समय पूज्य आचार्यदेवने इन दोनों मुनियों को मुनिश्री कंचनविजयजी के शिष्य बनाये ।

दोनों बालमुनि अपने पिता-गुरु के शिष्य बने और साध्वीजी सुवर्णप्रभाश्रीजी पूज्य आचार्य भगवंत के आज्ञावर्ती साध्वीजी श्री लावण्यश्रीजी के शिष्या साध्वीजी सुनंदाश्रीजी के शिष्या बने ।

दीक्षा महोत्सव की पूर्णाहूति निर्विघ्नरूप से हुई और फलोदी के संघकी अति आग्रहभरी विनंति होने से वि.सं. २०१० का प्रथम चातुर्मास वहीं हुआ । चातुर्मास दौरान नूतन मुनिवरों को ज्ञानाभ्यासमें और संयम की आराधनामें डूबे हुए देखकर लोगोंने बहुत ही अनुमोदना की । और जो बालदीक्षा के विरोधी थे वे भी उनकी मुलाकात लेते । उनकी जीवन-चर्या, नित्य प्रवृत्ति और पूछे हुए प्रश्नों के जवाबसे अत्यंत प्रभावित होकर आनंद व्यक्त करने लगते ।

पूरे चातुर्मासमें संघने अत्यंत सुंदर ढंग से धर्माराधना का लाभ लिया और शासन की अपूर्व प्रभावना हुई ।

चातुर्मास दौरान मुनिश्री कलधौतविजयजी के संसारी पुत्र नथमलभाई (उ.व. १२) भी गुरुदेवों के पुनित समागम से वैराग्य वासित बने और चातुर्मास के बाद मृगशीर्ष शुक्ला ----- के शुभ दिन भव्य महोत्सपूर्वक उनकी दीक्षा हुई । उनका नाम मुनिश्री कलहंसविजयजी रखकर उनके पिता-गुरु (कलधौत वि.) के शिष्यके रूपमें घोषित किये गये ।

इस प्रकार चातुर्मास की अपूर्व धर्म-आराधना के उपर सुवर्ण-कलश चढा ।

राधनपुरमें बड़ी दीक्षा :

फलोदी से विहार करके पूज्य रत्नाकर वि.म. पूज्य कंचन वि.म. तथा नूतन मुनि क्रमशः गुजरात की तरफ आये ।

उस समय पूज्य आचार्य भगवंतश्री विजयकमकसूरीश्वरजी म.सा. राधनपुरमें बिराजमान थे । सब मुनि पूज्य आचार्यश्री की निश्रामें पहुंचे ।

वात्सल्यकी जीवंत मूर्तिसमान पूज्य आचार्यश्री के दर्शन-वंदन से मुनिओं के अंतर आनंद से झूम उठे । प्रशांत रस बहाती उनकी भव्य मुद्रा को देखते ही लगा कि सचमुच ऐसे गुरु ही संसारसे पार उतारेंगे, संयमकी साधनामें स्थिर करेंगे । पूज्य आचार्यश्रीने नूतन मुनिओं को बड़ी दीक्षा के जोगमें प्रवेश कराया । उल्लासपूर्वक योगोद्वहन करते मुनिओंने निर्विघ्नरूप से पूर्ण किये । और वि.सं. २०११, वै.सु. ७ के शुभ-दिन बड़ी दीक्षा की मंगलविधि हुई ।

इस तरह दीक्षा के बाद लगभग एक वर्ष के बाद बड़ी दीक्षा हुई ।

पूज्य आचार्य भगवंत के निर्मल वात्सल्य के साथ छःओं नूतन मुनि तप, त्याग, विराग, विनय, सेवा और स्वाध्यायादि के अभ्यासमें पुरुषार्थशील बने । संयम-साधना के लिए वर्षों से झंखना करते अक्षयराजकी आत्मा आनंद से नाच उठी । मानो बंधनमें से आत्म-मयूर मुक्त बना और अनंत आकाश की तरफ उड्डयन शुरु किया ।

मुनिश्री कलापूर्णविजयजी (अक्षयराज) इस बात को बराबर जानते थे कि **दीक्षा पूर्णाहुति नहीं, किंतु प्रारंभ हैं । यह शिखर नहीं, लेकिन शिखर पर चढने की पगदंडी हैं । बहुत लोग ऐसा मानते हैं कि दीक्षा ली मतलब काम हो गया, अब कुछ करने की जरुरत नहीं हैं, परंतु यह बात बराबर नहीं हैं । दीक्षामें प्रवेश का अर्थ ही साधनामें प्रवेश हैं ।**

दीक्षा का जीवन यानि साधना का जीवन ।

दीक्षित मुनि मतलब साधना के मार्ग पर दिन-प्रतिदिन आगे बढती साधक आत्मा !

वह दिन-प्रतिदिन प्रगति करता ही रहता हैं । गुण का अर्जन और दोष का विसर्जन करता ही रहता हैं । एक दिन भी विकास रहित नहीं होता ।

जो आगे बढ़ने की भावना नहीं रखता वह पीछे पड़े बिना नहीं रहता । इसलिए ही श्रावक को साधु बनने की और साधुओं को सिद्ध बनने की भावना रखने की बात कही हैं ।

मुनिश्री कलापूर्णविजयजी म. का पहले से ही साधना का लक्ष था और उस साधनाने साधुता के स्वीकार के बाद अत्यंत वेग पकड़ा ।

साधक आत्मा को साधना के अनुकूल वातावरण सामग्री इत्यादि मिल ही जाती हैं । फक्त साधक की सच्ची पात्रता और जिज्ञासा चाहिए ।

प्रभु-भक्त और श्रुत-भक्त मुनिश्री :

साधुजीवन के योग्य कुछ प्राथमिक ज्ञान प्राप्त करने के साथ मुनिश्री कलापूर्णविजयजीने संस्कृत बुक, कर्मग्रंथ आदि के अभ्यास का प्रारंभ किया ।

जीवनमें सहजरूप से बुने हुए देव-गुरु-भक्ति, विनय, वैयावच्च और क्षमादि गुण भी शुक्ल पक्ष के चंद्र की तरह विकसित होने लगे ।

पूज्य मुनिश्री को दो चीजोंमें खास रस था । एक बचपनसे ही खुद को अच्छी लगती भगवान की भक्ति का रस और दूसरा पढाई का रस ।

जब भगवान की मूर्ति देखते तब पागल जैसे बन जाते । मूर्तिमें साक्षात् भगवान देखते और बालक की तरह बातें करने लग जाते । स्तवन बोलते तो इतने भावविभोर बन जाते कि भान ही भूल जाते । भक्तिमें घण्टे के घण्टे बीत जाते । भूख, प्यास, थकान - सब कुछ भूल जाते । चाहे जितनी विहारकी थकान लगी हो । वैशाख महिनेमें चाहे जितनी प्यास लगी हो, गोचरी का समय हो गया हो, फिर भी भगवान की मूर्ति मिली तो हो गया । मानो सब कुछ मिल गया । ऐसी अपूर्व मस्तीसे होती भक्तिसे उनकी सुस्ती उड जाती और प्रभु से उन्हें नया ही बल मिलता रहता । साधना का बल वे इस तरह प्रभु से प्राप्त कर लेते । **जिन्होंने भगवान की अनंतता के साथ अनुसंधान किया हो वे कहीं निराश होता हो या निष्फल जाता**

हो इस बातमें कोई दम नहीं । सदा आज्ञापूर्ण विचार, श्रद्धा और प्रेमभरा हृदय, उछलता उत्साह, प्रसन्न मुखमुद्रा, प्रशांत वाणी – यह सभी भक्ति की कल्प-वेलीमें से मिले हुए फल हैं । इन फलोंका आस्वाद जिसने लिया हो वह स्वयं तो भक्ति और प्रसन्नता का फव्वारा बनता ही हैं, परंतु संसर्गमें आनेवाले अन्यको भी प्रसन्नता से नहला देता हैं ।

दूसरा उन्हें रस (Interest) था जिनागम पढने का ! **जिसे प्रभु अच्छे लगे उन्हें प्रभुकी वाणी भी अच्छी लगती ही हैं । जिनागम प्रभु की वाणी का संग्रह हैं । भक्ति से हृदय विकसित होता हैं अध्ययन से दिमाग विकसित होता हैं । विकसित हृदय श्रद्धा, भक्ति और प्रेमसे जीवन को रस तराबोर बना देता हैं और विकसित दिमाग तर्कशक्ति और विचारशक्ति से जीवनको अपूर्व तेज देता हैं ।**

प्रभु-भक्ति और श्रुत-भक्ति द्वारा पूज्यश्रीमें दोनों गुणों का विकास हो रहा था ।

ज्ञान-पिपासा पूज्यश्रीमें इतनी तीव्र बनी कि जहाँ कहीं भी ज्ञान प्राप्त करने जैसा लगता वहाँ पहुंच जाते थे । पूज्यश्रीने अब तक अनेकों के पास ज्ञानोपार्जन किया हैं ।

उसकी कुछ झलक नीचे हैं :

वि.सं. २०१२ चातुर्मासमें पू. पंन्यासजीश्री मुक्तिविजयजी के पास लाकडीया (कच्छ)में त्रिषष्टि आदि का अध्ययन ।

वि.सं. २०१४ चातुर्मासमें पू.आ.वि. प्रेमसूरीश्वरजी म.सा. के साथ चातुर्मास रहकर उनके शिष्यों के पास अध्ययन ।

वि.सं. २०१५ चातुर्मासमें वढवाणमें पंडितजी अमूलखभाई के पास अध्ययनार्थ ।

वि.सं. २०१७-२०१८ जामनगर चातुर्मासमें व्रजलाल पंडितजी के पास न्याय दर्शनादिका अध्ययन ।

वि.सं. २०२५ पू.पं.श्री मुक्तिविजयजी (आ.श्री वि. मुक्तिचंद्रसूरिजी म.) के पास अहमदाबादमें अध्ययन ।

वि.सं. २०३१-२०३२ चातुर्मासमें क्रमशः बेड़ा-लुणावा (राज.) तथा वि.सं. २०३४ चातुर्मास पिंडवाड़ा (राज.)में साधना, ध्यान आदि

पू. योगनिष्ठ पं. श्री भद्रंकर वि.म. के पास मार्गदर्शन तथा उनकी अनन्य कृपा प्राप्त की ।

वि.सं. २०३७, २०३८, २०३९ एवं २०४७में बहुश्रुत पू. मुनिश्री जम्बूविजयजी के पास आगम-वाचना ।

वि.सं. २०३९ चातुर्मासमें अहमदाबाद (शांतिनगर)में व्याख्यान - वाचस्पति पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचंद्रसूरिजी महाराज के पास से भी आशीर्वाद तथा उनके विशाल अनुभव की प्राप्ति ।

इस तरह पूज्यश्रीने जहाँ से जितना प्राप्त कर सके उतना नम्र बनकर प्राप्त ही किया हैं । कभी स्वयं का पद या स्वयं का 'अहम्' आगे नहीं किया । अर्हं का साधक 'अहं' से कैसे ग्रस्त होगा ?

गुरु-आज्ञा स्वीकारते मुनिश्री :

गुरु-आज्ञा पालन का उनका एक प्रसंग अत्यंत बोधप्रद हैं ।

जब जामनगर दो चातुर्मास कर पूज्यश्री अपने गुरुदेवाचार्य के पास भचाउ आये (संवत् २०१९) तब साथमें ही चातुर्मास करने की भावना थी और गुरुदेव की आज्ञा भी वैसी ही थी । लेकिन वहीं गांधीधाम जैन संघ पूज्य गुरुदेवश्री के पास अपार भाव लेकर चातुर्मास की विनंति करने आया । गुरुदेव को बहुत ही चिंता हुई । 'किन्हें भेजना ? मुनिश्री कंचनविजयजी म. तो पीछले साल ही चातुर्मास करके आये हैं और पं. दीपविजयजी का चातुर्मास सामखीयाली नक्की हो गया हैं । पं. भद्रंकरविजयजी तो खास मेरे पास रहने आये हैं और मुनिश्री कलापूर्णविजयजी यद्यपि जा सकते हैं, फिर भी वे मेरे साथ चातुर्मास रहने के लिए आये हैं । किसी को वहाँ पर जाने के लिए कह नहीं सकता हूं और इस तरफ भावनावाले संघको ना भी कह नहीं सकता ।' सचमुच गुरुदेव द्विधामें पड़ गये । गुरुदेव की यह चिंता चकोर शिष्यसे छुपी कैसे रह सकती हैं ? **सुविनीत शिष्य तो मुख के भावों से इंगित आकारों से ही गुरुदेव के अभिप्राय जान जाते हैं ।** मुनिश्री कलापूर्णविजयजी गुरुदेव के पास गये । गुरुदेवने कहा 'ऐसी परिस्थिति हैं । बोलो, अब क्या करें ?'

'जैसी आपकी आज्ञा', सुविनीत शिष्यने सुविनीत जवाब दिया । इससे संतुष्ट हुए पूज्य गुरुदेवाचार्यने अंतरके आशिषपूर्वक दो पुत्र

शिष्यों के साथ गांधीधाम चातुर्मास के लिए भेजे और आशीर्वाद देते कहा :

'सुंदर आराधना करें और करायें और चातुर्मास पूर्ण होते ही मैं तुम्हें तुरंत ही बुला लूंगा । चिंता न करें ।'

गुरुदेव की आशिष लेकर मुनिश्री गांधीधाम गये । डेढ़ महिना पसार हुआ वहीं समाचार आये । भाद्रपद कृ. ४ को पूज्य आचार्यश्री का कालधर्म हुआ हैं ।

यह सुनते ही तीनों मुनिओं के दिल स्तब्ध बन गये और वात्सल्य सागर गुरुदेव का वात्सल्य, योग-क्षेम करने की जागृति इत्यादि गुणों को याद करते गुरु-विरह से फूट-फूटकर रोने लगे । 'जल्दी बुला लूंगा' का आश्वासन देनेवाले सूरिदेव स्वयं ही जल्दी चले गये... । रोते बाल शिष्यों को छोडकर...

इस प्रकार कुछ समय शोकाकुल चित्तसे पसार कर के अंतमें सोचा : **'सूरिदेव का पार्थिव देह भले हाजिर नहीं हैं, लेकिन गुण-देह अमर हैं । उनका जीवनपथ हमारे समक्ष मौजुद हैं । इस पथ पर प्रयाण करना उनके गुणों को स्व-जीवनमें उतारना यही सच्ची गुरु-भक्ति हैं ।'** ऐसा तीनों मुनि मनको समझाकर संयम आराधनामें तत्पर बने । अंत समयमें स्वयं उपस्थित रह न सके, इस बात का दुःख जरुर था, किंतु गुरु-आज्ञा का पालन किया उसका अत्यंत संतोष भी था । गुरु-आज्ञा की अवहेलना कर उनके साथ रहने की हठ पकड़ी होती तो क्या होता ? शायद गुरुनिश्रा मिलती, लेकिन गुरुके अंतर के आशीर्वाद नहीं मिलते । सचमुच पूज्यश्रीने आचार्यश्री के अंतर के प्रबल आशीर्वाद प्राप्त कर लिये थे ।

उस समय गुरुदेवको भी शायद पता नहीं था होगा कि मेरे आशीर्वाद की ताकत से **मुनिश्री कलापूर्णविजयजी भाविमें आचार्य बनकर समुदाय नायक बनेंगे । भावि के भेद सचमुच रहस्यमय होते हैं । सामान्य दिखता आदमी कब असामान्य बन जाय, वह कौन जान सकता हैं ? नीतिशास्त्रमें कहा हैं :**

'स्त्रीणां चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं,
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ?'

स्त्रियों का चरित्र और पुरुष का भाग्य देव भी जान नहीं सकते तो मनष्य तो कैसे जान सकता हैं ?

दुबली-पतली कायावाले, हमेशा नीचा मुख रखकर पढनेवाले, भगवान के भक्त, सामान्य दिखते ये कलापूर्णविजयजी महान आचार्य श्री विजय कलापूर्णसूरीश्वरजी बनेंगे - ऐसी उस समय शायद किसी को कल्पना भी नहीं होगी ।

पूज्य आचार्यश्री विजयदेवेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. :

गांधीधाम चातुर्मास के बाद विरह व्यथित बने हुए मुनिश्री कलापूर्णविजयजी तथा सामखीयाली चातुर्माসस्थित पू. पंन्यासजी श्री दीपविजयजी आदि भचाउमें मिले । सामुदायिक कर्तव्य के बारेमें कुछ विचार-विमर्श किया ।

अब मुख्य प्रश्न यह था कि समुदाय-नायक कौन बने ? सबकी नजर पं.श्री दीपविजयजी पर स्थिर हुई । सचमुच ये अत्यंत योग्य महात्मा थे । उन्होंने अपने गुरुदेव पू.आ.श्री.वि. कनकसूरीश्वरजी म.सा.की अखंड सेवा और विनयपूर्वक २३ चातुर्मास तो उनके साथ ही किये थे और १४ चातुर्मास आज्ञा-पालन के उद्देशसे विविध क्षेत्रोंमें किये थे । प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा से पर थे । सरल-हृदयी और निःस्पृह साधुरत्न थे । अतः पूज्य आचार्यश्रीने उन्हें संवत् २००४में पंन्यासपद से विभूषित किये थे ।

ऐसे सुयोग्य निःस्पृह महात्मा को आचार्य पदवी के लिए वागड़ सात चोवीसी तथा दूसरे अनेक संघोंने विनंति की... लेकिन निःस्पृह पंन्यासजीने समुदाय के संचालनमें अपनी लाचारी बताई तब मुनिश्री कलापूर्णविजयजीने उन्हें संपूर्ण सहयोग देने का वचन देकर अत्यंत आग्रहपूर्ण विनंति की । अतः पंन्यासजी म. मौन रहे तो वागड़ जैन संघने इस भव्य प्रसंग को शानदार ढंग से मनाने की तैयारियां की और वि.सं. २०२०, वै.शु ११ के मंगलदिन पंन्यासजी श्री दीपविजयजी म. आचार्य पद पर आरूढ हुए और आचार्यश्री विजय देवेन्द्रसूरीश्वरजी के नाम से समुदाय के नायक घोषित किये गये ।

पूज्य आचार्यश्री के सहयोगी मुनिश्री :

पूज्य गुरुदेव के कालधर्म के बाद सिर पर आई साधु-साध्वी के विशाल समुदाय के संचालन की जवाबदारी को अपना कर्तव्य

समझकर खूब वात्सल्य और कुशलतापूर्वक नूतन आचार्यदेवश्री करने लगे और मुनिश्री कलापूर्णविजयजी को भी यह सामुदायिक सर्व जवाबदारीयोंमें सहयोगी के रूपमें साथमें रखकर व्याख्यान आदि की कुछ जवाबदारीयां सौंपी ।

७२ वर्ष की बड़ी उम्र और पैर की तकलीफ के कारण चलकर विहार कर सके वैसी स्थिति न होने के कारण आश्रित मुनि-वर्ग की संयम-रक्षा इत्यादि विशेष कारणों को ध्यानमें रखकर अपवाद के रूपमें डोली का उपयोग करना पड़ा ।

मुनिश्री को पंन्यास-पद :

मुनिश्री कमलविजयजी तथा मुनिश्री कलापूर्णविजयजी आदि मुनिओं की जन्मभूमि फलोदी (राज.) गांव का मुख्य श्रावक वर्ग चातुर्मास की विनंति करने आया । उनकी आग्रहभरी विनंति को लक्षमें लेकर पूज्यश्रीने अनुमति दी और संवत् २०२४ का चातुर्मास फलोदीमें हुआ ।

मुनिश्रीमें विनय, भक्ति, वैराग्य, समता, प्रवचन-शक्ति इत्यादि गुण अब तो सोलह कलाओं से खील उठे थे और कलापूर्णविजयजी सच्चे अर्थमें 'कलापूर्ण' बन चूके थे । चांद चांदनी के द्वारा सर्वत्र प्रसन्नता फैलाता हैं उस प्रकार मुनिश्री सर्वत्र प्रसन्नता फैला रहे थे ।

कच्छ-वागड़ आदि की जैन-जनतामें एक शांत, त्यागी और साधक आत्मा के रूपमें उनकी सुगंध फैल चूकी थी ।

प्रशमकी लब्धि इतनी प्राप्त हो चूकी थी कि चाहे जैसा क्रोधाविष्ट मनुष्य उनके पास आते ही ठंडे पानी जैसा बन जाता । अपनी ऐसी शक्ति से उन्होंने अनेक गांवों के झगड़े, जो वर्षोंसे शांत नहीं होते थे, उन्हें शांत किये थे । मनफरा महाजनवाडीमें फोटो रखना या नहीं ? इस बारेमें बहुत बड़ी तकरार चल रही थी, उसे पूज्यश्रीने कुछ समयमें मिटा दी ।

ऐसे-ऐसे अनेक गुणों से चारों तरफ उनकी चाहना बढने लगी और उन्हें पंन्यासपद से विभूषित करने की विनंतियां लंबे समय से चल रही थी । अतः पू.आ.श्री विजयदेवेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.ने उनकी सुयोग्यता जानकर 'भगवती सूत्र' के योगोद्वहनमें प्रवेश कराया ।

फलोदी चातुर्मास के बाद छ'री' पालक संघ के साथ जैसलमेर तीर्थ की यात्रा कर फलोदी वापस पधारे । संघकी आग्रहभरी विनंती से उपधान तप की मंगल आराधना का शुभारंभ हुआ । उसके बाद वि.सं. २०२५ माघ शुक्ला १३ के शुभ दिन मुनिश्री कलापूर्णविजयजी को अनन्य जिन-भक्ति-महोत्सव के साथ गणि-पंन्यासपदसे विभूषित किये गये ।

इस प्रसंग पर फलोदी निवासी मुमुक्षुरत्न श्री हेमचंदभाई (जो संसारी अवस्थामें पूज्यश्री के चचेरे भत्रीजे होते थे) की दीक्षा हुई । वे पूज्यश्री के शिष्य मुनिश्री कीर्तिचंद्रविजयजी के रूपमें घोषित हुए ।

पंन्यास पद मिलने पर भी, आचार्यदेव श्री विजयदेवेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. की सेवामां एक नम्र सेवक की तरह सदा तत्पर रहते । महापुरुषों की यह विशेषता होती हैं कि महत्ता प्राप्त होने पर भी वे कभी गर्व नहीं करते । पूज्यश्रीमें यह गुण तो बचपनसे ही था।

अधिकतर पूज्यश्री, आचार्यश्री के साथ ही रहते । किसी कार्य-प्रसंगवश अलग होते तो भी वह काम पूर्ण होते ही आचार्यश्री के साथ हो जाते ।

जिस जिस क्षेत्रमें जाते वहाँ वहाँ तात्त्विक और करुणासभर प्रवचनों द्वारा लोगोंमें धर्म-जागृति लाते । पूज्यश्री का प्रवचन सहज, सरल और असरकारक रहता ।

पूज्यश्री के प्रवचन प्रायः पूर्व तैयारी बिना के ही रहते । आज भी वे पूर्व तैयारी बिना ही प्रवचन देते हैं । अंतरकी गहराइमें से निकले हुए वे शब्द श्रोता के हृदयमें उतर जाते हैं ।

पंन्यास-पद प्राप्ति के बाद पूज्य आचार्यश्री विजयदेवेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. के साथ चार चातुर्मास किये । वि.सं. २०२७में खंभातमें मनफरा निवासी रतनशी पुनशी गाला को दीक्षा देकर मुनिश्री कुमुदचंद्रविजयजी के नाम से स्वशिष्य बनाये । वि.सं. २०२८, माघ शुक्ला १४ के शुभ दिन कच्छ की राजधानी भुजमें एक साथ हुई ११ दीक्षाओंमें पांच पुरुष और छः बहने थी । पांच पुरुषोंमें से तीन स्वसमुदायमें दीक्षित बने थे । मनफरा निवासी बंधुयुगल मेघजीभाई भचुभाई देढिया, मणिलाल भचुभाई देढिया तथा भुज निवासी प्रकाशकुमार जगजीवन वसा क्रमशः मुनिश्री मुक्तिचंद्रविजयजी,

मुनिश्री मुनिचंद्रविजयजी तथा मुनिश्री पूर्णचंद्रविजयजी के रूपमें घोषित हुए । वि.सं. २०२८में लाकडीयामें पू.आ.श्री.वि. देवेन्द्रसूरीश्वरजी म.का अंतिम चातुर्मास हुआ । पू.आ.श्री.वि. कनकसूरीश्वरजी म.सा. के कालधर्म के बाद पूज्यश्री पू.आ.श्री.वि. देवेन्द्रसूरीश्वरजी के साथ ही रहते थे । वि.सं. २०२० से वि.सं. २०२८ तक के तमाम चातुर्मास साथमें ही किये । इस प्रकार उनके साथ रहते समुदाय-संचालन की अच्छी तालीम मिलती रही ।

पूज्यश्री के गुरुदेव मुनिश्री कंचनविजयजी म.सा. :

पूज्य गुरुदेवश्री कंचनविजयजी महाराज तपस्वी, निःस्पृही और अंतर्मुखी जीवन के स्वामी थे । संस्कृत-प्राकृत भाषा के अभ्यास के साथ पूज्य गुरुदेव के सांनिध्यमें रहकर आगमादि सूत्रों का सुंदर अध्ययन किया था और ज्योतिष विद्या का भी गहरा अभ्यास था ।

कीर्ति, पद, प्रतिष्ठा प्राप्त करने जैसी पामर मनोवृत्तियों से वे सदा पर रहते । किसी के पास अपना काम न कराते खुद ही अपना काम करते । यह स्वाश्रय का गुण उनमें अद्‌भुत ढंग से विकसित हुआ था ।

खुद के पांच-पांच शिष्य-प्रशिष्य होने पर भी सेवा की अपेक्षा से सर्व था पर वे, अपने शिष्य समुदायनेता पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयदेवेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. के साथ विचरते रहे और स्व-पर का कल्याण करते रहे, उसमें ही आंतरिक संतोष का अनुभव करते ।

पूज्य पंन्यासजी श्री कलापूर्णविजयजीने उपकारी गुरुदेव को सेवा के लिए अनेक विनंती करने पर भी स्वाश्रय गुणसंपन्न इन महापुरुषने अपनी सेवा दूसरों से नहीं करवाने की दृढता को छोड़ी नहीं थी ।

ऐसे निःस्पृही, स्वाश्रयी और संयमी महात्माने तबियत के कारण पीछले कुछ वर्षोंसे भचाउमें स्थिरता की थी । वि.सं. २०२८ के प्रारंभमें ही ज्योतिषविद्याके बल पर अपनी आयु अल्प जानकर आत्मकल्याणकामी इन महात्माने ज्ञान-पंचमी के दिन से ही १६ दिन के चोविहार उपवास के पच्चक्खाण किये । अपूर्व समताभाव के साथ आत्मध्यानमें लीनतापूर्वक १२वे उपवास के दिन (वि.सं. २०२८, मृगशीर्ष कृ. २) भचाउमें उनका कालधर्म हुआ ।

आधोइ चातुर्मास बिराजमान पूज्य आ.श्री.वि. देवेन्द्रसूरीश्वरजी म. तथा प.पू.पं.श्री कलापूर्ण वि.म. आदि दूसरे ही दिन भचाउ आ पहुंचे । साधु योग्य विधि कर सब उन महात्मा की निरीहता को वंदन कर रहे थे । पूज्य पंन्यासजी म. कृतज्ञभाव से अंजलि देते गद्‌गदित हो गये ।

शतशः वंदन उन निःस्पृह शिरोमणि महात्माको...!

छ'री पालक संघ और सूरि-पद प्रदान :

लाकडीया के चातुर्मास के बाद पूज्य आचार्यदेवश्री तथा पू. पंन्यासजी म. आदि कटारीया पधारे । पूज्यश्री की निश्रामें वहाँ से संघवी रसिकलाल बापुलालभाई की तरफ से छ'री पालक संघका प्रयाण होनेवाला था । उस प्रसंगमें अनेक गांवों के अनेक अग्रणी महानुभाव वहाँ आये हुए थे । उनके मनमें एक विचार आया : पंन्यासजी म. को आचार्य-पद-प्रदान किया जाय तो बहुत अच्छा रहेगा । समुदायमें इस वक्त जरुरत हैं । पू. आचार्यश्री वयोवृद्ध हैं और पंन्यासजी म. सुयोग्य हैं । अतः उन्हें आचार्यपदवी दी जाये तो अच्छा । सबने साथ मिलकर पूज्य आचार्यश्री को इस बात के लिए विनंती की तब आचार्यश्रीने कहा कि मैं तो कब से आचार्यपद लेने के लिए पंन्यासजी म. को आग्रह कर रहा हूं, परंतु मेरी बात वे नहीं मानते हैं । अब आप सब मिलकर समझाईए । मैं तो पदवी देने के लिए तैयार ही हूं । मुझे लगता हैं कि आज आपकी प्रबल भावना और विनंती के सामने उन्हें झुकना पड़ेगा । बुलाओ पंन्यासजी म. को ।

पूज्यश्री की आज्ञा होते ही पंन्यासजी म. नत-मस्तक उनके चरणोंमें उपस्थित हुए । सबने जोरदार विनंती की और अंतमें पूज्य आचार्यश्रीने ही पदवी-ग्रहण के लिए स्पष्ट आज्ञा फरमाकर पंन्यासजी के मस्तक पर वासक्षेप किया । उपस्थित जन-समुदायने उल्लासपूर्ण हृदय से जिनशासन का जयनाद गजाया ।

मृगशीर्ष शुक्ला तीज का शुभ दिन नक्की हुआ । सूरि-पद-प्रदान और संघमाला साथमें ही थे । सब भक्तजन तो आयोजन की शीघ्र तैयारी करनेमें लग गये ।

यात्रा-संघ का भद्रेश्वर तीर्थमें शुभप्रवेश हुआ । तीर्थमाला और

सूरि-पद-प्रदान का बड़ा प्रसंग निहारने मानव-मेदनी उमड़ पड़ी ।

वि.सं. २०२९, मृग. शु. ३ के पवित्र प्रभात के समय पूज्य आचार्यश्री विजयदेवेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.ने पंन्यासजी म. को आचार्य पद पर आरूढ किये ।

'नूतन आचार्यश्री विजय कलापूर्णसूरि महाराज की जय' के गगनभेदी नादों से तीर्थ का पवित्र वातावरण गूंज उठा ।

अपने हाथों अपने एक सुयोग्य उत्तराधिकारी को सूरि-पद-प्रदान करने की मनोभावना आज के शुभ-दिन परिपूर्ण होते वयोवृद्ध आचार्यश्री को अपूर्व आत्मसंतोष हुआ ।

पूज्य देवेन्द्रसूरिजी म. का स्वर्ग-गमन :

पद-प्रदान कार्य पूर्ण कर पूज्य आचार्यश्री फिर लाकडीया गांवमें पधारे । दो महिने जितनी स्थिरता की । चैत्री-ओली के लिए आधोई पधारे ।

चैत्री ओली के मंगलदिन नजदीक आ रहे थे । पूज्यश्री की अस्वस्थ तबीयत के समाचार मिलते ही नूतन आचार्यश्री विजयकलापूर्णसूरिजी म. जो पूज्यश्री की आज्ञा से दीक्षा आदि प्रसंगों के लिए शंखेश्वर-राधनपुर की तरफ पधारे हुए थे । वे वहाँ के संघोंकी ओली के लिए बहुत ही विनंती होने पर भी बिना रुके तुरंत ही पूज्यश्री की सेवामें आधोई उपस्थित हुए ।

ओलीकी मंगलमयी आराधना का प्रारंभ हुआ और चैत्र शुक्ला १४ का दिन आ पहुंचा । प्रत्येक चौदस उपवास करने की उन वयोवृद्ध पू. आचार्यश्री को प्रतिज्ञा थी । तबीयत अत्यंत गंभीर होने से उपवास न करने की सकल संघकी अत्यंत विनंती होने पर भी वे स्वयं की प्रतिज्ञामें अडोल रहे... उपवास का तप किया ।

आज सुबहसे ही मुनिओं के मुंह से स्तवन, चउस्सरण पयन्ना इत्यादि का एकाग्र चित्त से श्रवण करते रहे । दोपहर के समय पू. कलापूर्णसूरिजी, पूज्यश्री को सुख-साता पूछने के लिए आये तब पांच-सात मिनिट उनके साथ आनंदपूर्वक कुछ बातें की । दोपहर पड़िलेहण कर आसन पर बिराजमान थे और शाम को प्रायः पांच बजे पूज्यश्री के देहमें कंपन शुरु हुई । पासमें रहे हुए मुनि सावधान बने, नवकार मंत्रकी धून शुरु की । पू. कलापूर्णसूरिजी

म. भी तुरंत ही पधारे । वातावरणमें खिन्नता छा गई... मिनिट-दो मिनिटमें पूज्यश्री की पुनित आत्मा नश्वर देह का त्याग कर विदा हो गई । सबकी आंखोंमें अश्रुधारा निकल आई । एक पवित्र शिरच्छत्र का सदा का वियोग किसकी आँखों को नहीं रुलाता ?

समुदाय की जवाबदारी स्वीकारते सूरिदेव :

इस प्रकार एक के बाद एक बुझुर्गों की छत्रछाया दूर होती गई और समुदाय की संपूर्ण जवाबदारी अपने सिर पर आ पड़ी । आत्म-साधक, अध्यात्म-मग्न साधक को यह खटपट पसंद नहीं पड़ती होगी, ऐसा हमें क्षणभर के लिए विचार आ जाता हैं । जिन्हें आत्मसाधना करनी हो उन्हें तो सब जंजाल को छोड़कर किसी गुफामें चले जाना चाहिए - ऐसा भी किसी को विचार आ सकता हैं । लेकिन ये आत्मसाधक कुछ न्यारे ही थे । **वे प्रवृत्तिमें निवृत्ति और निवृत्तिमें प्रवृत्ति के अजोड़ साधक थे । निश्चय और व्यवहार उभय के ज्ञाता थे । मात्र स्वयं के लिए साधना नहीं, परंतु दूसरों का भी हिस्सा हैं । इसलिए वहाँ भी दुर्लक्ष का सेवन नहीं कर सकते और दुर्लक्ष का सेवन करे तो बोधिदुर्लभ बनते हैं,** ऐसा जाननेवाले आचार्यदेवने समुदायकी जवाबदारी भी स्वीकारी । चतुर्विध संघ तीर्थ हैं । तीर्थ की सेवा यही तत्त्व-प्राप्ति का सच्चा उपाय हैं । इस रहस्य को आत्मसात् करने के लिए वे अपनी आंतरिक साधना के साथ अपने आज्ञावर्ती साधु-साध्वी के जीवन का योग-क्षेम करने की जवाबदारी भी सक्रिय रूप से अदा करने में आनंद मानते रहे ।

पूज्यश्री का व्यक्तित्व :

एक क्षण जितना भी समय प्रमादमें न जाये, ऐसी नित्य ज्ञान-दर्शन और चारित्र आराधनामय जीवन-चर्या, शिष्य वर्ग को शास्त्र-पठन आदि अध्ययन कराने की प्रवृत्ति, तत्त्व-जिज्ञासुओं के चित्त को योग्य समाधान और संतोष देने की अद्भुत कला, रात्रि के समय जाप, ध्यान, योग इत्यादि की साधनामें सदा तन्मयता... इत्यादि पूज्य कलापूर्णसूरिजी म.के झलकते व्यक्तित्व के चमकते पासे हैं । सचमुच पूज्यश्री वर्तमानयुग की एक विशिष्ट विभूति हैं ।

छोटे-बड़े सर्व जीवों के प्रति निःस्वार्थ प्रेम बहाती वात्सल्य धारा, अपराधी के प्रति बहता करुणा-प्रवाह यह उनकी संयम-साधना का परिपाक हैं ।

चाहे जैसे उग्र विहार, महोत्सवादि प्रसंगों के भरचक कार्यक्रम इत्यादि से शरीर श्रमित होने पर भी मंदिरमें प्रभु को देखते ही जो प्रसन्नता का परिमल उनके चेहरे पर अंकित होता देखने मिलता हैं, वह उनके हृदयमें अरिहंत परमात्मा के प्रति अविचल भक्ति और आत्मसमर्पण भावकी पराकाष्ठा को प्रकाशित करता हैं । परमात्म-दर्शन से आत्मदर्शन के ध्येयको सिद्ध करनेवाले इन साधक महात्मा का जीवन देखकर कहना पड़ता हैं : भक्ति-योग सर्वतोमुखी विकास का बीज हैं ।

इन महान साधक के चरणोंमें कोटिशः वंदनपूर्वक हम चाहते हैं कि वे चिरकालतक पृथ्वी को पावन बनाते रहे और जिनशासन की प्रभावना करते रहे ।

- श्री मुनीन्द्र (मुक्ति / मुनि)

(समाज ध्वनिमें से साभार, वि.सं. २०४४)

⌘ ⌘ ⌘

कहाँ से मिले ?

स्वातिनक्षत्रमें छीपमें पड़ा हुआ पानी मोती बनता हैं, उसी प्रकार मानव के जीवनमें प्रभु के वचन पड़े और परिणाम प्राप्त करे तो अमृत बनते हैं । अर्थात् आत्मा परमात्म-स्वरूप प्रकट होती हैं । परंतु संसारी जीव अनेक पौद्गलिक पदार्थोंमें आसक्त हैं, उसे ये वचन कहाँ से शीतलता देंगे ? अग्नि की उष्णतामें शीतलता का अनुभव कहाँ से होगा ? जीव मन को आधीन हो वहाँ शीतलता कहाँ से मिलें ?

अभिप्रायों की हेली

'कहे कलापूर्णसूरि' नामकी पुस्तक मिली। मात्र एक ही पेज पढा, और ऐसा ही लगा कि साक्षात् परमात्मा का मिलन इसी पुस्तकमें हैं।

- आचार्य विजयरत्नाकरसूरि

समेतशिखर तीर्थ

'कह्युं कलापूर्णसूरिए' पुस्तक मिली । पूज्यश्री के प्रवचनोंमें अमृत-अमृत और अमृत ही होता हैं इसमें दूसरा कुछ कहने जैसा ही नहीं।

- पंन्यास मुक्तिदर्शनविजय

गोरेगांव, मुंबई

'कह्युं कलापूर्णसूरिए' पुस्तक मिली । उपर का टाइटल देखकर ही पसंद आ जाये । अंदर प्रतिदिन के तिथि, तारीख और वार के साथ के प्रवचन, जीवनमें उतारने जैसा साहित्य हैं ।

- पंन्यास रविरत्नविजय

गोपीपुरा, सुरत

शासन प्रभावक आचार्य देवेश की जिनभक्ति - उत्साह - शासनप्रेम - परोपकार वृत्ति - पदार्थों को सरल करने की कला को भावांजलि...

अवतरणकार दोनों गणिवर्यों की गुरुभक्ति, श्रुतभक्ति की भूरि-भूरि अनुमोदना ।

- पुण्यसुंदरविजय

गोडीजी मंदिर, पुना

'कह्युं कलापूर्णसूरिए' पुस्तक मिली । बहुत अल्प समयमें वाचनाओं का संकलन करके दलदार पुस्तक तैयार की । धन्यवाद ।

वाचनादाता पूज्यश्री की प्रभु-भक्ति प्रसिद्धि प्राप्त हैं, तो इसके और पीछले पुस्तक द्वारा आपकी गुरु-भक्ति प्रसिद्धि प्राप्त कर रही हैं । इस श्रेणि के पुस्तक आगे भी बाहर पड़ते रहे और अब जल्दी से 'कहेता कलापूर्णसूरि' प्रकाशित करो यही अभिलाषा ।

- गणि राजरत्नविजय

डभोड़

कहे कलापूर्णसूरि-३ मिली । आनंद और प्रसन्नता की अनुभूति ।

बहुत-बहुत बधाई तथा अनुमोदना...!

गुरुदेव की पवित्र शब्द-श्रेणिको चिरंजीवी बनाने का महान भगीरथ कार्य संपन्न हुआ, वह वास्तवमें बहुत बड़ी शासन-प्रभावना हुई कह सकते हैं ।

बोलती हुई कैसेट के बदले यह पढने योग्य कैसेट घर-घर और उपाश्रय-उपाश्रयमें पू. गुरुदेव के शब्दों को जीवनमें और हृदयमें अनुगुंजित करती रहेगी ।

– *गणि पूर्णचंद्रविजय*

पाटण

पुस्तक 'कह्युं कलापूर्णसूरिए' मिली । आनंद हुआ । पूज्यश्री के परोसे हुए सुंदर पदार्थों को आपने शानदार बनाये हैं । सब तक पहुंचते ये अवतरण सचमुच ही मननीय हैं ।

– ***हर्षबोधिविजय***

हुबली

'कह्युं कलापूर्णसूरिए' दलदार वाचना ग्रंथ प्राप्त हुआ ।

गुरुभक्ति और श्रुतभक्ति का सुभग समन्वय आपकी आत्मा को शीघ्रता से मुक्ति-सुख के अधिकारी बनायेगा यह बात निःशक लगती हैं । चतुर्विध संघ के लिए अति उपयोगी इस वाचना-श्रेणिका श्रेणिबद्ध प्रकाशन होता रहे और उसके द्वारा सर्व जीव गुणस्थानक की श्रेणि चढकर परम-लोक की प्राप्ति करे यही अभिलाषा ।

– *मुनि दर्शनवल्लभविजय*

पालिताणा

पुस्तक सुंदर हैं । पढने से अनन्य आनंद आता हैं । भले सुना हुआ हो या पढा हुआ हो, परंतु जब पढने बैठे तो अपूर्व लगता हैं । नई-नई स्फुरणाएं होती हैं । सबका संकलन कर सद्बोधरूप प्रसारण कर रहे हैं, उसकी अनुमोदना ।

फोटो के अनुरूप लेख होता तो विशेष आनंद आता ।

– *गणि विमलप्रभविजय*

खंभात

पूज्यश्री की वाचना-प्रेरक पुस्तकोंमें यह लेटेस्ट पुस्तक हैं । समस्त जैन संघ को आवकार्य अजातशत्रु की वाणी परोसती यह पुस्तक स्वयं ही 'अजातशत्रु' बनी रहेगी । उसमें कोई शंका नहीं हैं ।

- आत्मदर्शनविजय

जामनगर

कहे, कलापूर्णसूरि ३ पुस्तक देखते ही हृदय नाच उठा । अद्‌भुत सर्जन हुआ हैं । प्रस्तुत पुस्तक पूज्यश्री की साधनापूत वाणी से भरपूर हैं ।

अथ से इति तक के वांचन से मानो कि शत्रुंजय की गोदमें बैठे हो ऐसा लगा ।

पुस्तक के पेज-पेज पर पूज्यश्री के शब्द-देह से दर्शन होते हैं । तो पुस्तक के चेप्टर-चेप्टर पर पूज्यश्री के सदेह दर्शन होते हैं । पुस्तक की पंक्ति-पंक्ति पर आगम के दर्शन होते हैं तो पुस्तक के वचन-वचनमें भक्ति योग की पराकाष्ठा (भगवान) के दर्शन होते हैं । सचमुच पूज्यश्री की साधनापूत वाणी का वैभव घर-घर, घट-घट छा जायेगा । प्रस्तुत प्रकाशन द्वारा ऐसे अमूल्य सर्जन के बदल आपको धन्यवाद ।

- मुनि पूर्णरक्षित विजय

सागरजैन उपाश्रय, पाटण

पढी न होती तो शायद इस पुस्तकमें क्या खजाना भरा हैं ? इससे मैं अनजान रहती ।

- सा. दिव्यदर्शनाश्रीजी

'कहे, कलापूर्णसूरि' पुस्तक पढने से पू. गुरुदेवश्री का आंतरिक परिचय हुआ । उनकी भक्ति, उनका ज्ञान, उनकी धर्म भावित मति... यह सब जानने मिला ।

- सा. चरणगुणाश्रीजी

पुस्तक 'कह्युं, कलापूर्णसूरिए' मिली । अनुभव की अटारी से आलेखित पुस्तकों का अनुभव क्या बतायें ? पुस्तक ही आदरणीय बन जाती हैं ।

- साध्वी शशिप्रभाश्री

सुरत

इस पुस्तक को पढते चित्त प्रसन्न बना हैं । मुझे जो छोटी-छोटी बातमें नाराजगी होती थी, अभिमान आदि के कारण 'लेट-गो' कर नहीं सकती थी । ऐसे मेरे अंतरंग दोष कम होते दिखाई दे रहे हैं ।

- सा. हंसगुणाश्री

'कहे कलापूर्णसूरि' पुस्तक मिल गयी हैं । पूज्यपादश्रीने वांकी तीर्थमें दी हुई वाचना को पढते सचमुच ! पूज्यश्री की रग रगमें प्रभुभक्ति बुनी हुई हैं यह पता चल जाता हैं । उसी तरह संयम-जीवनमें भी जीवन जीने की कला और नई-नई प्रेरणाएं मिलती हैं । बहुत ही रसप्रद पुस्तक है ।

- साध्वी पुण्यरेखाश्रीजी
सुरत

पुस्तक पढते आंखें और हृदय रो उठते हैं, दिल द्रवित हो जाता हैं । एकेक रोममें आनंद की लहर दौड़ने लग रही हैं । इस पुस्तक के लाभ पूर्णतया कहने की शक्ति नहीं हैं, परंतु हमारे जीवनमें एक गुण भी आये तो भी बेड़ा पार हो जायेगा ।

- सा. देवानंदाश्री

आज सुबह-सुबह परम कृपालु परमात्मा की कृपा से परम पूज्य आचार्यदेवश्री का वासक्षेप मिला, तो हृदय पावनता की अनुभूति करने लगा । कुछ ही देर बाद 'कहे कलापूर्णसूरि' नामक ग्रंथ पाकर अत्यंत आनंद हुआ । पूज्यश्री की वाचनाओं का यह सुंदर संकलन बहुत ही प्रेरणादायी रहेगा ।

- साध्वी अनंतकीर्तिश्री
उज्जैन

इस पुस्तक को पढते पू. साहेबजी की विशेष भक्ति जानने मिली । अश्रुत और अननुभूत ऐसा ज्ञान जानने मिला ।

- सा. इन्द्रवन्दिताश्री

'कहे कलापूर्णसूरि' पुस्तक पढते संयम जीवन की सच्ची तालीम जानने मिली । हमारे जीवन की उन्नति हो, ऐसा जानने मिला ।

- सा. हर्षितवदनाश्री

यह पुस्तक जीवन की साधनामें अत्यंत सहायक बनी हैं ।

– सा. सौम्यदर्शिताश्री

'कहे कलापूर्णसूरि' पुस्तक पढने से मेरे जीवनमें हुए लाभ को शब्दोंमें समाने असमर्थ हूं ।

– सा. हंसरक्षिताश्री

पूज्यश्रीने इस पुस्तकमें ज्ञान – क्रिया – विनय – सरलता – जयणा – करुणा – जीवमैत्री – प्रभु भक्ति इत्यादि अगणित गुण तथा साधु होने की योग्यता से प्रारंभ कर पूर्ण साधुजीवन कैसा होना चाहिए ? उसे किस तरह उच्च बनाना चाहिए ? उसकी प्रक्रिया तक की सामग्री हमारे सामने धर दी हैं ।

– सा. हर्षकलाश्री

कहे कलापूर्णसूरि भा–३ मिला हैं ।

स्व–जीवनमें बुनी हुई तथा स्व–पर के अनुग्रह के लिए कहे हुए और आपके द्वारा अत्यंत कुशलतापूर्वक अच्छी तरह संगृहीत की हुई पू. साहेबजी की वाचनाओं की यह पुस्तक अनेकों को अनुग्रह करनेवाली बनी हैं और बनेगी । सचमुच यह पुस्तक जीवन के विकास के लिए एक अमूल्य संपत्तिरूप हैं ।

– सा. कुवलयाश्री,

जूनागढ

'कहे कलापूर्णसूरि ३' पुस्तक देखकर – पढकर आनंद हुआ ।

अनेकों की ऐसी कल्पना होती हैं कि पूज्यश्री तो पूरे दिन भगवान की भक्ति ही करते हैं । परंतु ऐसी पुस्तकों के माध्यम से पूज्यश्री के आंतरिक ज्ञान खजाने का पता चलेगा, और वह भी भगवत्–कृपा से प्राप्त होता हैं उसका भी साक्षात्कार होगा ।

आपका प्रयास बिलकुल सफलता के शिखर पर हैं ।

'क.क.सू.' के तीन भाग साथ हो तो लगभग सबकुछ मिल जाता हैं ।

– सा. कल्पज्ञाश्री

पाटण

⌘ ⌘ ⌘

॥ श्री अर्हते नमः ॥
॥ श्री पद्म-जीत-हीर-कनक-देवेन्द्र-कलापूर्ण-कलाप्रभसूरिगुरुभ्यो नमः ॥

❖ उद्घाटित - पुस्तक - परीक्षा ❖

कहे कलापूर्णसूरि-४

• सूचनानि •

- पुस्तकाधारेणैव उत्तराणि आवश्यकानि ।
- पुस्तकाधारमन्तरेण लिखितानि सत्यानि अपि उत्तराणि सत्यानि न गणिष्यन्ते ।
- सर्वाभिः सार्धं सम्भूय इमानि उत्तराणि लिखितानि चेत् एवं लिखन्तु यथा अस्माभिः सर्वाभिः मिलित्वा इदं लिखितमिति ।
- उत्तरैः सह पुस्तक-पृष्ठ-संख्याङ्काः अवश्यं लेख्याः ।

- प्रश्न १ : अधोलिखितानां प्रश्नानामुत्तराणि केवलं द्वित्राभिः पङ्क्तिभिः लिखन्तु । (१०)

(१) शरणागतेः कोऽर्थः ?
(२) 'सूत्राणि' इत्यस्य कोऽर्थः ?
(३) ज्ञानाचार-ज्ञानभावनयोः विशेषः गुरुपादैः कथं ज्ञापितः ?
(४) पदध्यान-परमध्यानयोः कः प्रतिविशेषः ?
(५) शरणचतुष्टये नवपदानि कथं समाविष्टानि ?
(६) ज्ञानी अन्यज्ञानिनं कथं विजानीयात् ?
(७) अन्तःस्थितः प्रभुः कदा दृश्येत ?
(८) भगवता विशिष्टं योग-क्षेम-करणं कदा विधीयते ?
(९) आत्म-साम्राज्य-सिंहासनात् मोहभूपाऽपसारणार्थं साधनायां किमावश्यकम् ?
(१०) 'वृद्धिः एकता तुल्यता' इमे त्रयः भावाः श्रीचरणैः सङ्क्षेपेण कथं सम्बोधिताः ? तन्नाम केन उदाहरणेन ?

- प्रश्न २ : अधःस्थितेभ्यः शब्देभ्यः एकम् असमीचीनं शब्दं गवेषयन्तु । तं शब्दं लेखन्या कुण्डलितं कुर्वन्तु । पुस्तकाधारेणैव

इति न विस्मरणीयम्, अन्यथा कश्चिदपि शब्दः कयाऽपि अपेक्षया कुण्डलितः कर्तुं शक्यः । (१०)

(१) कलापविजयः, कञ्चनविजयः, कलधौतविजयः, कलापूर्णविजयः ।

(२) हीरेनः, जीगरः, पृथ्वीराजः, चिरागः ।

(३) विनयः, विवेकः, व्युत्सर्गः, अव्यथा ।

(४) मतिः, स्मृतिः, वासना, अविच्युतिः ।

(५) धारणा, ध्यानं, ध्येयः, समाधिः ।

(६) नाम, स्थापना, फलभेदः, सङ्ख्या ।

(७) दमनं, प्रवर्तनं, पालनम्, अनुपालनम् ।

(८) प्रवृत्तिः, निवृत्तिः, पालनं, वशीकरणम् ।

(९) मन्त्रः, तन्त्रं, क्रिया, शरणम् ।

(१०)शक्तिः, व्यक्तिः, चेष्टा, पराक्रमः ।

- **प्रश्न ३ : अधोलिखितस्य प्रत्येकवाक्यस्य चतुर्भ्यः विकल्पेभ्यः अभिसत्यविकल्पं (सत्य-विकल्पस्य सन्मुखं) ✔ चिह्नं कृत्वा पृष्ठाङ्कः लिख्यताम् ।** (१०)

(१) यस्य मानसे अभयाऽवतरणं न सञ्जातं सः...

(A) मोक्षाशां त्यजतु ।

(B) साधुत्वात् भ्रष्टः ।

(C) श्रद्धानयनाशां मा विदधातु ।

(D) भक्त्याशां परिहरतु ।

(२) सामायिकादिकं स्वस्थाने श्रेष्ठमस्ति, किन्तु भगवद्विनयः...

(A) साधुत्वसहितेन साधुनैव कर्तुं शक्यः ।

(B) स्तवनानि गायं गायमेव भक्तेन कर्तुं शक्यः ।

(C) गृहस्थैस्तु पूजाद्वारा एव कर्तुं शक्यः ।

(D) साधकैस्तु ध्यानद्वारा एव कर्तुं शक्यः ।

(३) भगवति प्रेम्णि प्रादुर्भूते एव...

(A) स्वात्मनि वास्तवं प्रेम शक्यम् ।

(B) अन्तःस्थितः परमात्मा अभिज्ञास्यते ।

(C) सर्वं विश्वं प्रेममयं भविष्यति ।

(D) जगतां सर्वजीवेषु प्रेम प्रादुर्भविष्यति ।

(४) मनसि अतिशान्तावस्थे एव...

(A) अन्तःस्थितः विभुः दृश्येत ।

(B) अनाहतनादः श्रूयेत ।

(C) जगज्जीवेषु हृदयं संवेदनशीलं स्यात् ।

(D) हृदि मुक्तिः प्रादुर्भवेत् ।

(५) आज्ञापालनं भवन्तः कुर्युश्चेद् भगवान्...

(A) योग-क्षेमे कुर्यादेव ।

(B) भवन्तं मुक्तिं नयेदेव ।

(C) भवत्संसारं परिमितं कुर्यात् ।

(D) दुःखेभ्यः मुक्तिं दद्यात् ।

(६) श्रद्धायाः अर्थः इह...

(A) प्रसन्नता इति कृतः ।

(B) भक्तिः इति कृतः ।

(C) मोक्षगमनयोग्यता इति कृतः ।

(D) सहजमलह्रासः इति कृतः ।

(७) द्वारोद्घाटनम्, तन्नाम...

(A) अहङ्काराऽपसारः ।

(B) विवेक-जागरणम् ।

(C) प्रभोरागमनार्थमामन्त्रणम् ।

(D) ज्ञानस्य ज्ञानिनश्च आदरकरणम् ।

(८) इन्द्रत्व-चक्रवर्तित्वम्...

(A) समृद्धिविजृम्भितमेव ।

(B) अपि एकं प्रभु-भक्तिकारणम् ।

(C) रोगः एव ।

(D) भोगः एव ।

(९) सम्यग्दर्शननयनाभ्यां विना...

(A) जगत् सम्यग् ज्ञातुं न शक्यम् ।

(B) जीवमैत्री दृढा न स्यात् ।

(C) परितः तमः एव ।

(D) भगवान् न ज्ञायते ।

(१०) मनसः सीमायां पूर्णायामेव...
(A) प्रभु-मन्दिर-परिसरप्रारम्भो भवति ।
(B) समाधि-सीमा-प्रारम्भो भवति ।
(C) वास्तवः आनन्दः स्रवति ।
(D) श्रद्धा-सीमा-प्रारम्भो भवति ।

• प्रश्न ४ : अधस्तनानि वाक्यानि केन उक्तानि ? तत् ज्ञापयन्तु । वक्तुः नाम पुस्तकपृष्ठाङ्कं च लिखन्तु । (१०)

(सूचना : यद्यपि सर्वं पुस्तकं प्रायः गुरुपादवदननिर्गतवचनरूपमेव । अतः तन्नाम लिखितं चेत् असत्यं न गण्येत, तथापि इह तन्नाम अलिखन्तीभिः भवतीभिः अवान्तर-वक्तुः नाम लेखनीयम् । द्वौ वक्तारौ (मौलिकः अनुवादकश्च) सम्भवेतां चेत् द्वे नाम्नी लेख्ये ।

(१) राम-नाम्ना दृषदोऽपि तरेयुः ।
(२) 'कहेता कलापूर्णसूरि' पुस्तकं प्रकाश्यतामित्येव अभिलाषा ।
(३) स्वामिरामदासाः तेषाम् अष्टमाः दसमाः वा पूर्वजाः ।
(४) बद्रिनाथे अस्मदीयाः विद्वांसः मुनिश्रीजम्बूविजयाः चिन्तिताः सन्ति ।
(५) प्रत्येक-रथ्यायां द्वौ - द्वौ शङ्कराचार्यौ भ्रमतः ।
(६) वर्षति जले क्लिन्नीभवतां गमनं वरं, न तु वाटके गमनं वरम् ।
(७) परमचेतनया मत्तः लेखितम् ।
(८) त्वत्संयमविकासार्थं त्वया महाभद्रविजयाः न त्याज्याः ।
(९) भगवद्भ्यः एव, न स्वतः, नापि अन्येभ्यः ।
(१०) स्वविशिष्टनैपुण्यात् आगमान् पुस्तकारूढान् विधाय देवर्धिगणिभिः महत् युगप्रवर्तकं कार्यं विहितम् ।

• प्रश्न ५ : अवकाशं पूरयन्तु । पृष्ठाङ्कोऽपि लेख्यः एव । (१०)

(१) _______ हृदयं विकसति _______ च मस्तिष्कं विकसति ।
(२) _______ अपि _______ उपदिशति तत्रैव उपविशन्ति ।
(३) _______ शब्दस्थाने इह _______ शब्दः प्रयुक्तोऽस्ति ।
(४) यथा यथा भक्तः _______ स्वीकुर्यात् तथा तथा सः _______ शक्तेः _______ कुर्यात् ।

(५) ________ यथा यथा अल्पीभवन्ति तथा तथा ________ वृद्धिं गच्छेत् ।

(६) एतस्य ध्यानं ________ स्वभाषायां ________ गुलिकां कथयति ।

(७) ________ मूलं श्रीभगवानस्ति ।

(८) सर्व ________ मौलं कारणं ________ आन्ध्यमस्ति ।

(९) यदा वयं ________ करणेच्छवस्तदा ________ मन्येमहि ।

(१०) ________ विना ________ न शोभां गच्छेयुः ।

- प्रश्न ६ : अधस्तनशब्दाः यत्र स्युः तत् स्तवन-श्लोक-गीत-काव्यपङ्क्त्यादिकं लिखन्तु । पृष्ठाङ्कमपि लिखन्तु । (१०)

(१) रहस्सं
(२) घाट
(३) मत्ता
(४) व्यवहार
(५) अव्याबाध
(६) निरीह
(७) संवेद्यं
(८) श्याम
(९) दधतः
(१०) उवाओ

- प्रश्न ७ : अधस्तनेषु शब्देषु कः शब्दः केन सह उपमितः तद् दर्शयन्तु । पृष्ठाङ्कमपि लिखन्तु । (११)

यथा-ऊर्जःस्थानं (पावर हाउस) → भगवान् - पृ. २३७

(१) गव्यूतार्धदृषद् (माइल-स्टोन) (१२) पापानि
(२) सज्जनः (१३) दुर्गुणाः
(३) खातिका (१४) मनः
(४) भक्तः (१५) भगवान्
(५) भोजनशाला (१६) आत्मा

(६) हर्म्यम्	(१७) ऐश्वर्यम्
(७) स्फटिकम्	(१८) तीर्थम्
(८) आदर्शः	(१९) रथः
(९) सर्पः	(२०) अविरतिः
(१०) पशवः	(२१) चन्दनम्
(११) अन्धकारः	(२२) नाद-श्रवणम् ।

• प्रश्न ८ : अधस्तने चन्द्रमसि, अस्मिन् पुस्तके (कहे कला. ४) लिखितानां अष्टग्रन्थानां नामानि राहोरन्धकारत्वाद् इतस्ततः भ्रान्ति गतानि सन्ति । तन्नामानि गवेषयन्तु । सकृत् प्रयुक्ते अक्षरे तस्य पुनः प्रयोगः निषिद्धः । तत्प्रत्येकग्रन्थसम्बन्धि पङ्क्तिवाक्यादिकं लिखन्तु, यत् पुस्तके लिखितमस्ति । पृष्ठाङ्कलेखनमपि मा विस्मरन्तु । (८)

उ	ल	वि	र	स्तो	ण	वि	सा
र	त्ति	धा	अ	न्त	रा	स	वै
ण	रा	रो	प	ग्य	म	द्धा	हा
सा	त	शा	ग	स्त	क्र	लि	सा
सु	श	च	क	य	आ	त	न
ति	भ	र	रि	त्र	ज्ञा	र	मि

• प्रश्न ९ : अधस्तनानां वाक्यानामाधारेण सङ्ख्याङ्कमिताक्षरान् (यथा-(४) इति लिखितं स्यात् चेत् चतुरक्षरः शब्दः आवश्यकः) शब्दान् गवेषयन्तु । गवेषितानां तत्प्रत्येकशब्दानां द्वितीय-द्वितीयाऽक्षरैः अष्टादशाऽक्षराणाम् एकं तद् गूर्जरभाषानिबद्धं वाक्यं प्रकटितं स्यात् यत् पुस्तके प्रत्येक-वाचना-प्रारम्भे बृहद्भिः अक्षरैः लिखितेषु वाक्येषु एकं वाक्यं स्यात् । पृष्ठाङ्कोऽपि लेख्यः । (२७)

(सूचना - संयुक्ताक्षरम् एकमेव गणनीयम् । शब्दाः स्वयं स्वतः वदन्तः सन्ति इति उत्प्रेक्ष्य वाक्यानि लिखितानि सन्ति इति अवधेयम् ।

(१) ________ [३] भगवतः माम् अपसारयिष्यति भवान् चेत् भवदीया साधना मूल्यहीना ।

(२) ________ [३] मयि एकमपि अस्थि मा भवतु तथापि अहं बलोत्कटमल्लानामपि अस्थीनि भङ्क्तुं शक्नोमि ।

(३) ________ [३] फल-मिष्टान्नादिकं विनैव अहं अद्भुतरसास्वादं कारयितुं शक्नोमि ।

(४) ________ [३] मया विना भवज्जीवनं न सम्भवेत् भवान् बालो भवतु वृद्धो वा, साधुः भवतु गृहस्थो वा । (गूर्जरभाषा-शब्दः)

(५) ________ [३] मया विना न किञ्चित् संयम-जीवन-साफल्यम् ।

(६) ________ [३] मां भवन्तः मनसः अपसारयितुं शक्नुवन्ति चेद् न दूरे समाधिः ।

(७) ________ [३] माम् आसेव्य आगताभ्यः कन्याभ्यः दीक्षा-दानात् पूर्वं भृशं सावधानाभिः भाव्यम् । (आङ्ग्लशब्दः)

(८) ________ [४] संस्कृताध्ययनं जातं चेद् माम् अवश्यं पठन्तु । मयि व्यवहारकौशल्यनिधानमस्ति ।

(९) ________ [२] भोजनान्ते ममासेवनम् अमृततुल्यमिति वैद्याः वदन्ति । (गूर्जरभाषा-शब्दः)

(१०) ________ [४] स्वयं भगवन्महावीरवंदनात् अहं श्लाघां प्राप्तवानस्मि ।

(११) ________ [६] अहमस्मि एकं तीर्थस्थानम् ।

(१२)______ [३] मां न उपलक्षितवन्तः भवन्तः ? अहमस्मि विद्वान् पुरुषः ।

(१३)______ [४] अहं न तुष्येयं चेत् जगज्जीवनं कष्टपूर्णं स्यात् ।

(१४)______ [२] मदीये क्षेत्रे आगत्य यशोविजयैः सरस्वती-प्रसादो लब्धः ।

(१५)______ [४] अहमस्मि संहार-देवः (अजैनदृष्ट्या)

(१६)______ [५] परिणयनाऽनन्तरं आदौ या पत्नी मह्यं न रुचिता, तया एव अस्मत्कुलं स्वयशसा धवलीकृतम् ।

(१७)______ [३] मया विना केवलं विचाराणां वचनानां वा नास्ति बहुमूल्यम् ।

(१८)______ [४] सफलार्थे अहं प्रयुज्ये ।

- प्रश्न १० : कहे कलापूर्णसूरि-४ इति पुस्तकं पठतां भवतां हृदये जातानि संवेदनानि लिखन्तु-केवलं १०-१५ पङ्क्तिभिः । (२०)

- प्रश्न ११ : कहे कलापूर्णसूरि-४ पुस्तकस्थस्य १३५-१३६ पृष्ठाङ्कलेखनस्य (आ. सु. १०, ८-१०-२०००) संस्कृतानुवादं कुर्वन्तु । (१४)

- प्रश्न १२ : अस्मिन् प्रश्नपत्रे परीक्षा-पद्धतौ वा काः काः क्षतयः दृष्टाः ? तन्निवारणार्थं किं विधेयमिति ज्ञापयन्तु । (१०)

(अनयोः द्वयोरपि प्रश्नयोः उत्तरे पृथक् पत्रे लिखन्तु ।)

❀ ❀ ❀

वि. सं. २०५८, माघ सु.६, १८-२-

तीर्थभूमि शंखेश्वर में अर्हन्मयी चेतन

दो घंटे के बाद अरिहंत आकृति में रहे हुए

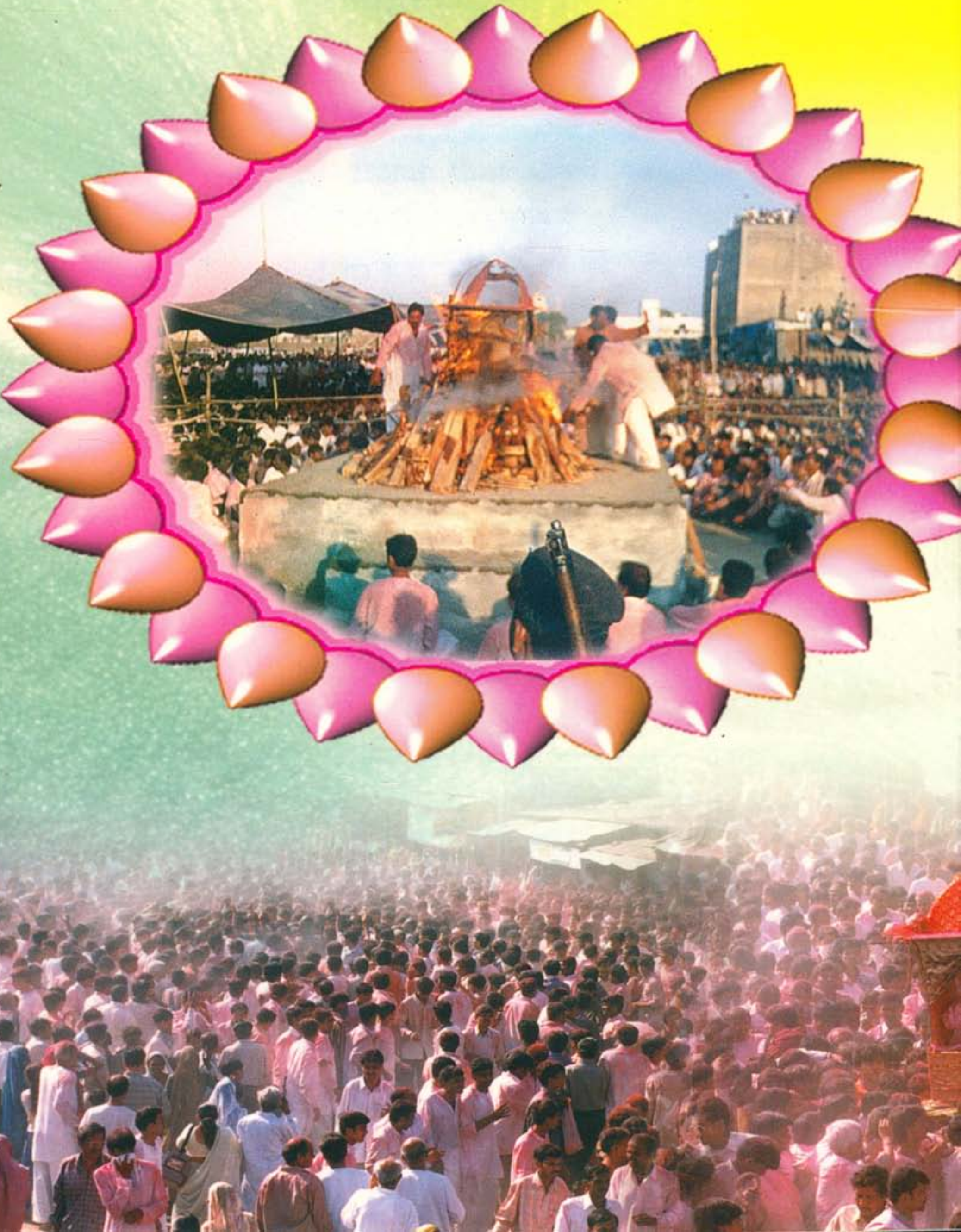

२००२, सोमवार, शंखेश्वर तीर्थ (गुजरात)

के स्वामी पूज्यश्री के अग्नि-संस्कार के

पूज्यश्री को देखने हजारों लोग उमड़ पड़े थे

'कहे कलापूर्णसूरि' पुस्तक पूज्यश्री कलापूर्णसूरिजी के हाथ में

ललित-विस्तरा अद्‌भुत भक्ति-ग्रन्थ है । अगर आप संस्कृत जानते है तो मूल ग्रन्थ पढो । अगर संस्कृत नहीं जानते है तो उस पर वाचना के गुजराती पुस्तक (कहे कलापूर्णसूरि, भाग ३-४) भी प्रकाशित हुए हैं । उन पुस्तकों को जरुर बार-बार पढें । (हिन्दी में भी चारों भाग प्रकाशित हो चूके हैं ।)

- स्व. पूज्य आचार्यश्री विजयकलापूर्णसूरीश्वरजी म.सा., चतुर्विध संघ समक्ष दी गई अंतिम वाचना में से

वि. सं. २०५८, माघ व. ६,
दिनांक ३-२-२००२, रविवार
रमणीया, जी. जालोर (राज.)

Tejas Printers
AHMEDABAD PH. (079) 26601045